गुजरात के गौरव

भाग १

के एम मु[illegible]

रजनी साहित्य सदन
२६६, चावड़ी बाजार, दिल्ली
प्रमुख वितरक
नवयुग प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक
रजनी साहित्य सदन

मूल्य पाँच रुपया

मुद्रक
युवना प्रिंटिंग ऐजेन्सी द्वारा
नूतन प्रेस दिल्ली

चत्र संवत ११६६ विक्रमी।

भोर की वेला में।

प्राचीन भृगु कच्छ (वर्तमान भरौंच) में दिनचर्या प्रारम्भ हो चुकी थी परन्तु नए नगर के कोट का द्वार अभी नहीं खुला था। नए नगर में प्रवेश के लिए उत्सुक व्यक्ति प्राचीन नगर और कोट के बीच आने वाली खाई को पार कर पहाड़ी पर खड़े द्वार खुलने की प्रतीक्षा में थे।

इसलिए कि भृगु कच्छ दो थे एक था प्राचीन लाट राजाओं का पुराना नगर और दूसरा त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित गढ़ी में बढ़ा नया नगर। नए नगर-कोट और पुराने नगर के बीच नदी के भाग ने एक गहरी और चौड़ी खाई निर्मित कर दी थी जो नवीन नगर को लगभग चारों ओर से घेरे हुए थी। इस खाई का मुख समुद्र की गहराई की ओर जहाँ दूर-दूर से आने वाले जहाज लंगर डालते थे।

इसी स्थान के एक ऊँचे टीले पर चार जन साधू खड़े थे। ऐसा लगता था मानो वह कहीं दूर से चल आ रहे हों। इनमें से एक साधू शेष तीन से दूर टीले के ढाल पर खड़ा हुआ था। साधू की आयु लगभग पच्चीस वर्ष थी। मुख की सुन्दरता आँखों का तेज और चमकते हुए भाल का गौरव असाधारण था। इस यौवन के प्रथम प्रहर में ऐसे सुन्दर पुरुष ने ऐसा अखंड वैराग्य भरा जीवन क्यों अपनाया—यह समस्या देखने वाले के लिए समझनी कठिन थी।

साधू की आँखें विशाल तेजस्वी और गहन थीं। उसने कुछ देर गगनचुम्बी गढ़ के बुर्जों की ओर देखा फिर नाव में बैठकर खाई पार करते हुए मनुष्यों को निहारा और फिर मुड़कर त्रिभुवनपाल सोलंकी द्वारा निर्मित विशाल और भव्य महादेव सोमनाथ के मन्दिर, शिखरों को देखने लगा।

जब इन सबसे सन्तोष प्राप्त न हुआ तो वह नदी की ओर देखने लगा। जहाँ वह खड़ा था उससे नीचे गौरवशाली रुद्र-कन्या नर्मदा की गम्भीर पतित-पावन तरगें बाल सूर्य की किरणों में थिरकती सदय भाव भरी आतुरता से भृगु के इस पवित्र धाम का आलिंगन कर रही थी।

कोई त्रिकालज्ञ होता तो उसे अनंत दर्पण रूपी इन तरंगों में आर्यावर्त के अनेकों उत्थान और पतन प्रतिबिम्बित होते दिखाई पड़ते। इन तरगों ने आर्यों के नाम से भी अनभिज्ञ इतिहासकाल में नागलोक के वीरों को स्नान कराया था। इन तरगों ने हैहय श्रेष्ठ सहस्रार्जुन की प्रचंड भुजाओं को अर्घ्य दिया था और हैहयों का वध कर करके तृप्ति को प्राप्त परशु को स्वच्छ करके उनकी जामदग्नेय की कालाग्नि सदृश मुख मुद्रा को शान्त किया था। समस्त भारत को एकता के सूत्र में बाँधकर वानप्रस्थ धारण किए हुए भगवान कौटिल्य के पातक धोकर इन ही तरगों ने उनकी आत्मा को शुद्ध किया था।

इन तरगों ने मालवा की जल क्रीड़ा भोजा की सुकुमार नारियों का अग-लालित्य और ग्रीक योद्धाओं का स्नायुबद्ध सौंदर्य देखा था। सिकन्दर की थकी हुई सेना का निश्वास सुना था। दद्दा की दुर्जय राज्य को देखा था और त्रिलोचनपाल के गजराजों के दर्शन किए थे तथा महान सेनापति बारप का बल देखकर आश्चर्य किया था। इन तरंगों ने लाट देश के स्वतन्त्रता-सूर्य को डूबते हुए देखा था पाटन के मूलराज सोलंकी के पुत्र चामुण्ड की विजयी सेना की गर्व भरी तुरही सुनी थी।

साधू का यह सब सोचने का अवकाश नहीं था नर्मदा की तरगें उस केवल सूर्य की सुनहरी किरणों से खेलती हुई दिखाई पड़ रही थीं।

वह तो केवल अपनी समस्या पर विचार कर रहा था।

त्रिभुवनपाल को लाट को गुजरात बनाने की राजनीति तथा वह कारण जो उस बरबस ही यहाँ ले आया था।

अनायास ही उसकी दृष्टि उस जहाज पर जिसने अभी अभी लगर डाला था पड़ी। जहाज से उतरते हुए एक यात्री को उसने देखा और मुख पर सन्तोष के भाव उभर आए। वह तनिक मुस्कराया।

सम्भवत इसी यात्रा को देखकर उसी साधु का दूसरा साथी निकट आता हुआ बोला 'भूरी जी मेहता का आँबड़ । इतना कहकर वह युवक साधु का मुख देखकर रुक गया।

युवक साधु ने मीठे परन्तु तलवार की धार जैसे तीक्ष्ण स्वर में कहा विजयचन्द्र जी ! किसी का नाम सुन से क्या लाभ है ?

विजयचन्द्र ने मेहता का आँबड़ जिस यात्री को सम्बोधन किया था—वह मजबूत काठी का युवक योद्धा था। उसके कानों के कुण्डल और हाथों के कंगन, समृद्धि का—लम्बा भाला तथा पीछे चलते हुए सेवक द्वारा लिया हुआ धनुष शौर्य का साक्षी था। पीछे और भी कई सैनिक उसका सामान लेकर आ रहे थे। आंबड़ अथवा शिष्ट भाषा में कहें तो आम्रभट के साथ एक काला ठिगना परन्तु मोटा ब्राह्मण भी चल रहा था उसकी त्वचा पक्के काले संगमरमर जैसी थी और कपाल पर चन्दन का त्रिपुण्ड काले पत्थर के शिवलिंग की स्मृति जागृत करता था। उसके सिर पर कनटोपी तथा कंधे पर कम्बल था।

हर-हर भोलानाथ आखिर जीत जी भृगुकच्छ देख ही लिया।

हँसकर आम्रभट ने कहा महाराज अब तो हमें अलग अलग होना है। हो सके तो फिर मिलिएगा।

'इसमें चिन्ता की क्या बात है ? विधि का लेख होगा तो मिले बिना छुटकारा कहाँ है ? यहाँ से ऊब गया तो खम्भात हो जाऊँगा। बहुत हुआ। ईश्वर की कृपा हुई तो अब फिर सोरठ नहीं जाना पड़ेगा।

आम्रभट मुस्कराया मणिभद्र जी अपनी बहन के यहाँ कितने दिन ठहरोगे ?

जितने दिन तक हर-हर भोलानाथ सोमनाथ भगवान की कृपा हो

तो जीवन भर। ब्राह्मण ने आत्म-सन्तोष से कहा—बहन तो बहन ही है। हम एक दूसरे के बिना जीवित कैसे रह सकते हैं ?

आम्रभट सोच रहा था कि स्वरूपवान भाई की बहन कैसी होगी वह बोला परन्तु आपके बहनोई ?

आम्रभट की दृष्टि साधुओं पर पड़ी। फलस्वरूप उसने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। साधु का मुख पलक मारते ही गम्भीर हो गया और वह आम्रभट को इस प्रकार देखने लगा मानो पहचानता ही न हो। ऐसा ही अभिनय आम्रभट ने भी किया। उस ब्राह्मण ने यह सब न देखते हुए अपनी तरंग में कहा मेरा बहनोई आहा भगवान भला करे। फिर साधु की ओर उंगली से संकेत करके कहा, यह कहाँ से अच्छे शकुन में आ मिले। उसके चेहरे पर हँसी खेल गई।

उसकी बात पर ध्यान न देकर आम्रभट ने साधुओं को नमस्कार करके पूछा महाराज पाटन कब खुलेगा ?'

युवक साधु ने उत्तर देकर प्रश्न किया खुलने ही वाला है तुम कहाँ से आ रहे हो ?

वनस्थली से आ रहा हूँ महाराज जयसिंह देव का भट्ट हूँ और भृगुकच्छ के कुशल के लिए सन्देश लेकर आया हूँ। महाराज कहाँ से विचरण कर आ रहे हैं ?

हम वटपद्र (बड़ौदा) से चले हुए हैं। इतना कहकर युवक मणिभद्र साधु को सम्बोधित कर बोला प्रियवर तुम्हारा आगमन कहाँ से हुआ है ?

प्रियवर ने हाथ आसमान की ओर उठा दिए अरे हम आए हैं बड़ी दूर से।

यह सुनकर सभी हँस पड़े।

आम्रभट ने कहा सोमनाथ पाटन से पधार रहे हैं मणिभद्र जी बड़े ही आनन्दी जीव हैं।

यह सुनकर हँसते हुए मणिभद्र ने तत्त्वज्ञान उच्चारण किया। 'सारा

ससार ही बस आनन्दमय है समभे साधु महाराज । हम तो जहाँ जा पहुँचे वहीं घर है । अपने राम तो आनन्द में रहना खाना-पीना गायत्री का जाप करना जानते हैं । हमारे बला से चाहे सारी दुनियाँ मक्ख मारती रह । हर हर महादेव ! पधारिए महाराज—जय सोमनाथ । इतना कहकर अपने भारी भरकम शरीर को ठेलते हुए मणिभद्र प्राचीन भृगुकच्छ की ओर मुड़े और असाधारण चाल स चल पड़े ।

कुछ क्षण तक आम्रभट और युवक साधु मौन खड़ रह । सम्भवत दोनों एक ही बात सोच रहे थे कि परिचय किया जाए अथवा नहा ।

परन्तु आम्रभट ने प्रगट में यह वाक्य क । आप कहाँ ठहरग ?

दवभद्र सूरि महाराज क उपाश्रय में और तुम ?

नगर सठ के यहाँ ! इतना कहकर आम्रभट ने नमस्कार कर युवक साधु स विदा ली ।

२

वहाँ से थोड़ी दूर पर खड़े एक नागरिक से आम्रभट न पूछा—भाई दुगपाल गढ़ कब खोलेंगे ?

'कहाँ स आना हुआ है ?

वामनस्थली स । दुगपाल महाराज गढ में ही हो न ?

नहीं अब तो वह प्राचीन नगर में रहत है।

कहाँ ?

साम्बा बहस्पति क बाड़े में ।

कितनी दूर है ?

इस रास्ते स चल जाओ । दायें हाथ चौक पड़ेगा वहाँ पूछ लना, कोई भी बता देगा ।

और नगर सेठ कहाँ रहते है ?

'वह ज़रा दूर रहते हैं—पट्टनी चौक में। मैं वहीं जा रहा हूँ।' उस नागरिक ने कहा।

'कृपा करके मेरे आदमियों को वहाँ तक पहुँचा देना—हमीर!' वाग्भट ने अपने आदमी को सम्बोधित किया तू इनके साथ चला जा, और सेठ तेजपाल को मेरे आने की सूचना दे। मैं दुर्गपाल से मिलकर आता हूँ।

आज्ञा पाकर उसके अनुचर नागरिक के साथ चले गए। क्षण मात्र के लिए एकान्त पाकर वाग्भट के मन की अभिलाषा मुख पर प्रकट हुई। उसने जाते हुए अपने अनुचरों को निहारा।

बचपन से ही उसका जीवन रसमय था। सौभाग्यशाली बालक की भाँति उसे माँ बाप का लाड़-प्यार मिला था शिक्षा मिली थी और अब वह पाँच वर्षों से सम्मानित योद्धा की प्रतिष्ठा से युद्ध में भी भाग लेने लगा था—परन्तु उसका रसिक स्वभाव शान्ति का आनन्द लेने के लिए आतुर था। कल्लोल करती हुई नर्मदा की लहरें गगनचुम्बी मन्दिर के शिखर प्रभात के आनन्द में डूबा हुआ नगर और प्रियतमा। तेजपाल सेठ की पुत्री उसकी भावी पत्नी थी—उस प्रियतमा से साक्षात की आशा ने मन में कोमल भावनाओं का ज्वार भर दिया। परन्तु कर्तव्य महाराज के आदेश और पिता की आज्ञा ने भावनाओं का ज्वार रोक दिया। एक असमय नि श्वास लेकर वह गाँव की ओर बढ़ा।

उसके तेजस्वी मुख—आभूषणों से सज्जित शरीर तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित दूकान खोलने वाले व्यापारी उसे पीछे मुड़ मुड़ कर देख रहे थे परन्तु उन पर दृष्टि न डालकर वाग्भट सामन्त बृहस्पति का बाड़ा पूछता हुआ आगे बढ़ा।

रिवाज के अनुसार उसे बन्दरगाह पर ठहरना चाहिए था अपना आदमी भेजकर दुर्गपाल को अपने आगमन की सूचना देनी चाहिए थी, और तब पालकी में बैठकर नगर प्रवेश करना चाहिए था। ऐसा करना उसकी तथा उसके पिता की प्रतिष्ठा के अनुकूल था। परन्तु वाग्भट

स्वभाव से सरस और हृदय से उमंगी जीव था। टीमटाम उसे पसन्द नहीं थी। अलबत्ता उसके स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि चलते चलते वह इस अपरिचित नगर का मार्ग भूल गया।

इस समय वह एक ब्राह्मण मुहल्ले में था। साधारण घरों की बस्ती थी। एक घर से वेदोच्चार का स्वर सुनाई दे रहा था। यहीं कहीं था साम्बा वृहस्पति का बाड़ा। आम्रभट को आश्चर्य हुआ क्या इसी बस्ती में लाट का दुर्जय योद्धा भृगुकच्छ का दुर्गपाल महाराज त्रिभुवन पाल का परममित्र किन्तु उसके प्रतापी मन्त्री पिता का शत्रु रहता है। वह तिरस्कार से तनिक मुस्कराया कहाँ उसके पिता का पाटन का महल वनवती और सम्मात के भव्य प्रासाद और कहाँ इस सत्ताधीन का भोपड़ा? आसपास के आवास खुले हुए थे परन्तु कोई व्यक्ति दिखाई न पड़ा। केवल आवासों के द्वारों पर बंधी हुई गायें नीरस आँखों से आगन्तुक को निहार रही थीं। वह सोच रहा था दुर्गपाल का ठिकाना पूछा जाए तो किससे?

घण्टानाद से प्रतीत होता था कि पास ही महादेव का मन्दिर है। वहा कोई होगा यह सोचकर वह उसी ओर बढ़ा।

ज्यों ही वह मन्दिर की ओर बढ़ा ठिठककर खड़ा रह गया—उसकी दृष्टि मन्दिर के द्वार से उसी ओर आती हुई एक स्त्री पर पड़ी। आश्चर्य से उसकी आँखें खुली रह गईं। उसे वह स्त्री नहीं देवांगना प्रतीत हुई। प्रत्येक भंगिमा में आकर्षण था प्रत्येक अंग में लालित्य था पावों की अंगूठे से निकलती हुई कमल की डंडी सदृश्य पर की उंगलियों से लेकर माथ के केश सदृश्य केशों की भव्यता तक अपूर्व और अद्भुत सौन्दर्य था। उस स्त्री की आँखों में मेनका जैसा मद था और ऋषिवरों का मन सुमाने वाली मोहकता थी। युवक के हृदय को इस दिव्य सौन्दर्य ने एक बार मूर्छित कर दिया।

वह उषा की भांति उज्ज्वलता का प्रसार करती हुई निकट आई। आम्रभट की आँखें मुग्ध हो गई। केवल एक कदम दूर वह रुकी आँखों

'वह जरा दूर रहते हैं—पट्टनी पौर में। मैं वहीं जा रहा हूँ।' उस नागरिक ने कहा।

'कृपा करके मेरे आदमियों को वहाँ तक पहुँचा देना—हमीर!' आम्रभट ने अपने आदमी को सम्बोधित किया तू इनके साथ चला जा और सेठ तेजपाल को मेरे आने की सूचना दे। मैं दुगपाल से मिलकर आता हूँ।

आज्ञा पाकर उसके अनुचर नागरिक के साथ चले गए। क्षण मात्र के लिए एकान्त पाकर आम्रभट के मन की अभिलाषा मुख पर प्रगट हुई। उसने जाते हुए अपने अनुचरों को निहारा।

बचपन से ही उसका जीवन रसमय था। सौभाग्यशाली बालक की भांति उसे माँ बाप का लाड़-प्यार मिला था शिक्षा मिली थी और अब वह पांच वर्षों से सम्मानित योद्धा की प्रतिष्ठा से युद्ध में भी भाग लेने लगा था—परन्तु उसका रसिक स्वभाव शान्ति का आनन्द लेने के लिए आतुर था। कल्लोल करती हुई नर्मदा की लहरें गगनचुम्बी मन्दिर के निखर प्रभात के आनन्द में डूबा हुआ नगर और प्रियतमा। तेजपाल सेठ की पुत्री उसकी भावी पत्नी थी—उस प्रियतमा से साक्षात की आशा ने मन में कोमल भावनाओं का ज्वार भर दिया। परन्तु ...व्य महाराज के आदेश और पिता की आज्ञा ने भावनाओं का ज्वार ... दिया। एक असमय निःश्वास लेकर वह गांव की ओर बढ़ा।

उसके तेजस्वी मुख—आभूषणों से सज्जित शरीर तथा प्रभावशाली ...त्व से प्रभावित दूकान खोलने वाले व्यापारी उसे पीछे मुड़-मुड़ ...ख रहे थे परन्तु उन पर दृष्टि न डालकर आम्रभट साम्बा ...ति का बाड़ा पूछता हुआ आगे बढ़ा।

...वाज के अनुसार उस बन्दरगाह पर ठहरना चाहिए था अपना ...भजकर दुगपाल को अपने आगमन की सूचना देनी चाहिए थी ... पालकी में बैठकर नगर प्रवेश करना चाहिए था। ऐसा करना ...ा उसके पिता की प्रतिष्ठा के अनुकूल था। परन्तु आम्रभट

स्वभाव से सरल और हृदय से उमगी जीव था। टीमटाम उसे पसन्द नहीं थी। अलबत्ता उसके स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि चलते चलते वह इस अपरिचित नगर का मार्ग भूल गया।

इस समय वह एक ब्राह्मण मुहल्ले में था। साधारण घरों की बस्ती थी। एक घर से वेदोच्चार का स्वर सुनाई दे रहा था। यहीं कहीं था साम्बा वृहस्पति का बाड़ा। आम्रभट को आश्चर्य हुआ क्या इसी बस्ती में लाट का दुर्जय योद्धा भृगुकच्छ का दुर्गपाल महाराज त्रिभुवन पाल का परममित्र किंतु उसके प्रतापी मन्त्री पिता का शत्रु रहता है। वह तिरस्कार से तनिक मुस्कराया कहाँ उसके पिता का पाटन का महल कर्णवती और खम्भात के भव्य प्रासाद और कहाँ इस सत्ताधीश का झोंपड़ा? आसपास के आवास खुले हुए थे परन्तु कोई व्यक्ति दिखाई न पड़ा। केवल आवासों के द्वारों पर बंधी हुई गायें नीरस आँखों से आगन्तुक को निहार रही थीं। वह सोच रहा था दुर्गपाल का ठिकाना पूछा जाए तो किससे?

घण्टानाद से प्रतीत होता था कि पास ही महादेव का मन्दिर है। वहां कोई होगा यह सोचकर वह उसी ओर बढ़ा।

जसे ही वह मन्दिर की ओर बढ़ा ठिठककर खड़ा रह गया—उसकी दृष्टि मन्दिर के द्वार से उसी ओर आती हुई एक स्त्री पर पड़ी। आश्चर्य से उसकी आँखें खुली रह गईं। उसे वह स्त्री नहीं देवांगना प्रतीत हुई। प्रत्येक भंगिमा में आकर्षण था प्रत्येक अंग में लालित्य था पांवों की अंगूठे से निकलती हुई कमल की डंडी सदृश्य पर की उंगलियों से लेकर सांप के फन सदृश्य केशों की भव्यता तक अपूर्व और अद्भुत सौंदर्य था। उस स्त्री की आँखों में मेनका जैसा मद था और ऋषिवरों का मन लुभाने वाली मोहकता थी। युवक के हृदय को इस शिष्ट सौन्दर्य ने एक बार मूर्छित कर दिया।

वह उषा की भांति चंचलता का प्रसार करती हुई निकट आई। आम्रभट की आँखें मुग्ध हो गईं। केवल एक कदम दूर वह रुकी आँखों

में भलकते हुए आश्चर्य सहित उसने पूछा, किससे काम है ?

युवक के कानों में गौरव संगीत गूँजा। उसने शिथिलता अनुभव की और एक हाथ पीछे करके दीवार का सहारा लिया।

युवती युवक की घबराहट देखकर मुस्कराई। युवक का अचेत हृदय उसके हास्य के प्रभाव से जाग्रत हुआ मैं साम्बा बहस्पति का ।

हाँ। बस इतना कहकर युवती पास वाले मकान में जाकर अदृश्य हो गई।

तब ग्रामभट को ऐसा लगा जैसे पृथ्वी पर प्रलयकाल का अंधकार उतर आया हो। बन्द होते हुए द्वार में अदृश्य होती हुई सुन्दरी मानो उसका हृदय साथ लेती गई।

शरीर की सुध बुध न रही। वह कहाँ है किस लिए यहाँ खड़ा है—किस काम के लिए वह अमुकच्छ आया था—वह सब भूल गया। उस ऐसा अनुभव हुआ कि उसका हृदय उसका जीवन और उसकी समस्त आशायें सब उस दरवाजे के पीछे जाकर छुप गई हैं।

किसे पूछते हो भाई ? एक आवाज सुनकर वह चौंका। पास ही के घर स एक विद्यार्थी हाथ में आचमनी पात्र लिए हुए निकला। उसे एसा लगा कि वह कुछ पूछ रहा है।

ऐं। बड़ी कठिनता से अपने मस्तिष्क को स्थिर करके उसने विद्यार्थी की ओर देखा।

हैं क्या किसीसे मिलना है ?

यही प्रश्न पहले भी पूछा गया था उस स्वर की मीठी स्मृति से विभोर होकर ग्रामभट ने कहा—दुर्गपाल से।

'अरे दुर्गपाल महाराज से मिलना है वह तो उस तरफ रहते हैं।

तो क्या यह साम्बा बहस्पति का बाड़ा नहीं है ?'

यह पुराना बाड़ा है। महाराज तो नए बाड़े में रहते हैं। आइए मार्ग बताता हूं।

परन्तु मन तो बन्द द्वार में अटका था। पांव नहीं उठे। संकेत से

उस द्वार को दिखाकर पूछा—यह घर किसका है ?

यह तो पाठशाला है क्यों ?

कुछ नही वसे ही पूछ लिया था।

२

भ्राम्रभट भ्रात्म विस्मत सा विद्यार्थी के पीछ पीछ चल दिया। थोड़ी दूर चलने के बाद साम्बा वृहस्पति का नवीन व डा भ्रा गया।

यहाँ घर छोटे ही थे भ्रलबत्ता नए थ वेदपाठ के उच्चारण के स्थान पर भ्राम्रभट ने वहाँ घोडों के हिनहिनाने की ध्वनि सुनी। यहाँ के घरा के भ्रांगन में जुगाली करती गायें नहीं थी उनक स्थान पर यहाँ राजकर्मचारियों की चहल-पहल थी।

भ्राप उस रास्ते से भ्रन्दर जाइएगा वहाँ महाराज मिलेंगे। इतना कहकर विद्यार्थी लौट गया।

परन्तु भ्रागे चलने का उत्साह उसम नही था। एकबारगी वह फिर चौंका जब एक सनिक ने भ्राकर उससे पूछा—भट्ट जी किमीसे मिलना है ?

मुझे मुझे दुर्गपाल महाशय स मिलना है।

भ्रन्दर भ्राइए। नम्रवाणी में भट ने कहा।

उस द्वार के भ्रन्दर एक लिपा-पुता चबूतरा था भ्रौर उस पर बठ हुए कितने ही भ्रादमी वार्तालाप में निमग्न थे। कुछ सनिक सुभट भी थे।

यह सनिक (भट) भ्राम्रभट सहित एक प्रौढ सैनिक के निकट पहुँचा भ्रौर पूछा रुद्रमल जी महाराज क्या कर रहे हैं ?

सोमनाथ पाटन से एक ब्राह्मण भ्राया है उससे बातें कर रहे हैं। ।

सोमनाथ पाटन का नाम सुनकर म्राम्रभट में चेतना जगी। पल मात्र में उसके निश्चेतन हृदय में चतना म्रा गई।

रुद्रमल ने पूछा 'यह भटजी कौन हैं ? साथ ही उसने म्राम्रभट को नमस्कार किया।

मुझे दुर्गपाल महाराज से मिलना है।

कहाँ से पधारे हैं ?

'वंथली से ! महाराज की म्राज्ञानुसार।

महाराज म्रा गए क्या ?

हाँ महाराज मीनलदेवी—सब म्रा पहुँचे हैं।

म्रापका 'ंम नाम ?

म्राम्रभट ! दुगपाल महाराज को कृपया सूचित करें कि उदा मेहता का पुत्र म्राम्रभट महाराज का सदेश लेकर म्राया है।

उदा मेहता मत्री महाराज ! क्षणमात्र के लिए रुद्रमल ने शका स म्राम्रभट को निहारा ! परन्तु दूसरे क्षण ही उसकी शका विश्वास में परिणित हो गई। म्राम्रभट का रूप म्राभूषण सस्कारी म्रौर म्राकर्षक व्यक्तित्व उसके कथन की सत्यता का प्रमाण था। मान प्रदर्शित करते हुए वह बोला 'पधारिए पधारिए ! इस प्रकार म्रकेले ही क्यों कब म्राना हुम्रा ?

मैं सीधा ब दरगाह स म्रा रहा हूँ। साथ के म्रादमियों की यहाँ कुछ उपयोगिता न थी इसलिए उन्हें नगर सेठ के यहाँ भेज दिया है।

म्राइए विराजिए ! मैं म्रभी स्वयम् महाराज को म्रापके म्रागमन की सूचना देता हूँ। एक पल का भी विलम्ब न होगा।

म्राम्रभट पास ही रखे गए तकिए के सहारे बठ गया म्रौर रुद्रमल शीघ्रता से म्रन्दर चला गया।

इससे पूव कि वह फिर उसी सुन्दरी की स्मृति में खो जाए रुद्रमल लौट म्राया म्रौर बोला 'पधारिए भट जी !'

राजकीय जीवन ! एक म्रप्रिय निश्वास छोड़कर म्राम्रभट उठा

और मन को सावधान होने की सूचना दी। भृगुकच्छ के इस दुर्गपाल के शौर्य की उसने बड़े-बड़े योद्धाओं के मुख से सुनी थी। उसका कुशल राजनीति के विषय में उसने अपने पिता जसे राजनीतिज्ञ से सावधान रहने का आदेश पाया था। सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध महामात्य मुंजाल जसे महापुरुष भी इस दुर्गपाल की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे और त्रिभुवन को पग में करने वाले स्वयम् जयसिंह देव महाराज भी इसका नाम लेते समय किञ्चित भयभीत हो जाते थे।

उस मनुष्य के पास यह अनुभवहीन युवक आया था। ऐसे काम के लिए जिसे करते जाने की बात से वहाँ के बड़े-बड़े महारथी भी कांप उठे थे। उसने अपने क्षेत्र को दबाने का यत्न किया और सफल भी हुआ। वह महामात्य उदा मेहता का पुत्र था—कूटनीतिज्ञों से भेंट और समागम उसकी नित्य दिनचर्या थी।

जिस कक्ष में उसने प्रवेश किया वहां खूब प्रकाश था और इससे पूर्व की वह उस प्रकाश में सामने ही झूले पर बैठे व्यक्ति को भली भाँति देख सके वह व्यक्ति झूले से उतरकर आगे बढ़ा और आम्रभट के स्नेह से दोनों हाथ पकड़कर ममत्व पूर्ण वाणी में कहा अरे उदा मेहता का आवडा ?

इस वाक्य का कहने वाले का चेहरा वह भली भांति देख भी न पाया था कि उससे पूर्व ही उसकी दृष्टि खण्ड के पिछले द्वार की ओर जा पड़ी। वही परिचित एड़ी-नेवर एडी देखकर उसने मन पर छा जाने वाली उस अज्ञात सुन्दरी को पहचान लिया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने आपको सम्भालते हुए अपने स्वागत करने वाले की ओर ध्यान दिया।

कधे पर छूटी हुई मुक्त शिखा से सुशोभित मुख खूब लम्बा और भरा हुआ बदन छोटी-छोटी मूछें गुरु महराज की सी नुकीली नाक चमकते हुए चंचल नेत्र पल मात्र में आम्रभट ने उस व्यक्ति की

महाराज को भजा।

यह तो मुझे मालूम है। खेंगार बड़ा विनोदी है। परन्तु महाराज ने सायले से थानस्थली तक तो जीत ही लिया है—अब काक की क्या जरूरत है ?

महाराज ने प्रतिज्ञा की है कि इस महीने के अंत तक या तो जूनागढ़ नहीं या फिर पाटन नहीं।

काक मुस्कराया, महता मिले थे ?

हाँ उन्होंने भी कहलवाया है कि श्रीमान् ने पन्द्रह वर्ष पहले जो वचन महाराज को दिया था उसका पालन करें।

क्या ?

यही कि अगर महाराज आज्ञा दें तो आप आकर खेंगार को नीचा दिखायें।

वंस मोर्चे का क्या हाल है ?

जिस दिन मैं चला हूँ उसी दिन खेंगार ने छापा मारा था। हमारे पाँच सौ आदमी मारे गए। परशुराम जी बाल-बाल बचे।

यह बात है अच्छा और कुछ कुछ सेना साथ मगाई है ?

नहीं मुंजाल महता ने कहा है कि आप अकेले ही आवें—सेना की आवश्यकता नहीं है और लीलादेवी ।

ऐं ? काक चौंका।

लीलादेवी ने भी संदेश भजा है।

क्या ?

कि यदि आप नहीं आए तो वह स्वयम् भृगुकच्छ आयेंगी ?

किसलिए ?

यह तो मैं नहीं कह सकता। जब मैं उनके सम्मुख पहुँचा तो वह बहुत ही चिन्तातुर थी।

लीलादेवी लाट के सोलंकियों की पुत्र थी लाट को गुजरात

में मिलाने की राजनैतिक आवश्यकता के हेतु स्वयं काक ने लीला का विवाह जयसिंह देव महाराज के साथ कराया था।

'लगता है मेरे प्रति भाव कुछ बढ़ गया है ?

भाव कभी कम नहीं था। यह कहकर बाग्भट ने काक को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा।

तलवार की धार जैसी तीक्ष्ण दृष्टि से काक ने बाग्भट को देखा तुम्हारा सामान कहाँ है ?

'मैंने अपने आदमियों को नगर के सेठ के यहाँ भेज दिया है।

अच्छा ठीक बात है। तुम तो उसके जमाई होने वाले हो न ? अच्छा जाओ मैं जाने की तयारी करता हूं। दरअसल ओबड़ महता के लिए पालकी मगाओ। यह आदेश देकर काक ने बाग्भट से विदा ली।

मन में एक ही प्रश्न था 'क्या इस आदेश में उन्हें मेहता की आशंका है ?

इसी गम्भीर सोच विचार में व्यस्त मधुकच्छ का दुर्गपाल धीमे धीमे चलता हुआ अन्दर गया।

४

मंजरी से मिलने मणिभद्र अन्दर पहुंचे।

मंजरी से मणिभद्र का नाता यह था कि वह उनके गुरु की दौहित्री थी। एक बार वह किसी कारण से जूनागढ़ आई थी तब इस शान्त एवं सरल जीवन में एक हलचली सी मच गई थी। विवाहिता स्त्री पर दृष्टि न डालना धर्म का एक उचित सिद्धान्त है और गुरु की पुत्री की पुत्री शिष्य के लिए भानजी के समान था—यह शास्त्र वचन है। परन्तु मन से कौन जीते। मंजरी को देखकर इन विप्रवर के हृदय में 'विचित्र

भावनाओं का सचार हुआ। जीवन रसमय लगने लगा भोग एवं मोदक से मन भर गया। सोते जागते हर समय गुरु-दौहित्री के दर्शनों की इच्छा मन में रहने लगी।

तब वह जैसे आई थी वैसे ही अपने पति के साथ लौट गई। जिस प्रकार मेघों से आच्छादित आकाश के तिमिर में से ध्रुव तारा चमके उस प्रकार मणिभद्र के भोग और मूलग्रस्त जीवन में वह चमकती ही रही लोप न हो सकी।

वह निशि दिन भृगुकच्छ जाने के लिए तड़पते थे। नींद में बस भृगुकच्छ के ही स्वप्न आते थे। परन्तु बाधा यह थी कि जजमान सब जूनागढ़ में ही थे और और कभी जूनागढ़ के अतिरिक्त कहीं और न गए थे न रहे थे—इसलिए विदेश के नाम से उन्हें भय लगता था। दिन मास और वर्ष—फिर वर्ष बीत गए। मंजरी के मुख दर्शन प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करे या जूनागढ़ ब्रह्म भोज का विलास भोगें ? इन दो सहशों के बीच फंसी ब्राह्मण की मुमुक्षु आत्मा लड्डओं के विलास में ही आनन्दमय हो गई।

इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीते।

पन्द्रह वर्ष बाद जूनागढ़ के खेंगार की रानी ने मणिभद्र को भृगुकच्छ जाने की आज्ञा दी। जिस प्रकार ध्रुव को सौतेली माँ के कटु बोल सुनकर ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाई दिया था उसी प्रकार यह आज्ञा पाकर उसे भी मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो गया। उनके गोल-मटोल शरीर को शोभा न दे ऐसी शीघ्रता से रानी की आज्ञा सिर माथे पर चढ़ाकर उन्होंने जूनागढ़ छोड़कर भृगुकच्छ की यात्रा की।

घर के भीतरी खण्ड में एक सात वर्षीय कन्या एक शिशु का पालना खींचकर उसे झुला रही थी। मणिभद्र ने पहले उसे देखा न था परन्तु फिर भी यह पहचानने में असुविधा हुई। कली ने फूल का रूप धारण किया ! कन्या की आकृति उनके हृदय में अंकित गुरु-दौहित्री के चित्र जमी थी—वही नाक वही आँखें—अन्तर था तनिक रंग का। मंजरी खूब गोरी

थी और कन्या तनिक सांवली। हर्षातिरेक से मणिभद्र ने सम्बोधित किया बेटी तरी मां कहां है ?

कौन ? लड़की चौंकी।

मैं मैं हूँ तेरा मामा। मणिभद्र हँसा और अपने स्वरूप से भयभीत कन्या को उठाकर हृदय से लगा लिया।

अरे भाई जाग जाएगा।

'अच्छा तो यह तेरा भाई है। मणिभद्र ने कन्या को छोड़कर पालन में से बालक को उठा लिया।

अइयो रे राजा बेटा। इसका क्या नाम है बेटा ?

'इसका नाम है बसाई। इस तवे जैसे श्याम वर्ण मामा से भयभीत सी कन्या धीरे धीरे पीछे हटती हुई बोली।

'क्या ?

'बसाई।

इस विचित्र नाम को मस्तिष्क में बसाने का प्रयत्न करता हुआ मणिभद्र धीरे से बोला 'बौ—बौ—बा—स—रि।

इस नाम को धारण करने वाले शिशु में बहुत जितना धीरज न था। अभी आँखें खोलकर उसने इस नए मामा को निहारा और उसमें पूर्व परिचय का कोई चिन्ह न पाकर ऊंची आवाज में रो पड़ा।

वातावरण में आनन्द भरकर उन्मुक्त हास्य से मगन हो हाथ की झोला बना मणिभद्र बोलने लगा— उल्लू—रु—भाई रे—

वार्तालाप के आगे बढ़ने से पूर्व ही अन्दर से आवाज आई— महाश्वेता क्या हुआ ?

मणिभद्र घूमा और पन्द्रह वर्ष पश्चात मंजरी को देखा। बहन ?

मंजरी पहले के समान ही तेजस्वी एवं सुन्दर थी। पन्द्रह वर्षों के प्रताप से उसकी रेखाएं भर आई थीं उसके मुख का सौन्दर्य पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण हो चुका था और उसके गर्व भरे नेत्रों से अमृत की वर्षा हो रही थी।

—

वह मणिभद्र को देखकर विस्मित हो गई किन्तु उसके घूमने पर वह उसे पहचान गई ।

कौन ? भाई मणिभद्रजी ?

हाँ मैं ही मैं ही, बहन मैं ही । इतना कहकर जल्दी से मणिभद्र ने बच्चे को मंजरी के हाथों में दे दिया ।

बठो भाई ।' मंजरी पाट बिछाने लगी किन्तु मणिभद्रजी तो मान के भूखे न थे ।

बहन रहने भी दे । हम तो यह बठे ।' और मणिभद्रजी पाँव पर पाँव चढ़ाकर बठ गए ।

'आओ बेटा मेरे पास !

बालिका तो अब भी मंजरी की साड़ी के पीछे छिपी आश्चर्य में भरकर इस नवागन्तुक मामा को देख रही थी ।

वह तो नहीं आयेगा अभी तुम्हें पहचानता जो नहीं है । सब लोग अच्छे तो हैं ?

'कुशल कसी ? हर भोलानाथ ! जूनागढ़ पर तो यमराज की छाया पड़ रही है बहन ! मणिभद्र ने दुखित होकर गर्दन हिलाते हुए कहा खेंगार महाराज को चारों ओर से घेर रखा है । बस जो भोलानाथ करे वही सही ।

तो फिर यहीं चले आते न ।

मन तो प्रतिदिन यही कहता था परन्तु क्या करूँ ? जजमानवृत्ति ही जो ठहरी और युद्ध के कारण तेरहवीं और श्राद्ध का भी कोई पार नहीं । लो यह भट जी भी आ गए —

क्या मणिभद्रजी ! भेंट कर ली बहन से ?' काक ने पूछा ।

'हाँ । कहकर मणिभद्र ने कनटोपी उतार कर नीचे रख दी ।

मंजरी मुझे तुरन्त जाना होगा ।'

कहाँ ?'

'वंथली ।'

'क्यों ?

काक ने चुपचाप महाराज का आज्ञापत्र बढ़ा दिया। मंजरी ने उसे पढ़ा और लौटा दिया। मूर्ख की भाँति मणिभद्र काक से मंजरी और मंजरी से काक की ओर देखने लगा और बड़ी शीघ्रता से प्रश्न किया।

आप बदला जा रहे हैं ?

तनिक कठोर होकर काक ने इस छिछोर ब्राह्मण की ओर देखा। दूसरों की बात में बात मिलाने की मणिभद्र की आदत उसे अच्छी न लगी।

'क्यों ? स्वर में उपेक्षा थी।

'तब तो बस हो चुका ?

'क्या हो चुका ?

मैं भी बुलाने के लिए ही आया हूँ भट्टराज ! मणिभद्र ने कहा। एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और वह भय से चारों ओर देखने लगा।

'यहाँ कोई नहीं सुनेगा किसने भेजा है तुम्हें ?

'राजकन्या ने। धीमे से वह बोला।

राजकन्या। चकित होकर काक बोलते-बोलते रुक गया। क्या क्या ?

'उन्होंने आपको जूनागढ़ बुलाया है।

घबरा कर काक पीछे हटा—'हें ?

'हाँ सब कुछ सुनाता हूँ।

काक ने आँखों-ही आँखों में स्वीकृति दी।

मुझे देवी ने चुपचाप बुलवा भेजा। डर लगने के पश्चात् मैं ब्रह्म-भोज का न्यौता होते हुए भी महल में गया जब पहुँचा तो महाराज और देवी किसी बात पर झगड़ रहे थे। महाराज की आँखें लाल हो रही थीं और देवी की आँखें सजल थीं। हर भोलानाथ ! मैं तो ऐसा घबराया कि बस ! और फिर भय भी तो नहीं पी थी।

अच्छा फिर ? काक ने अधीरता से कहा।

महाराज क्रोधित होकर चले गये और तब परिचारिका मुझे अन्दर ले गई। मैं तो थरथर कांप रहा था। हर भोलानाथ! मुझसे देवी ने पूछा — तुम्हारा ही नाम मणिभद्र शुक्ल है न? मैंने उत्तर दिया— हाँ। जगन्नाथ आचार्य के शिष्य हो न? देवी ने प्रश्न किया। हाँ देवी। मैंने उत्तर दिया। उनकी नातिन के पति से परिचित हो? उन्होंने पूछा। मुझे हँसी आ गई। हर भोलानाथ! मैं भला अपने बहनोई को न पहचानू।

फिर? काक ने बात आगे बढ़ाने का संकेत किया।

मैंने हाँ कही। देवी ने कहा—महाराज— मुझे और महाराज! महाराज! क्यों है न आश्चर्य की बात। वह बोली—तुम चुपचाप उनके पास जा सकोगे? मैं तो भाई घबरा गया। हर भोलानाथ! जूनागढ़ का ब्राह्मण भृगुकच्छ कैसे जाय? शुक्ल जी! इतना सा काम करदो। यदि मैं सोरठ की रानी रही तो जन्म भर तुम्हारा उपकार न भूलूँगी। इतना कहते कहते देवी की आँखों से आँसू झरने लगे। हर भोलानाथ! मुझे रुलाई आ गई। मैंने कहा— मेरे प्राण तक अर्पित है। हर भोलानाथ! इतना कह भोले ब्राह्मण ने अपनी आँखों के आँसू पोंछने का उपक्रम करके काक की ओर देखा। काक की आँखें स्थिर थीं। आँख की पलक ही से उसने मणिभद्र को बात पूरी करने को कहा। मंजरी की आँखें भी गीली हो गई। गला साफ कर मणिभद्र ने फिर कहना आरम्भ किया।

देवी ने कहा— शुक्ल जी! शीघ्र ही प्रभास होकर भृगुकच्छ जाओ। वहाँ जाकर काकभट से मिलकर एकान्त में कहना।

क्या?

काकभट जी! देवी ने कहलवाया है। तुमने मुझे अपनी बहन बनाया था। एक समय तुमने मेरी ओर अनेक बार मेरे राज की भी लाज रखी थी। आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई सहारा नहीं है अतएव जहाँ भी हो शीघ्र मेरे पास चले आओ। इसके बाद देवी ने

मेरे साथ एक सामत कर लिया। वह मुझे प्रभास तक छोड गया और फिर मैं यहाँ तक आया।

मंजरी ने काक की ओर देखा। काक विचार-मग्न था। दोनों में से कोई कुछ बोला नहीं। मणिभद्र समझ गया कि वहाँ से अब उसका जाना ही उचित है। अत वह उठ खडा हुआ।

'और कुछ ?' काक ने पूछा।

अरे हाँ—

क्या ?

अन्त में देवी ने कहा था— मैं पाटन से द्रोह नहीं करना चाहती।

मैं देवी से किस प्रकार भेंट कर सकता हूँ ?

प्रभास के निकट चोखाड है न जानते हो ?

'हाँ।

वहाँ मोती अहीर नामक व्यक्ति रहता है। उससे कहना कि मैं मणिभद्र धुवन का आदमी हूँ वह सब प्रबन्ध ठीक कर देगा।

अच्छी बात है तुम जाकर स्नान-सध्या से निपट लो।

इतना कहकर काक ने मणिभद्र को विदा किया।

५

मणिभद्र के जाने के बाद मंजरी ने निज को पुत्री को गोद में देकर उसे बाहर भेज दिया और स्वय काक के पास आकर उसके बोलने की राह देखती हुई खडी हो गई।

मंजरी ! लगता है दाल में कुछ काला अवश्य है।

मुझे भी ऐसा ही लगता है।

'नहीं तो एक ही साथ तीनों को काक की याद नहीं आती।

तीसरा कौन ?

लीला देवी।

मजरी हस पड़ी। उसने विनोद में काक के सामने आँखें गचा कर कहा— अच्छा उन्होंने भी बुलावा भेजा है ?

काक भी हँसा—'हाँ आम्रभट सदेश लाया है। तुझे लीला देवी से ईर्ष्या होती है क्या !'

'मुझे ? ईर्ष्या करना है तो लीला देवी करे कि उसे काक न मिला। भला मैं क्यों ईर्ष्या करूँ। गर्व से मजरी ने कहा।

काक ने ओठों पर उगली रखते हुए कहा— इस तरह पागलों की सी बात न कर। कोई सुन लेगा। इन्होंने भी मुझे इसी समय बुलाया है। इसमें कोई रहस्य अवश्य है। काक ने गम्भीर होकर कहा।

क्या हो सकता है। कुछ सोचा ?

यही तो समझ नहीं आ रहा है। दूसरी बातें तो कुछ-कुछ समझ में आती हैं।

वह क्या ?

जयसिंहदेव महाराज को जूनागढ़ जीतना है इसलिए काक की आवश्यकता आ पड़ी और उदा महता को भृगुकच्छ चाहिए इसलिए मुझे यहां से हटाना है।

उदा— चौंककर मजरी ने पूछा। पहले उस द्वारा दिये गए दुखों की स्मृति से उसके माथे में बल पड़ गए।

हाँ अभी उसने लड़के आम्रभट के साथ यह आज्ञा पत्र भेजा है। मेरे स्थान पर वही दुर्गपाल बनेगा।

हैं !' मजरी के चेहरे का रग सफेद पड़न लगा और उसकी वाणी काँपने लगी।

चिन्ता की कोई बात नहीं। ये लड़का तो बेचारा अच्छा है— चुटकी में पिस जाय एसा ! भृगुकच्छ में उससे कुछ होना-जाना नहीं है।

'और यहाँ तुमको—

मुझे क्या हो सकता है ? गर्व से काक हँस दिया। मेरी उपयोगिता सभी जानते हैं। और फिर लीला देवी त्रिभुवनपाल महाराज के होन कोई मरा बाल बाँका भी नहीं कर सकता। फिर इतने वर्षों में क्या मै निर्बल हो गया हूँ ? अकेले के हाथो न कितनों के छक्के छुड़ा दिये थे वह क्या भूल गई ? कहकर काक ने मजरी के गाल पर टकोर की। मजरी ने उसका हाथ लेकर दबा दिया कुछ देर तक दोनों नहीं बोले केवल दोनों के हृदय में आपस में संवाद चलता रहा।

और मै तीसरा बुलावा—?

यही सबसे अधिक पेच में डालता है। राणक देवी को मेरी सहायता की क्या आवश्यकता आ पड़ी ? यही बात समझ में नहीं आती। मेरी स्थिति तनिक बेढंगी हो जायगी।

लेकिन उससे भेंट बिना कोई चारा नहीं है क्या ?

भेंट अवश्य करूगा। फिर जो होगा देखा जायेगा। अब तू मेरे प्रस्थान की तयारी कर। मैं अन्य बातें ठीक कर लू।

मजरी ने स्नेह से काक के हाथ पर हाथ रख दिया और उसकी ओर देखने लगी।

क्यों क्या मेरा जाना भला नही लगता ? डरती है ?

बिलकुल नहीं मजरी ने कहा। मेरे कैलाश जैसे दुर्धर्ष और कालाग्नि के समान दुसह पति को हो ही क्या सकता है ? किसमें इतना साहस है कि वह मजरी की ओर उगली भी उठा सके ? प्रसन्न होकर जाओ मैं तो यही मानती रहती हूँ कि तुम दण्डनायक बनो।

इस जीवन में तो दण्डनायक बन नहीं सकता।

यह कैसे जाना ?

मुझ से जयदेव महाराज डरते हैं और पाटन के मन्त्रीगण भी घबराते हैं।

अच्छा देखना। हस कर मंजरी ने कहा। एक स्त्री ने तुम्हें लाट

के सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए निमन्त्रित किया था। तुमने उसे अस्वीकार कर मुझे पसन्द कर लिया। तो मुझे तुमको दण्डनायक तो बनाना ही चाहिए। मंजरी की आँखें एक साथ गर्व और प्रशंसा से चमक उठीं।

और न बन पाया तो? काक ने पूछा।

'तो समझ लेना कि पाटन की नारी में तेज नहीं रहा।'

किन्तु तेरे प्रण का क्या होगा?

मेरे प्रण की तो मैंने अभी से पूर्ति कर रखी है। तुम मेरे लिए दण्डनायक हो और सदा रहोगे।

काक ने हँस कर मंजरी का हाथ दबा दिया।

अच्छा अब मैं देवभद्र सूरिजी के उपाश्रम में हो आता हूँ। वहाँ कुछ-न-कुछ पता लगेगा ही।

उसने पगड़ी पहनी और तलवार बाँध कर बाहर आया। नमस्कार करते सुभटों को जय-जय कहता हुआ वह घोड़े पर चढ़ा और दो चार घुड़सवारों के साथ देवभद्र सूरिजी के उपाश्रय की ओर मुड़ गया।

६

जब साम्बा बृहस्पति के बाड़े से पालकी में बैठकर नगरसेठ के घर की ओर प्रस्थान किया उस समय भी आम्रभट के मस्तिष्क के सामने वही अपरिचित सुन्दरी ही थी।

दुर्गपाल उसे भले लगे। उनके सोरठ प्रस्थान करने पर स्वयं भृगुकच्छ का दुर्गपाल बन कर वह निश्चिन्त होकर रह सकेगा, इसमें उसे कोई सन्देह न रह गया था। पिता का उसे बार-बार सावधान करना निरर्थक लगा भृगुकच्छ की सत्ता को अपने हाथ में करना क्यों

उन्हें इतना कठिन लग रहा था यह उसकी समझ में नहीं आया।

अभी तो उस सुन्दरी को खोज निकालना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था। बाजार से निकलते हुए उसने चारों ओर देखा किन्तु उस शरीर-विन्यास की दूसरी स्त्री उसे न दिखाई पड़ी। वैसे अप्रतिम सौन्दर्य की खोज निकालना इस गाँव में सहज तो होगा ! किन्तु कठिन भी कम नहीं होगा ! वह एकाएक महत्वशाली पुरुष जो हो गया था नगरसेठ की पुत्री के साथ उसका सम्बन्ध जो हो चुका था किन्तु मगुकच्छ से अच्छी तरह परिचित कोई विश्वासपात्र मनुष्य उसके साथ न होने के कारण यह काम अभी कठिन दिखाई पड़ा।

आँखें बन्द कर शिर तकिए पर टिका वह उस रमणी के अंगनाविन्य का अपनी आँखों के सम्मुख लाने की चेष्टा करने लगा। होठों में कैसा आकर्षक माधुर्य नाक की कैसी मनोहरी बनावट आँखों में कैसी सुन्दर भेंक मोहिनी ! आधी खिल पड़ती स्तनों की मधुर रेखाएँ पाँव तक की रेखाओं में निखरी नम्रता इन सब विशेषताओं का उसने आद्यन्त विलासी की दृष्टि से विश्लेषण किया। वह विक्षिप्त सा हो गया।

जन्म से कभी किसी ने उसकी इच्छाओं का अनादर न किया था जो माँगता था वही वस्तु तुरन्त उसे मिलती थी। उस महेता का सम्पत्ति और सत्ता दिन-दिन इस प्रकार बढ़ रही थी कि किस का क्या मजाल जो पाटण में उसे कोई भी ना कर सके यह तो विजित देश की छोटी नगर की राजधानी थी और वह स्वजन था उसका दुर्भाग्य और क्या चाहिए ?

वह स्त्री विवाहिता अवश्य थी तो क्या ! उसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता इसलिए उसे खोजना तो पड़ेगा ही। वस्त्र और स्थान से ब्राह्मणी लग रही थी। किस धन्पाठी के मार्ग से इस अप्सरा का निर्माण हुआ होगा ? जो भी हो कौन ऐसा है जो दान और मोहन को देख न ललचा उठे ? ब्राह्मणों के प्रति उसका तिरस्कार श्रावक श्रेष्ठ के पुत्र के योग्य ही था। इन सब विचारों में मग्न होते हुए भी

शहर का व्यापार उसकी दृष्टि से बच न पाया। भृगुकच्छ में घर छोटे और मार्ग सकरे थे। मन्दिर-बहुत और जीर्णावस्था में थे। उनमें न पाटण के मन्दिरों का ठाठ था न मोढ़ेरा के मन्दिरों की सी भव्यता। फिर भी गुजरात के सभी नगरों से लाट की इस राजधानी में एक विशेषता दिखाई पड़ी। ऐसा लगता था कि सम्पूर्ण नगर बस छोटी छोटी दूकानों का ही बना हुआ है।

हर चौक में व्यापारियों की ही बस्ती अधिक थी। मुनीम कान में कलम खोंसे कन्धे पर थैलों को धरे लिए इधर उधर दौड़ धूप कर रहे थे और माल से भरी गाड़ियों की शृंखला चली ही जा रही थी। इस प्रकार का जीवन कुछ अंशों में खंभात में भी था किन्तु इस नगर की रेल पेल के सामने तो खंभात उजाड़ प्रतीत हुआ। इसी कारण आम्रभट की पालकी उठाने वाले वेग से न चल पा रहे थे कहीं-कहीं तो उन्हें रुक जाना पड़ता था। इससे आम्रभट की विचार शृंखला बार बार टूट पड़ती थी और उसका जी तिलमिला उठता था।

आम्रभट को इस नगर में कई बातें बड़ी विचित्र लगीं। उसके जैसा महत्वशाली व्यक्ति पालकी में बैठकर चला आ रहा था किन्तु किसी को उसकी ओर ध्यान देने का भी अवकाश नहीं था नमस्कार करने की बात तो अलग रही। नागरिक इतने विनयहीन थे कि अपने काम को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान तक नहीं दे सकते थे।

वह सोचने लगा कि खंभात में रुपया इतना है कि समाता नहीं फिर भी उससे तिगुने बड़े इस बन्दरगाह में क्यों कुछ दिखाई नहीं पड़ता? कहाँ उसके पिता की दूकान का वैभव और कहाँ भृगुकच्छ के पट्टणी चौक की दूकानें! उसके पिता की बात अब उसकी समझ में आई। उसके पिता ने खंभात बन्दर पर अधिकार करके अतुलित सम्पत्ति एकत्रित की थी और अब उसे इस नए देश पर अधिकार करने के लिए भेजा था। आम्रभट मन ही मन हँस दिया वह भी अपने पिता के समान समृद्ध और सत्तावान बनेगा।

हवाई किले बनाता हुआ भ्राम्रभट तेजपाल नगर सेठ के यहाँ जा पहुँचा। सेठ बाहर गये हुए थे अतएव उनका पुत्र रेवापाल उसका स्वागत करने के लिए खड़ा हुआ था।

रेवापाल लगभग बीस वय का था—सुन्दर ठिगना सशक्त। उसके मुख पर भरे हुए घावों के चिह्न थे। उसके हाथ बता रहे थे कि उनमें शस्त्र चलाने की असीम शक्ति है। उसकी आँखें निश्चल और उसका मुख गम्भीर था। उसे देखते ही सभी का उत्साह ठण्डा पड़ जाता था।

भ्राम्रभट के पालकी से उतरने पर रेवापाल ने उसका स्वागत किया।

पधारिए श्रेष्ठ सेठ ! पिता जी अभी अभी बाहर गये हैं। उसकी आँखों में न स्नेह था न आदर उसकी वाणी में हृदय की लहरें भी न थीं। ऐसा लग रहा था मानों और कोई चारा न होने के कारण ही उसको यह करना पड़ रहा।

भ्राम्रभट तो इस होने वाले साले का व्यवहार देखकर ही ठण्डा पड़ गया।

मेरे सैनिक आ गए ? उसने बड़े सकोच से हँसकर पूछा।

'हाँ। गम्भीर होकर रेवापाल ने उत्तर दिया।

'आप कुशल तो हैं !

हाँ कहकर एक शब्द भी अधिक कहे बिना वह आगे हो गया भ्राम्रभट उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह इस गांभीर्य और निःशब्द तिरस्कार का कारण इसलिए नहीं समझ पाया कि वह रेवापाल के स्वभाव से पूर्णत परिचित न था।

रेवापाल लाट की नष्ट हुई सत्ता और स्वतन्त्रता का भक्त था उनके नष्ट होते ही वह जीते जी मुर्दा-सा हो गया था।

७

रेवापाल की गंभीर प्रकृति को समझने के लिए लाट के इतिहास के कई-एक पिछले पृष्ठ खोलने होंगे।

लाट का अन्तिम प्रतापी राजा बारप था। लाट के दुर्भाग्य से पाटण की गद्दी पर उससे भी अधिक प्रतापी सोलंकी मूलराज बैठा। बारप ने मूलराज को पराजित किया और मूलराज ने बारप को मात दी, किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। बारप के बाद मूलराज के पुत्र चामुंड ने भृगुकच्छ लिया और लाट में अनहिलवाड़ पाटन की सत्ता स्थापित करना आरम्भ किया। चामुंड के बाद भीमदेव ने लाट की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया किन्तु कर्णदेव के समय में पाटन ने लाट को अपने में सम्मिलित करने का विचार किया।

युवावस्था में मुंजाल ने लाट पर चढ़ाई की थी और वहाँ के पद्मनाभ महाराज को भी मार डाला था। परन्तु इससे पाटन को कुछ भी लाभ न हुआ। पद्मनाभ महाराज का पुत्र युद्ध में खेत रहा फिर भी सेनापति ध्रुवसेन ने मही से कावेरी तक लाट की सत्ता बनाए रखी। अनेक बार भृगुकच्छ लिया और फिर खो दिया हारे और हराया।

इसी काल में दो जनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। ये तो दोनों बच्चे किंतु रूप और गुण में समान थे। दोनों युद्धकला में कुशल थे। एक था निर्धन ब्राह्मण और दूसरा था धनवान नगर सेठ का पुत्र। ब्राह्मण पाटन के दण्डनायक त्रिभुवनपाल की सेना में भर्ती हो गया वणिक ध्रुवसेन की सेना में ही बना रहा। एक था काक दूसरा था रेवापाल।

काक अधिक चतुर था। उसे विश्वास था कि ध्रुवसेन कुछ भी करलें फिर भी पाटन की सेना के आगे उसकी एक न चलेगी। पद्मनाभ महाराज की पुत्री मृणालकुंवर को ध्रुवसेन सदा अपने साथ रखता था। वह लाट की अस्त होती हुई सत्ता और स्वतन्त्रता की मूर्ति मानो

जाती थी इसलिए प्रतिदिन घटती हुई सेना उसका मुख देखकर अपना साहस न खोती थी। फिर भी विजय की उसे कोई आशा नहीं थी। इस कठिनाई में काक को एक बात सूझी। यदि त्रिभुवनपाल सोलंकी मृणालकुंवर से विवाह कर लेते हैं तो वे स्वयं लाट के स्वतन्त्र राजा बन जायंगे लाट की महत्ता को आंच नहीं आएगी ध्रुवसेन की प्रतिष्ठा बनी रहेगी और पाटण की कड़वाहट भी जाती रहेगी किन्तु यह मार्ग तो बन्द था। त्रिभुवनपाल स्त्री दूसरा ब्याह करना ही नहीं चाहते थे और यदि वे स्वीकार भी कर लेते तो उनकी पत्नी काश्मीरा देवी उन्हें ऐसा कभी न करने देती। यदि यह भी हो जाता तो त्रिभुवनपाल में इतनी शक्ति न थी कि वह लाट की स्वतन्त्रता के झंडे को उठाए रख सकें। अगर वह ऐसा करने का प्रयत्न भी करता तो मुंजाल महेता कभी उसे सफल नहीं होने देते। वास्तविकता जानने के लिए काक ने पाटण जाने का काम अपने सिर लिया।

वहां उसे विश्वास हो गया कि एक-न-एक दिन लाट को गुजरात की सत्ता माननी ही होगी तभी उसके चतुर मस्तिष्क में यह बात समा गई कि लाट जितना शीघ्र गुजरात में सम्मिलित हो जाय उतना अच्छा। वह अपनी सहज बुद्धि के द्वारा ध्रुवसेन की सत्ता को नष्ट करने के प्रयत्न करने लगा।

लाट के तीन चौथाई नागरिकों ने पाटण की सत्ता स्वीकार कर ली थी। ध्रुवसेन की सेना पाटण की सेना के दशांश के बराबर थी और वह भी दिन दिन घटती जा रही थी। लाट का सम्पत्तिशाली व्यापारी वर्ग मुंह से रुककर उदय होते हुए सूर्य के ताप में आनन्द कर रहा था। ध्रुवसेन ने परिश्रम करने में कुछ भी उठा न रखा। अपनी भव्य दाढ़ी के कुछ बालों को दांतों के बीच में दबाकर वह ध्रुव की भांति अटल खड़ा रहा। उसकी छोटी-सी सेना ने मृगकच्छ और अपनी राज्य लक्ष्मी के समान राजकन्या मृणालकुंवर पर अपना अधिकार बनाए ही रखा।

८

एक पुराने घर के चबूतरे पर फहराती स्वतन्त्र लाट की ध्वजा के नीचे इस हतभागे देश का अन्तिम सत्ताधीन एक पत्थर पर बैठा हुआ था। उसकी सफेद दाढ़ी के अस्त-व्यस्त केश मरते हुए सिंह की अस्त-व्यस्त अयाल की भांति उसके वृद्ध मुख की भव्यता बढ़ा रहे थे। उसकी आँखें लाल और उसके सिकुड़े हुए भाल पर निराशा की रेखाएं थीं किन्तु दोनों ही में विशाल एकाग्रता थी।

शरीर पर स्थान-स्थान पर पट्टियाँ बंधी हुई थीं किन्तु फिर भी वह एक हाथ में एक बड़ा भाला लिये हुए था। समय समय पर उसके होठों से लाट का जयघोष— जय गंगानाथ —निकल पड़ती थी। उसके चारो ओर बीसेक योद्धा सटकर खड़े हुए थे। उनके शरीरो पर भी पट्टियाँ थीं। उनकी आँखों में भी मरते हुए सिंह का ज्वलत तेज था। सभी भूख, प्यास और विश्राम के अभाव में सूखकर क्षीण हो गए थे किन्तु फिर भी उनके अंग-अंग से अदिग शौय झलकता था।

शस्त्र रहित काक तेजपाल को लेकर एक योद्धा के पीछे-पीछे वहां पहुँचा। चारों ओर श्मशान से भी अधिक सन्नाटा था केवल मरे हुए योद्धाओं के मुर्दों को चाटते श्वानों की भयावह भूक दूर से सुनाई दे रही थी। जब उसने इस भयानक स्थान पर लाट की नष्ट होती राज लक्ष्मी के अन्तिम रक्षक को यमराज को ललकार कर खड़े होते देखा तो उसके हृदय को आघात लगा। ध्रुवसेन से उसने शस्त्र विद्या सीखी थी और रेवापाल के साथ खाना खेलना—सभी तो हुआ था। वहाँ खड़े हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले सभी योद्धाओं से वह परिचित था। वह स्वयं विजयी विदेशी सेना का नायक और विदेशी राजा का विश्वासपात्र था। वह स्वदेश के हित में लगा हुआ था या उसके साथ कपट कर रहा था? एक बारगी भी उसका माथा चकरा गया व्यथा से उसने आँखें मूंद लीं। पल भर के

लिए उसे काक ने छू गई। फिर उसकी दृष्टि ऊपर फरफराती गंगानाथ की ध्वजा पर पड़ी। विवशीभूता के परिचित गान सुनकर वह कह उठा जैसी गंगानाथ महाराज की इच्छा। दूसरे ही क्षण वह स्वस्थ होकर आगे बढ़ा और ध्रुवसेन के निकट जाकर सादर प्रणाम करते हुए कहा गुरुदेव प्रणाम! काक ने जिस योद्धा से शस्त्र विद्या सीखी थी उसे उसके असली नाम से सम्बोधित किया। ध्रुवसेन ने बिना कुछ बोले गर्व से अपने पैर पीछे खींचकर काक को चरण स्पर्श करने से रोक लिया उसके स्पर्श करने से वह दूषित हो जायगा यह भावना ध्रुवसेन ने छिपाई नहीं। काक सम्मान से झुक एक ओर तनिक हटकर खड़ा हो गया।

'काक! थोड़ी देर के बाद उच्छ्वास और निरन्तर बोलते रहने के कारण बैठ हुए गले से वृद्ध योद्धा ने कहा— किस काम आए हो हमारी निर्बलता देखने?'

गुरुदेव नम्र और सम्मानपूर्वक स्वर में काक ने कहा। 'महाराज आप न कभी निर्बल थे और न कभी हो सकते हैं। मैं तो केवल एक प्रार्थना करने आया हूँ।

प्रार्थना? रोषावेश बीच ही में बोल उठा। उसके गात्र ऐंठ गए थे। उसकी आँखें विक्षिप्त मनुष्य की आँखों के समान चमक रही थीं। 'तुम्हें दास बनाने आया है?

'नहीं भाई' अपमान पीकर स्नेह मिश्रित स्वर में काक ने कहा। मैं तो लाट के अमर योद्धाओं के दर्शन कर कृतार्थ होने आया हूँ और प्रार्थना करने आया हूँ कि अब यह हठ छोड़ दो। जो आपने किया वह न तो कोई कर सकता था और न कोई करेगा किन्तु जिस लाट और मृगालंकुवर के लिए यह सब किया अब उन्हीं की भलाई के लिए हठ त्याग दो।

अच्छा हठ त्याग दें और वह भी तेरे कहने से? ध्रुवसेन ने तिरस्कार से हुंकार कर कठोर स्वर में पूछा— तेरे कहने से? आश्चर्य है

कि तुझे मुंह दिखाने का साहस कैसे हुआ। मुझे मालूम है तू कौन है? तू है विदेशी पट्टणियों का क्रीत सेवक! देश की लगन अपने अन्नदाता की लाज और माइयों का स्नेह—कुछ भी तो तुझे बिकते न रोक सका। खुद बिक गया और भृगुकच्छ को भी बेच दिया, अब मुझे क्रय करने आया है?

काक इन कठोर अभियोगों को आश्चर्य-जनक धीरज से सुनाता रहा और पहले जैसी नम्रता से बोला— गुरुदेव आप जो कहें वही ठीक किन्तु मेरी भी तो कुछ सुनिये। जब मैं पट्टणी सेना मे सम्मिलित हुआ उस समय लाट की शक्ति और सत्ता थी कितनी? आप समझते थे कि दोनों हैं किन्तु मुझे विश्वास था कि दोना मृगतृष्णा के समान हैं।

देश-द्रोह करने स मगतृष्णा के पीछ प्राण दे देना हमें अधिक प्रिय है। रेवापाल अधीरता से बोल उठा।

रेवाभाई तुम पट्टणियो से परिचित नहीं हो। मैं यदि पट्टणियों की ओर न होता तो भृगुकच्छ भूमिसात् हो जाता तुम कभी के पिस जाते और लाट की सत्ता और गौरव को सुरक्षित रखने का जो अवसर मैं उपस्थित कर सका हूँ वह कभी न आता। काक ने कठोर होकर कहा।

'यह सत्ता और गौरव? काक के अन्तिम वाक्य को सुन चारों ओर हाथ स सकेत करते हुए धु वसेन ने कहा।

हाँ यही सत्ता और यही गौरव आज छ महीने हो गए आप कैसे टिके रह सके आप स्वय नहीं जानते? गधार से अनाज किसने भिजवाया मालूम है? कामरेज से आदमी भिजवाने का सदेशा किसने भेजा इसकी भी कुछ खबर है?

किसने?' रेवापाल ने तिरस्कार से पूछा।

मैंने काक ने गव से उत्तर दिया।

किस लिए?

किस लिए ? काक सन्ज भाव से बाला आप मुझे शत्रु समझते हैं यह आपकी भूल है। गुरुदेव ! लाट पाटन के हाथ हो जायगा यह निश्चित है तब एक निःसहाय बन्दी के समान क्यों ? सम्मान के साथ क्यों नहीं और यह आप ही कर सकते हैं। इसलिए मैंने आपको टिकाए रखा है और इस समय भी यही प्रार्थना करने आया हूँ।

कोई कुछ नहीं समझा। काक डींग मार रहा है या सत्य कह रहा है कोई न समझ पाया। काक आगे बोला— आप मृणालकुवर को लाट के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं न ? मैं भी यही चाहता हूँ। आपको लाट की सत्ता लेनी है न ? मेरी भी यही हार्दिक इच्छा है। आपको भृगुकच्छ का झण्डा चारों दिशाओं में फहराना है न ? मेरी कामना भी यही है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ। काक उत्साहित होकर वेग में बोलता चला जा रहा था। उसकी आँखें चमक रही थीं।

किस प्रकार ?

'जयसिंहदेव महाराज मृणालकुवर से विवाह करने के लिए तैयार हैं, आपको दुर्गपाल नियुक्त किया है और लाट की सेना रेवा भाई को सौंप देने का आज्ञा-पत्र यह रहा। आप इस स्वीकार कर लें तो त्रिभुवनपाल और मैं पट्टनी सेना सहित कल प्रातःकाल कूच कर दूँगा। कहकर काक ने पाटन का आज्ञा-पत्र सामने रख दिया।

धुवसेन और उसके साथी चकित होने लगे।

इसलिए क्या हम पाटन की दासता स्वीकार कर लें ? जीवित होकर रेवापाल न करेगा। मेरे पिता को विजयियों के अनुग्रह का दास बनाया अब मुझे भी बनाना है ? यह कभी न होगा ! दृढ़ता से रेवापाल बोला।

'रेवा भाई काक बोला यह व्यर्थ क्रोधित होने का समय नहीं। गुरुदेव ! काक विनती के स्वर में धुवसेन से कहने लगा आप वृद्ध और अनुभवी हैं। मुझे देश द्रोही कहने और समझने से लाट का कुछ भला नहीं होगा।

बिना कुछ कहे युद्धसेन ने सिर हिलाया। काक फिर कहने लगा 'आप मट्ठी भर तो है ही, चाहें तो कल प्रातःकाल जंबूसर ले लूं मानता कि आप स्वयं भी भीष्म पितामह के समान स्वेच्छा से मृत्यु का आवाहन कर प्राण दे देंगे किन्तु इसका परिणाम क्या होगा यह भी सोचा है? लाट का प्राचीन गौरव मस्त हो जायेगा मणालकुंवर निःसहाय हो जायेंगी लाट के सोलंकिया का चिह्न तक शेष न रहेगा। काक तनिक रुक गया बीच में बोलने को तत्पर रेवापाल को उसने टोका रेवाभाई जब तक मैं बात समाप्त न कर लूं तब तक शांत रहो। विचार करो! जितना तुम सोचते हो उतना पापी या द्रोही नहीं हूं। गुरुदेव आप मेरे पिता के समान हैं रेवाभाई मेरा छोटा भाई है भृगुकच्छ में मैंने जन्म लिया और बार-बार यहीं जन्म लूं यही कामना भी है। विचार तो कीजिए आपकी ऐसी परिस्थिति में मैं कैसे पाटन से ये बातें ला सका? यदि देश द्रोही होता तो ऐसा क्यों करता? मैं आपकी पराजय नहीं चाहता। मणालकुंवर का हित यदि मैं न चाहता तो उन्हें गुजरात की स्वामिनी बनाने का विचार ही क्यों करता? मैं तो लाट को गुजरात की सवश्रेष्ठ मणि देखना चाहता हूं।

सभी स्तब्ध होकर खड़े थे कोई नहीं बोल पाया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर युद्धसेन ने अपना पट्टीवाला हाथ कपाल पर रख लिया।

बोलिए गुरुदेव! सेनापति महाराज! बोलिए! आपके शब्दों पर ही इस समय लाट का गौरव निर्भर रहता है।

युद्धसेन ने धीरे-से अपना सिर ऊपर उठाया भाइयो! इस बात का सम्बन्ध केवल हमसे ही नहीं है। पाटन की चाकरी मैं तो कभी करूंगा नहीं उससे पहले गला घोटकर मर जाऊंगा। किन्तु मेरे स्वामी की पुत्री का क्या हाल होगा? उनसे पूछे बिना मैं कुछ नहीं कह सकता। यदि उसने ना कह दिया तो फिर कल माथे पर कटारिया खाना ही होगा। इतना कह वह उठ खड़ा हुआ।

गुरुदेव तो क्या मृणालकुंवर से अभी पूछेंगे ? काक ने पूछा।

मैं तो नहीं पूछूंगा। रेवापाल तुम काक को देवी के पास ले जाओ।

'परन्तु यदि वह पूछें कि आपका क्या विचार है तो ?' रेवापाल ने पूछा।

थोड़ी देर रुककर वृद्ध योद्धा ने सिर ऊंचा किया और कहा—कह देना कि काक की बात ठीक मालूम होती है।

काक का हृदय हर्ष से उछल पड़ा, और लाट के योद्धा निराश होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

६

रेवापाल के पीछे जाते समय काक के मन में कई प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न हुईं। एक योद्धा को समझाना एक बात है, किन्तु बीस वर्ष की स्त्री के हठ पर विजय पा लेना बिल्कुल दूसरी बात है। वह यह भी जान चुका था कि इस युद्ध में जितने अदित साहस से ध्वजन खड़ा हुआ था, सोलंकी कुंवरि का साहस भी उससे कम न था।

जंबूसर की श्मशान-सी सूनी गलियों को पार करते काक के मन में बीते युग की स्मृति जाग उठी। पद्मनाभ महाराज के समय में जब वह और रेवापाल साथ-साथ पाठशाला जाते थे उसका जन्मोत्सव मनाया गया था उसका उसे स्मरण हुआ। इसके बाद भी एक-दो बार उसे देखा था तब वह पाँचेक वर्ष की गुड़िया सी नन्हीं बालिका थी। अब वह कैसी होगी ? कैसे-कैसे दुख और कैसी-कैसी भयंकर परिस्थितियों का उसने सामना किया होगा ? और अभी पाटन का जो मुकुट लेकर वह उसे देने जा रहा है क्या उसे वह स्वीकार कर सकेगी ?

काक ने रेवापाल की ओर देखा होंठ चीसता हुआ वह आगे चल रहा था । उसने सुना था—कानों का अपराध है—कि लाट की स्वतन्त्रता के लिए वह जितना परिश्रम करता था उससे कहीं अधिक बड़ी कठिनाईयों का सामना कुमरी को प्रसन्न करने के लिए करता था । उसकी सेवा में जितना परमार्थ था उतना ही स्वार्थ भी था । किन्तु यह तो लोगों द्वारा कही हुई बातें हैं ।

थोड़ी देर पश्चात् वे एक खण्डहर में परिणित हो चुके प्रासाद के निकट आए । वहाँ एक सैनिक पहरा दे रहा था ।

जय गणनाथ भोला ! रेवापाल बोला ।

'जय गणनाथ बापू । सैनिक ने उत्तर दिया क्या आज्ञा है ?

देवी क्या कर रही हैं ?

'बैठी होंगी ।

जा और सूचित कर कि रेवापाल और पाटन के भटराज काक देवी से भेंट करना चाहते हैं। रेवापाल के शब्द-शब्द में अंगार थे काक ने बिना कुछ बोले सब सहन कर लिया । थोड़ी ही देर बाद भोला लौटा आया ।

बापू चलिए देवी बुलाती हैं ।

मैले-कुचैले दालान और निपट अंधेरी जगह में से होकर भोला काक और रेवापाल को पीछे की ओर के एक कमरे में ले गया । एक हिंडोले पर काली ओढ़नी ओढ़े मृणालकुंवर बैठी हुई थी । दो छिद्रों में से आते नाम मात्र प्रकाश में काक ने मोलकिया की राज्य-लक्ष्मी को देखा । वह छोटी और कोमल दीख पड़ती थी । भाग्य से ही कोई उसे सोलह वर्ष की कहे । उसके पतले और सुन्दर होंठ बड़ी कठोरता से एक दूसरे से सटे हुए थे और उसकी आँखों में गहन एवं निश्चल तेज चमक रहा था । छोटी किन्तु झुकी हुई नाक और उसकी मोहक किन्तु हठीली ठोडी से उसके प्रभाव की कुछ कुछ कल्पना की जा सकती थी । उसने दोनों पाँव धरती पर रखकर एक दम हिंडोला रोक

लिया और उन दोनो की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा।

'यही हैं काक भट ? उसने पूछा। उसकी वाणी में विचित्र शांति और निश्चयात्मकता थी। रेवापाल ने गर्दन हिलाकर हाँ कहा।

आइए कैसे आए ? उनकी वाणी में किंचित मात्र भी भावावेश न था।

देवी रेवापाल बोला। काक भट पट्टणी दंडनायक का संदेशा लाए हैं।

'कैसा सन्देशा ?'

यदि गुरुदेव समझौता कर लें तो पाटन का राजा आपसे विवाह करने और गुरुदेव को युवराज नियुक्त करने के लिए तयार है। रेवापाल ने तिरस्कार भरे स्वर में काक का सन्देशा कह सुनाया।

अच्छा !' मृणाल ने इस प्रकार कहा मानो बात किसी और के सम्बन्ध में हो रही हो—गुरुदेव का क्या विचार है ?

कहते हैं कि उन्हें यह बात ठीक जचती है फिर जैसी आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा हो तो हम तो कल ही केसरिया पहनकर निकल पड़ने के लिए तयार हैं।

कुमरी एकाएक काक की ओर मुड़ी और इस प्रकार बोली मानो वह निष्प्राण हो—

आप ही हैं काकभट ? वही जिनके विषय में कहा जाता है कि लाट उन्होंने विजय की ?

हाँ देवी ! काक ने नमस्कार किया।

'आप मुझे पाटन की रानी बनाना चाहते हैं ?

'जी !'

कारण ?

मेरे इस सुझाव में लाट का सुख और गौरव सन्निहित है।

और यदि मैं अस्वीकार कर दूं तो ? कुमरी ने प्रश्न किया।

'तो फिर जंबूसर हार जायगा मेरे सदा विजयी रहने वाले गुरुदेव

पराजित होंगे और पद्मनाभ महाराज की पौत्री भटकती फिरेगी। काक ने भी कुछ कठोर होकर उत्तर दिया। जाने क्यों इस बालिका का उद्देश्य उसकी समझ में नहीं आया।

तुम्हारी क्या राय है? कुमारी ने रेवापाल से पूछा।

जैसी आपकी आज्ञा हो? क्रोध से भरे रेवापाल ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

तुम्हें यह योजना ठीक लगती है?

'लाट विदेशी के हाथ में जा रहा है इसमें मुझे तो कुछ भी ठीक नहीं दिखाई पड़ता।

मृणाल कुछ समय तक चुप रही।

रेवापाल गुरुदेव चौपाल में हैं?

हाँ

जाओ बुला लाओ।

जो आज्ञा। कहकर रेवापाल चला गया। काक इस छोटी-सी बालिका का दबदबा और संयत व्यवहार देखकर चकित हो गया। मीनलदेवी में भी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि और इतनी एकाग्रता न देखी थी। जैसे ही रेवापाल गया वैसे वह काक की ओर मुड़ी उसके होंठ और भी कठोर हो गए।

तुम मुझसे क्या करवाना चाहते हो यह भी मालूम है?

'हाँ!

'नहीं। तलवार से हमला करने वाले अनुभवी योद्धा के-से आत्म विश्वास से युवती ने कहा प्रातःकाल अपने दादा का मुकुट पहन और हाथ में तलवार लेकर मृत्यु का आलिंगन करने में तुम पर टूट पड़ूँगी। मेरा सिर कट जायगा और मैं अमर हो जाऊँगी। मेरे शौर्य से पृथ्वी गूँज उठेगी और भविष्य में लोग मुझे अम्बिका के समान पूजनीय मानेंगे। उसके स्वर में कम्पन न था और न था उसकी आँखों में असाधारण तेज, थी केवल उसकी अस्वाभाविक निश्चयात्मकता और उदासीन

घान्ति। काक के भ्राश्चय की सीमा न रही।
तू चाहता है मैं ऐसा भवसर खो दू ?'
हां
क्यों ?
गुजरात की राजमाता बनने के लिए।
तुम्हारे राजा की कितनी रानी है ?
तीन।
'भौर मैं चौथी ? इनमें पटरानी कौन है ?
मीनलदेवी ने वचन दिया है कि भाप ही पटरानी बनेंगी।
काक मेरी इच्छा तो स्वयवर रीति से विवाह करने की है।
जयसिंहदेव सोलंकी से बढ़ कर योग्य वर कहां मिलेगा ? काक ने प्रश्न किया।
जो गुजरात पर विजय प्राप्त करे वही।
ऐसा किससे हो सकता है ?
बताऊं ? उसने नीचे झुक होठ दबाकर धीमी किन्तु स्वस्थ भावाज में कहा। काक को कँपकँपी छूट गयी। यह लड़की तो भनुभवी स्त्री की चतुराई से बात कर रही थी।
एक व्यक्ति जिसकी मैंने बहुत ख्याति सुनी है। उसने मु जाल को मात दी खेंगार के छक्के छुड़ा दिये भकेले नवघण को पकड़ा उस की स्त्री को ले भाया भौर आज त्रिभुवन को भपने मुट्ठी में लिये हुये हैं। उसको देखने के लिय मैं इतने वर्षों से तड़प रही थी। बालो उससे तो यह हो सकेगा ?
काक काँप उठा। कितना भयकर प्रश्न था ? कितना भावेग ? क्षणभर के लिए वह बिल्कुल भस्थिर सा हा गया।
'बोलो यह सब पराक्रम सच है या झूठ ?
किंतु मैं—मैं—
हाँ तुम गुजरात से सकते हो।

\

क्या कहती हो ? उन्मादिनी जसी बात है ?

'नहीं । बताओ, अभी तुम्हारे पास लाट की कितनी सेना है ? पाँच छ हजार ?'

हाँ ।

त्रिभुवनपाल को बात की-बात में जीता जा सकता है । कल प्रात काल ही तुम्हारी सेना भृगुकच्छ पर अधिकार कर सकती है । परसों मही स तापी तक लाट तयार हो जाएगा । किंतु पद्मनाभ महाराज का सिंहासन सूना है । हम दोनों उस पर बठेंगे । फिर गुजरात कौन बडी बात है ? उसने शांत होकर प्रश्न किया । उसके लिए तो मानो यह मात्र लेन-देन का प्रश्न था ।

पाँव के निकट साँप दिखाई देने पर जो अवस्था होती है वही अवस्था काक की हो गई । यह गहन विचार शक्ति यह निमम योजना कसी दढ़ता और कितना साहस और वह भी इस बालिका में !

कुछ क्षण तक काक को कोई उत्तर न सूझा ।

देवी क्षोभ भरी आवाज में काक बोला— आप मुझसे चाहती क्या हैं ?

धरती पर सर्वश्रेष्ठ वस्तु राज्यपद है वही देना चाहती हूँ ।

नही मित्र द्रोह करू स्वामी द्रोह करू पत्नी द्रोह करूं और वण भ्रष्ट हाऊ ? मुझस यह न होगा । काक धीरे-से बोला ।

तुमसे तो केवल देश द्रोह ही हो सकता है । मुझे नही मालूम था कि तुम कायर हो ! तिरस्कार पूवक वह बोली । प्रथम बार उसकी वाणी में निराशा झलकी ।

एसा ही समझ लो कि मुझे में उतना साहस नही है । हाँ जयसिंह दव से ब्याह करो तो मैं तुम्हें ससार की महारानी बना दू गा पद्मनाभ महाराज की कु वरी की आज्ञा दसों दिशाओं में मान्य होगी । और क्या चाहिए ?

'यह सब तो बातें हैं । मुझे पाटन की महारानी बनने में कोई

सष्य नहीं दिखाई देता ।

दूसरा रास्ता ता केवल मृत्यु का है ।

तुम्हारा जी नहीं ललचाता? कुमरी ने प्रश्न किया ।

अपना सकल्प मैने बता दिया । जितना कर पाया हूँ किया अधिक मैं कुछ नही कर सकता ।

तब मैं भी दूमरा माग ग्रहण नहीं कर सकती मुझे तुम्हारी चिंता क्या हो । शाति स मणाल ने कहा ।

जी ' काक ने उत्तर दिया लीजिए, गुरुदेव पधार गये ।

इतना कहने के साथ ही घ वसेन और रेवापाल मा गये । सभी विह्वलुर मुख से कुमरी की ओर देखते रहे । उसने एक एक कर तीनो की ओर देखा और फिर शाति से कहा—

गुरुदेव । जयसिहदेव से विवाह करने के लिए म तयार हूँ ।

रेवापाल चकित हो गया । काक ने सुख की साँस ली ।

माप क्या करेंगे ?

मैं ? घ वसन बोला मैं कल मन्यास ले लूगा । रेवापाल को दुग पाल नियुक्त करना पड़ेगा । धूवसन ने काक से कहा ।

जी । काक बोला ।

रेवापाल कभी विदेशियो की दासता स्वीकार नहीं करेगा । दाँत पीसते हुए रेवापाल बोला ।

तो आप यह स्वीकार करते ह ? काक ने अतिम प्रश्न किया ।

हाँ । घ वसेन ने कहा । कुमरी शांति स और रेवापाल क्रोध से देखते रहे ।

फिर यह हुआ कि घ वसेन न सन्यास लिया कुमरी जयसिहदेव व्याहिता होकर लीलादेवी हो गई और रेवापाल के लिए ससार में बिल्कुल रस न रहा ।

इस बात का चार वप बीत गय ।

काक शीघ्र ही देवभद्रसूरि के उपाश्रय में जा पहुंचा।

कई वर्ष पहले देवभद्रसूरि ने भृगुकच्छ में अपने चतुर्मास किये थे। दुर्बल स्वास्थ्य के कारण अन्य ऋतुओं में भी अधिक दूर विहार नहीं करते थे। आवश्यकता पड़ने पर बस यहाँ पहुँचते थे।

इन सूरि की ख्याति देश विदेश में फैली हुई थी। जब से—संवत् ११५८ में—उन्होंने कथारत्नकोष लिखा तब से इनकी विद्वत्ता की इतनी धाक बढ़ गई थी कि चारों ओर से जैन साधु और पंडित इनके वचनामृतों का आस्वादन करने के लिए भृगुकच्छ खिंचे हुए चले आते थे।

वे जितने अप्रतिम विद्वान थे उतने ही हृदय के विशाल भी थे। भूतदया के वे भक्त थे उनकी प्रवृत्ति का एक मात्र लक्ष्य था मानव समाज का उद्धार। जैन और अजैन मतों के वाद प्रतिवाद अथवा राज पुरुषों के षड्यन्त्रों में उन्हें कोई रस नहीं था। उनके उपाश्रय में साधु और ब्राह्मण दोनों का स्वागत होता था। उनके उपदेश संसारी और विरागी दोनों के काम के होते थे। वह अन्य साधुओं के समान राजनीति में दिलचस्पी नहीं लेते थे।

शरीर अस्वस्थ होने के कारण आजकल वह भृगुकच्छ में थे। त्रिभुवनपाल की उदारता से निश्चिंत हुए उनके उपाश्रय में लोगों का आवागमन अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक था।

जिस कमरे में देवभद्र था उसी में काक गया। दुर्गपाल ब्राह्मण होते हुए भी अक्सर इधर चला आता था। इस समय उसे यहाँ देख कर लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ।

एक कमरे में देवभद्र जी अपने अस्वस्थ शरीर को हाथ पर टेक कर बैठे हुए थे। पास ही में नगर के एक दो श्रावक बैठे हुए थे। थोड़ी दूर तक एक व्यक्ति सूरिजी के बिल्कुल नए लिखे हुए पार्श्वनाथ चरित्र की प्रतिलिपि कर रहा था।

उनका मुख क्षीण और साधारण दर्शक की दृष्टि से निस्तेज था परन्तु उनकी आँखों में मिठास थी। वाद विवाद में भी उनकी दृष्टि कठोर नहीं होती थी। उनकी हँसी अल्प किन्तु मीठी होती थी और विद्वता या विजय का अभिमान तो मनमें था नहीं। उनका शरीर ठिगना था कई बार तो बोलते-बोलते रुक जाना पड़ता था और साँस लेने में भी कठोर परिश्रम करना पड़ता था।

जिस समय काक उस कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था उस समय देवभद्र सूरि शिक्षा शास्त्र के अनुभवी अध्यापक की भाँति उँगलियाँ हिला कर कह रहे थे—

अहिंसा और राज्यपद इन दोनों में विरोधाभास है। राज्याधिकारी या तो हिंसक होता है या हिंसा से रक्षा करने का साधन होता है। फिर अहिंसा के उपासक के लिए अधिकारी का क्या उपयोग हो सकता है? सूरि ने सामने बैठे हुए साधु से प्रश्न किया और काक को देखकर उसकी ओर आमुख हुए 'यह हमारे दुर्गपाल है। यदि हम अहिंसा का ही प्रचार करें तो फिर इनका हमारी रक्षा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर हँस कर सूरि जी ने बात पलटी महाराज! इन सूरि जी से परिचित हो?

काक ने देवभद्र से साधु की ओर दृष्टि फेरी उसे उसका मुख परिचित-सा लगा किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी ठीक से पहचान न सका। इस साधु का शरीर विन्यास देवभद्र के शरीर विन्यास से एक दम विपरीत था। वह युवक और तेजस्वी था, उसकी आँखों में निराला आकर्षण था और उसके हास्य में वैचित्र्य था। उसका शरीर क्षीण होते हुए भी निर्बल नहीं था।

इस युवक साधु को कहाँ और किस अवस्था में देखा था यह काक को स्मरण नहीं हो सका। मन-ही-मन स्मरण करने की चेष्टा करते हुए वह नमस्कार कर बैठ गया।

यह महाराज कौन हैं? काक ने पूछा।

११

जब काक हेमचन्द्र के साथ कमरे की सीढ़ियां उतर रहा था तभी उसे लगा कि दोनों ही एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देख रहे हैं। शिष्टाचारी सैनिक चतुराई से बात कर रहा था त्यागी साधु नम्रता से उत्तर दे रहा था। दोनों के मुख भाव विहीन थे फिर भी दोनों एक दूसरे की थाह लेने के प्रयत्न में लग हुए थे।

काक ने बहुत सिर मारा मुख परिचित था स्वर की भंगिमा भी कुछ-कुछ परिचित जान पड़ी परन्तु इस साधु को किस स्थान पर देखा था यह याद नहीं आया।

सूरि भी काक के साथ सावधान होकर व्यवहार कर रहा था उस के मुख पर भोलापन इतना स्पष्ट था कि काक की शंका लगभग जाती रही।

आपमें और सूरिजी में क्या विवाद चल रहा था ?

कोई विशेष नहीं। सूरिजी का दृढ़ विचार है कि राज्यकार्य में अहिंसा का कोई स्थान नहीं।

हो भी कैसे सकता है ? राज्यकार्य ईर्ष्या सत्ता की इच्छा और कपट से ही चलता है। वहां अहिंसा कैसे सम्भव है ?

वास्तव में यह आपकी भूल है। नवयुवक साधु ने तेज भरे स्वर में कहा।

कैसे ?

'जब राज्य कार्य में धर्म का शासन होगा तभी इन पापाचारों का दमन होगा।

मुझे तो लगता है कि ऐसी स्थिति में धर्मराज स्वयं बदल जायगे।

'तो वह धर्मराज ही क्या ?

'पाटन में चन्द्रावती से एक यती आए थे। आपने सम्भवत उनकी बात सुनी थी ?'

'दस हजार महात्माओं का तेज पाने पर एक वीतरागी का जन्म होता है। साधु ने कहा।

'वीतराग' शब्द सुनकर काक के मस्तिष्क में कई-एक तार झनझना उठे। एकाएक एक प्रसंग याद आया—एक नन्हें बच्चे का सुन्दर मुख उसकी दृष्टि के सम्मुख आया। वह मन ही-मन हँस दिया। अन्त में उसने इस साधु को पहचान ही लिया।

'देखा जायगा।' मन ही-मन कह काक ने अपना दाव खेला—

'सूरिजी! बहुत वर्ष हुए हमारी एक-दूसरे से भेंट हुई थी। याद है न?

हेमचन्द्र चमका उसके मुख पर तनिक क्षोभ झलक आया।

हमारी?'

हाँ काक हँसा। 'आपको उदा महेता ने दीक्षा दिलवाई थी। याद है? तब आप छोटे थे और मैं एक मामूली सैनिक था। आपके दादा के कहने से मैं पिछली रात को आपको उठा लाने के लिए आया था—याद आया?

आश्चर्यचकित होकर हेमचन्द्र ने कपाल पर हाथ फेरा। पन्द्रह वर्ष पहले का प्रसंग निःसन्देह उन्हें अच्छी तरह याद था—आज एक बार फिर आँखों के सम्मुख खड़ा हो गया। साधु ने गर्व से काक की ओर देखा। यह परिवर्तन देखकर काक हँस दिया।

सूरिजी! आपने मुझसे क्या कहा था याद है? मैं तो वीतराग बनूँगा। आपका लक्ष्य सिद्ध हुआ? काक ने तनिक विनोद में पूछा।

भटराज! वीतराग बनने की बात करना सरल है किन्तु बन जाना सरल नहीं है।

उदा महेता कैसे हैं?' काक ने नितान्त निर्दोष और स्नेह भरे स्वर में पूछा।

बहुत समय हुआ उनसे भेंट किए। हेमचन्द्र ने भी वैसे ही निर्दोष स्वर में कहा।

'आज प्रातःकाल आम्रभट आया है। उससे तो आपकी भेंट हुई होगी ?' हंसकर काक ने पूछा।

'वह यहां मिलने नहीं आए। भेंट हो तो कहिएगा मुझसे आकर मिलें।'

'अच्छी बात है। अब तो वह भृगुकच्छ का दुर्गपाल बनने वाला है।'

'ऐसा ? वह तो बेचारा अल्हड़ आदमी है।'

'फिर भी उदा महेता का पुत्र है। मोर के अंडों को भी क्या परखने की आवश्यकता होती है ?'

'अच्छा यह है कि भृगुकच्छ में शान्ति है, नहीं तो बिचारे के लिए बड़ा भारी पड़ता।'

काक ने देखा कि इस बात में कुछ सार है, अतः उसने कहा—'सूरिजी ! मेरी नीति पर चलेगा तो सब ठीक होगा।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो अब लाट को वश में रखना कठिन होगा। आप उसे सलाह दीजियेगा—आपका तो अच्छा परिचय है न ?' कहकर काक ने बात बदल दी।

'अब मैं जाऊंगा। आज्ञा ?'

'धर्मलाभ, जिन भगवान् आपको विजय दें।' वृद्ध साधु की गंभीरता से हेमचन्द्र ने कहा। काक मन-ही-मन हंसा।

हेमचन्द्र दूसरी ओर चला गया। काक जाकर अपने घोड़े पर बैठ गया।

थोड़ी दूर जाकर काक ने अपने भट को अपने निकट चलने के लिए कहा।

'सोमेश्वर भट !'

'जी।'

'उस नवयुवक साधु को देख रहे हो।'

'जी हाँ।

'यह बहुत विद्वान् और वीतरागी हैं। उदा महेता के परम मित्र भी हैं। कुछ समय तक ये यहीं 'विहार' करेंगे। प्रतिदिन इनकी सेवा में उपस्थित रहना—सावधानी से। काक ने धीरे से कहा। सोमभट चतुर था। काक का दाम्पत्य चातुर्य उसके लिए जाना पहिचाना था। उसने एक बार पीछे दृष्टि डालकर हेमचन्द्र को देखा और उसका मुख अच्छी तरह हृदय में जमा लिया।

१२

आम्रभट के मन को चैन नहीं था। वह चपल हो उठा और उस सुन्दरी को खोजने के लिए व्याकुल हो उठा। भृगुकच्छ का अधिकार सेजपाल सेठ की पुत्री प" और भावी पत्नी यह सब सोच विचार उसके लिए अर्थहीन हो गया।

आंबड ने संयम तो सीखा ही नहीं था राजदरबार के शिष्टाचार भी वह पूरे-पूरे न सीख सका था। उसने अपने गण को बुलाया।

'हमीरभट।

बापू।'

तू पहले भृगुकच्छ आ चुका है न?

हाँ।

एक अत्यन्त आवश्यक काम है। चारों ओर देखते हुए आम्रभट ने कहा।

'क्या?

साम्वा बहस्पति का प्राचीन बाड़ा तो देखा है?

हाँ। वही न जहाँ दुर्गपाल महाराज पहले निवास करते थे?

'हाँ मन्त्री। वहाँ मैंने एक स्त्री देखी थी।

हाँ। हमीर ने मूछों ही में मुस्कराते हुए कहा।

उसका नाम और निवास-स्थान का पता मुझे चाहिए।

किन्तु वहाँ तो तीन सौ स्त्रियाँ रहती हैं।

तुम उन तीन सौ में से तुरन्त पहचान जाओगे।

किस प्रकार?

युवती है सुन्दर है—। अम्बभट रुक गया।

बापू! सभी युवतियाँ सुन्दर लगती हैं और सभी सुन्दर स्त्रियाँ युवती! ऐसे कैसे काम चलेगा?

मूर्ख! वह तो अप्सरा के समान है। लम्बी और संगमरमर के समान अदमुत है। जहाँ महादेव का मन्दिर है न वहीं कहीं रहती है।'

'बापू मुझ गरीब की मानोगे?

'क्या? अधीर होकर अम्बभट ने पूछा।

हम अभी तो आए हैं और उन पर मन्त्री जी ने आवश्यक काम से भेजा है। इस पचायत में पड़ना तो मरेंगे।

अम्बभट ने हमीर की ओर आँखें तरेरकर देखा, तुझे सलाह देने का व्यसन कब से लगा?

हमीर चुप रहा उसने नतमस्तक होकर हाथ जोड़ लिए, जो आज्ञा।

मुझे सन्ध्या तक उसका नाम स्थान उसके पति का नाम, पिता का नाम आदि पूरा विवरण चाहिए।

हो सके तो परिचय भी करवा आऊँ! सनिक कटाक्ष से हमीर ने कहा।

'इसका तो मुझे विश्वास है। हँसकर अम्बभट बोला हाँ देख कोई जान न पाए।

'जान भी लें तो क्या? ये लाटिए कर भी क्या सकेंगे?

वह तो भला क्या कर सकते हैं।' गर्व से अम्बभट ने कहा।

केवल तेजपाल सेठ जान जायें तो अच्छा नहीं लगेगा। अच्छा! तो समझ गये हो न?

'परन्तु आप तो ऐसे चिह्न बताते हैं कि काम बन ही नहीं सकता।'

'पागल! अभी दूसरी स्त्री तो मैंने ऐसी ही नहीं।' मांडव बोला।

'आप हर बार ऐसा ही कहते हैं।'

'इस बार तो तू भी मान जायगा। कैसा वर्ण है उसका? मानो मोगरे की कली हो।' बोलते बोलते भाग्रभट के मुँह में पानी आ गया।

'किस जाति की है?'

'ब्राह्मण। उस बाड़े में क्या और जाति मिल सकती है? जा अब देर मत कर।'

'काम होते ही आता हूँ।' हमीर ने कहा और तलवार बाँधकर बाहर निकल पड़ा।

हमीर अपने स्वामी की विशेषताएं जानता था। ऐसे अनेक प्रसंगों में उसने मांडव की सहायता की थी और अनेक विपत्तियों से उसने उसकी रक्षा भी की थी। वह समझ गया था कि इस समय उसके स्वामी हठ पर चढ़े हुए हैं और ना कहने से कोई लाभ नहीं होगा। वह विचार करता हुआ वह बाहर निकला। नाम ठाम का पता लगाना कुछ कठिन नहीं था किन्तु उसे लगा य सब बहुत सावधानी से भी कुछ करने पर भी कुछ हाथ न लगेगा।

चतुर होने के साथ ही हमीर अभिमानी भी था। संसार का स्वामी पाटण, पाटण का स्वामी जयसिंहदेव और उस महेता जयसिंहदेव के एक प्रकार से स्वामी ही थे—यह हमीर के सिद्धांत थे। स्वयं उस महेता का विश्वासपात्र सुभट और उनके प्रिय पुत्र का घनिष्ठ मित्र होने के कारण वह सम्पूर्ण संसार को तिरस्कार की दृष्टि से देखता था। उसने लाट के साथ हुए कई युद्धों में भाग लिया था और लाट पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी वह एक-दो वर्ष वहाँ की सेना में रहा था। इसी कारण से लाट के निवासियों को वह बड़ी तिरस्कार

की दृष्टि से देखता था।

सीधे साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जाना उसे ठीक नहीं लगा अतएव उसने अपने एक पुराने मित्र को खोज निकालने का निश्चय किया।

उसके मित्र नेरा तोतला को पट्टणी सेना में कोई न जानता हो, ऐसी बात नहीं। वह गप्पी था और पराक्रम का मूल्य जानता था। आराम और आनन्द को छोड़ और उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। भोजन और हास्य विनोद के बिना तो उसका जीना असम्भव था। जहाँ रहता वहीं गाँव भर के व्यक्तियों से विशेषकर स्त्रियों से परिचय करना कभी न चूकता था। तब जिस जिस स्थान पर पट्टणी सेना पड़ाव डालती थी वहाँ एक-दो स्त्रियों से विवाह करके घर बसाना भी यह कभी न चूकता था।

हमीर समझ गया था कि इस महारथी की सहायता के बिना कुछ भी होना सम्भव नहीं है। अत उसने चौकी पर आकर नेरा तोतला का ता पूछा। त्रिभुवनपाल सोलंकी का पता लगने में कठिनाई पड़ सकती ो किन्तु नेरा तोतला का झोंपड़ा ढूंढने में कभी परिश्रम नहीं उठाना ड़ता था। तेलियों के मुहल्ले के नुक्कड़ पर एक नव परिणीता के घर ं वह रहता था हमीर उस ओर मुड़ा।

घर छोटा और मला था। एक ओर कोल्हू चक्कर काट रहा था। ोर दूसरी ओर एक तेलन बैठी गन्दी पीली रेवड़ियाँ बेच रही थी। ंदे पथ में हर प्रकार की सड़ी-गली वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो रही थी।

हमीर ने जाकर द्वार की साँकल खड़खड़ाई परन्तु कोई उत्तर न ।मला। आवाज भी दी किन्तु किसी ने द्वार नहीं खोला। अन्त में उस ने निकट की दूकान पर बैठी हुई तेलन से पूछा।

नेरा भाई यहीं रहते हैं ?

'हाँ।

'तो उत्तर क्यों नहीं देता ?

लुगाई को निकाल कर प्रातःकाल से अन्दर ही बैठे हैं।

'तो अब क्या करूं ?

पीछे से जा देखो बाड़े का द्वार खुला होगा।

किधर से आऊँ ?'

'इस ओर होकर निकल जाओ।

हमीर शीघ्रता से उस ओर गया। पड़ोसिन के कहे अनुसार पिछला द्वार खुला हुआ था। उसे धकेल कर हमीर बाड़े में गया और वहाँ से घर में घुसा।

उसकी पदध्वनि सुन कर निकट ही के कमरे से आवाज आई।

'वा वा प स'—एसा लगा मानो कोई मुंह में कुछ भरकर बोल रहा है। हमीर ने स्वर पहचान लिया।

'अरे ए तोतला ! भाई किधर है ? हमीर प्रश्न करता हुआ अन्दर घुसा।

को भो को भो बड़ी कठिननाई से गले के नीचे कुछ उतारते हुए तोतल का स्वर आया।

अकेला बठा क्या कर रहा है रे ? आवाज देते देते मेरा तो गला ही बठ गया। हमीर ने अन्दर पहुंच कर कहा।

अन्दर का दश्य बड़ों-बड़ों को चकित कर देने वाला था।

नेरा को विधाता ने मनुष्य तो गढ़ा ही न था। हाथी बनाते समय वह भूल से आदमी के रूप का बन गया था। वह लम्बा था और कल्पनातीत विपुलाकार था उसका शरीर। उसकी नाक नुकीली तथा झुकी हुई थी उसके नेत्र शीतल के समान विशाल थे। तोन्द इतनी गोलाकार थी कि मोटी गागर भी उसके सामने पानी भरे। उसके हाथ और पाँव मोटे और गोल थे। उसको देखकर अद्ध निपुण कारीगर द्वारा मनुष्य शरीर की लम्बाई के माप के बनाए गणपति का स्मरण हो आता था।

यह वीर पुरुष उकडू बठे थे और बड़ी कठिनाई से वह सामने पड़ी थाली में पड़े लड्डू उठा उठाकर मुंह में रखते चले जा रहे थे। यह

प्रयोग इतनी शीघ्रता और सफाई से हो रहा था कि कब वह मुंह में पड़ते और कब गले के नीचे उतरते यह निश्चय करना सरल नहीं था। वह उतावला और इस तरह हांप रहा था मानो धमनी चल रही हो।

उसने आंखें फाड़ कर हमीर की ओर देखा और उसे पहचाना। एकाएक उसकी जल्दबाजी जाती रही। उसके चिन्तातुर मुख पर हास्य फैल गया। उसने फटती हुई धमनी की तरह एक निःश्वास लेते हुए कहा—

को को न ह मी र।

'हां मैं।

हा—हा—हा नेरा बोला—हो—अ अच्छा हुआ कि तुम पहले आ गए। मैं तो समझा कि मरी वह बहू है। मारने के लिए मैं यह कलछी उठाने वाला ही था।

अरे बठ बठ ! यों वह न लुगाई के आने से पहले सारे लड्डू उड़ा जाने का विचार कर रहा था।

हो—हो—हो ! नेरा के हास्य से घर गूंज उठा तो क्या करूं ? दो दिन तक उसने मुझे भूखों मारा और आज प्रातःकाल क्रोधित होकर पीहर चली गई तो मैंने यह किया। हमीर तुझे आए कितने दिन हो गए ? ले एक लड्डू तो खा खा। वह नेरा ने बचे हुए ग्यारह लड्डुओं में से एक हमीर को दे दिया।

मुझे नहीं खाना है तू भूखा है तू ही खा ले। हमीर ने उदारता दिखाई। बिना और आग्रह के नेरा ने वह लड्डू अपने मुंह में रख लिया।

मैं आज प्रातःकाल ही आया हूं। मित्र तुमसे एक काम है।

खा खा खा लेने दे। नेरा हकलाता नहीं था केवल अटकता भर था और वह भी प्रथम शब्द पर। एक बार उसकी जीभ चल पड़ती तो फिर उसे रोकना बहुत कठिन होता था।

अच्छा, खा ले।

नेरा ने मोदकों को शीघ्रातिशीघ्र गति से मुह या गले में रोके बिना पेट में पहुचाना प्रारम्भ किया। ग्यारह के ग्यारह लड्डू समाप्त कर हाथ धो हमीर के निकट आ उसने क व क्यों दोस्त कहकर हमीर की जघा पर हाथ मारा। मित्रता का प्रमाण नेरा ने इतने कठोर ढग स दिया कि हमीर को क्रोध आ गया किन्तु स्वार्थ होने क कारण कुछ कह न सका।

देख मुझ एक स्त्री की खोज करनी है।

'क्या ब्या ब्याहना है ? मरी लुगाई की एक बहन—

नहीं—नहीं। सुन तो सही। एक स्त्री का पता चाहिए।

तू तू ऐसी बात मत कर भाई।

'क्यों ?

मैं मैंने तो व्रत ले लिया है।

अरे कसा व्रत ?

'पराई स्त्रियों से बात न करने का। नेरा बोला।

अरे पागल ! मुझे स्त्री की बात नहीं करनी है सिफ दिखानी है। देख हम सभी भट बन गए, बस तू यू ही रह गया।

तु तु तुम्हीं सबने मुझे इस तरह रखा है। मैं युद्ध में होता तो भी तुम जाकर चुगली करते कि मैं पीछे रह गया हूं और भाग गया हूं।

अब भी इच्छा है !

'कि कि कि किस प्रकार ?

'एक स्त्री का पता बता दे तो आम्रभट निश्चय ही तुझे भट बना दें।

'आ आम्रभट ?

मूख ! उदा क पुत्र और मृगुकच्छ के दुर्गपाल।

हैं ! मुह फाड कर नेरा न पूछा काक का क्या हुआ।

वह तो बपली जा रहे हैं। क्यों उनसे घबराता है ?

पट्टणी मन चाही कर सकता है। धम्य पाटन के नियम यहाँ कसे लागू हो सकते हैं ?

हमीर और नेरा दोनों टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर निर्विघ्न साम्बा बहस्पति के पुराने बाड़े में स्थित अविमुक्तेश्वर मन्दिर के सामने आ पहुँचे। प्रात काल आम्रभट के आने के समय यहाँ जसी नीरवता थी वसी इस समय न थी। वह मन्दिर प्राचीन पूजनीय और माननीय था फलस्वरूप लोगो की हलचल थी और उसके पीछे के कुए पर कई स्त्रियाँ पानी भर रही थीं।

हमीर और नेरा दोनों ने देवालय में जाकर दशन किए और फिर उसके पीछे के चबूतरे पर पानी भरने वालियों को देखने के लिए बैठ गए। बकार बैठकर आती जाती स्त्रियों को बस देखते ही रहना इन दोनों में से एक की भी प्रकृति से मेल नही खाता था फिर लम्बी और अप्सरा के समान तो कोई स्त्री आ ही नहीं रही थी। अत वह बठे बठे उक्ता गए। उनकी अधीरता ने एक नया रूप धारण किया।

नेरा पालथी मारकर बठ गया और चारों ओर भयकर कटाक्षो की वर्षा करने लगा हर आने जाने वाली के साथ ठठोली करने और हसने लगा। उसका जीवन निम्न वग के लोगों में ही व्यतीत हुआ था। अत उनसे सीखी रीतियो की वह यहाँ भी परीक्षा करने लगा।

अन्त में हमीर ने भी आते-जाते पर टीका करना आरम्भ कर दिया टीका करते ठट्ठा करना भी आरम्भ कर दिया ठट्ठा आरम्भ होते ही नेरा अपना नियत्रण खो बठा। वह जोर-जोर से पानी भरती हुई स्त्रिया के लक्षणो का विश्लेषण कर लगा।

इन दो अपरिचित पुरुषो को इस प्रकार व्यवहार करते देखकर कुए पर पानी भरने वाली स्त्रियों में घबराहट फल गई कुछ ने पानी भरा और कुछ बिना भरे ही वहाँ से चलने लगीं।

ये ये तो सब चलीं— नेरा बोला।

आने दे। उकता कर हमीर ने उत्तर दिया।

कि कि किन्तु तेरी अप्सरा तो आई नहीं।

कौन जाने कब आयगी आएगी भी अथवा नहीं।

'आ ई ई ई। ठुमक— कहकर मेरा ने एक युवती की ओर देखकर आँख मींच दी। वह युवती गव से ठुमककर रुक गई और क्रोध से पीछे घूमी।

क्या—हुआ ?' मेरा बोला।

वह युवती घबराई और वैसे ही क्रोध में पीछ घूमी। सामने शिव स्तुति करके मंदिर से निकलते हुए मणिभद्र महाराज मिल गए। वह दुर्गपाल के एक आश्रित की पत्नी थी। अत मणिभद्र को देखकर उसमें साहस आया वह खड़ी हो गई। थोड़ी दूर पर लौटती हुई एक दो स्त्रियाँ भी खड़ी हो गई।

'भाई! उधर दो हरामखोर बैठ हुए हैं उन्हें यहाँ से निकाल बाहर करो। व हमारे साथ ठट्ठा कर रहे हैं।

अच्छा ? मणिभद्र ने कहा।

हाँ। देखो तो किसी को पानी भरने ही नहीं देते। दूर खड़ी हुई स्त्रियों में से एक ने निकट आकर कहा।

ठहरो मैं अभी निकालता हूँ। कहकर मणिभद्र धीरे धीरे चबूतरे पर होकर पीछे की ओर गया। ए भाई! कौन हो तुम लोग ? यहाँ किस काम से बैठे हो ?

हमीर ने मणिभद्र को पहचान लिया और ओछ स्वर में पूछा— 'ए महाराज तू कहाँ से टपका ?

कौन औघड भाई का गण यहाँ कसे बैठा है ? और इन सबकी हँसी क्यों उड़ा रहा है ?

अपने स्वामी के सामने हमीर मणिभद्र का सम्मान करता था किंतु इस समय वह आपे से बाहर हो गया।

'ए भूदेव! तू अपना काम कर न हमारे बीच में क्या पड़ता

'उत्तर दे, किसने हाथ उठाया ?

अन्दर आते हुए रेवापाल का कठोर स्वर आया— मैंने।'

बेचारा नेरा कांपकर दो पग पीछे हट गया। आम्रभट चकित हो गया। प्रातःकाल वह रेवापाल को समझ नहीं पाया था और इस समय उसके मुंह से ये शब्द सुनकर उसकी क्रोधी प्रकृति को आघात-सा लगा। इस शांत और कम बोलने वाले पुरुष के रूखेपन से उसे क्षोभ होता था।

'तुमने ?

नेरा रेवापाल को देखकर मुंह बाए दूर खिसकने लगा।

हाँ।

'क्यों ?

आपके सैनिक ने एक ब्राह्मण का अपमान किया था। कहकर रेवापाल जाने को उद्यत हुआ। आम्रभट के अंतर में ज्वाला भभक उठी। उदा महेता का पुत्र भृगुकच्छ का भावी दुर्गपाल और अपमान भर कर देने के कारण उसके सैनिक की यह दशा! वह वेग से रेवापाल के पास गया और मार्ग रोककर उसके सामने खड़ा हो गया।

रेवापाल ने शान्ति से कुछ समय तक कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर तिरस्कार से कहा—आम्रभट जी! मुझसे भिड़ने से कोई लाभ नहीं होगा। आम्रभट समझ न पाया कि क्या कहे। ऐसा मालूम होता था मानो निष्फल क्रोध के कारण उसके मुंह में झाग भर आयेंगे।

'जानते हो तुमने मेरे मेरे नौकर की टांग काट दी। कुछ समय पश्चात् वह बोला।

'पांव ? रेवापाल ने कठोर और अपमान भरे स्वर में कहा पट्टणी उच्छृंखल बनेंगे तो सिर भी काटना पड़ेगा। रेवापाल के होंठ और भी कठोर हो गए।

आम्रभट ने चारों ओर रक्त पिपासित दृष्टि से देखा। उसे ध्यान

धाया कि उसके हाथ में हथियार भी नहीं है। लाट के नगरसेठ के पुत्र के साथ समझकर व्यवहार करने की उसके पिता की चेतावनी स्मरण आई, वह कुछ ठंडा पड़ा।

भटजी रेवापाल ने बात पूरी की आप मेरे पिता के अतिथि हैं मेरा मार्ग छोड़ दीजिए।

आम्रभट को कुछ भी न सूझ पड़ा। अन्त में वह बोला 'मैं लाट का दुर्गपाल हूँ। मैं तुम्हारी धमकियों से डरूँगा नहीं।

पाटण के दुर्गपाल की धमकी मैं भूलूँगा नहीं। चमकती हुई आँखों से रेवाराम ने कहा और तिरस्कार से आगे बढ़ गया। आगे बढ़ कर जैसे ही वह घूमा वैसे ही उस और आम्रभट, दोनों को एक साथ ही चुपचाप खड़ा सुनता हुआ काक दिखाई पड़ा। उसका मुख गम्भीर था।

'रेवाभाई ! उसने बड़ी मिठास से पूछा, 'क्या हुआ ?

भटराज !' आम्रभट शीघ्रता से बोला। उसमें साहस का संचार हुआ।

मृगुकच्छ आते ही मेरा—मेरे पाटण का अपमान हुआ है। मेरे हमीर का पाँव काट डाला !

रेवाभाई ने।

हाँ। यह अपमान मैं कैसे सहन कर लूँ ? उछलकर लौटते हुए क्रोध से आम्रभट ने कहा। काक ने दृष्टि फेरकर रेवापाल को देखा।

'पूछो अपने मुहल्ले की स्त्रियों से और अपने मणिभद्र से ! तिरस्कार से रेवापाल बोला।

काक की आँखें चमक उठीं। आम्रभट फीका पड़ गया। उस नेरा की बात याद आई। अवश्य उस स्त्री की खोज करते हुए ही हमीर को यह शिक्षा मिली है। तुरन्त उसने इस सबको ढँक देने का निश्चय किया। पूछा है ?

अनायास ही काक की दृष्टि नेरा तोलने पर पड़ी। उसने कठोरता

से पूछा, तू यहाँ क्या कर रहा है ?

नेरा काँप उठा। वह दुगपाल से भली भाँति परिचित था। उसने हाथ जोड़ लिए 'बा बा पू म म—

भटराज! भाम्रभट ने कहा हमीर को उठाकर यही लाया है। काक ने रेवापाल की ओर देखा।

'यह भी वहीं था। उसने उत्तर दिया।

एक छलांग मारकर काक नेरा के निकट गया और उसका कान पकडकर मसल दिया।

'नेरा! काक ने पूछा 'क्या हुआ था ?

'बा पू! उसने निःसहाय सी दृष्टि से भाम्रभट की ओर देखा। किन्तु उधर स कुछ होता न देखकर पुन काक की ओर न देखा। काक की आँखों में अगार मडक रहे थे।

'म म महाराज! नेरा बोला हमीरभट ने ए एक ब्राह्मण को ठो ठो ठोकर मारी और रे रेवाभाई ने उसकी टांग काट दी।

'ठोकर क्यों मारी ?

ब्राह्मण ने हमीर को गाली दी।

काक ने कठोर होकर रेवापाल की ओर देखा।

'रेवाभाई! क्या सच्ची बात है ?

'हमीर पानी भरने वालियों के साथ ठट्ठा कर रहा था।

भाम्रभट का हृदय काँप उठा।

और तू भी ? काक ने नेरा से प्रश्न किया।

नहीं—नही—नही—बा।

'नूरा! काक की वाणी में भरी रौद्रता से भाम्रभट भी सहम गया जो फिर मेरे हाथ पड़ा तो यह सिर धड़ पर नही रहने का। सोमेश्वर है!

जी। कहकर बाहर खड़ा हुआ सुभट भन्दर आया।

'इस बदजात को लात मार बाहर निकाल दो।

'जो आज्ञा ! वह सोमेश्वरजी ने आँखों से ही मेरा को आज्ञा दी। मेरा धीरे-धीरे बाहर चला गया।

'भटराज !' धारे से आम्रभट काक से कहा इस बिचारे को—'

काक आम्रभट की ओर घूमा आम्रभट मालम है यह कौन है ? यह पाटन का नीच से-नीच सनिक है।

किन्तु मेरे हमीर को यही लाया था।

नहीं लाता तो क्या कोई अनर्थ नहीं हो जाता। रेवाभाई ने तो टांग काटी मैं होता तो सिर काट देता।

आम्रभट कुछ भी न बोल सका। काक कुछ नरम पड़ा भाई ! इस देश में तुम विदेशी हो। यहाँ के लोगों में ऐसी दुर्भावना न फलनी देनी चाहिये।

रेवापाल ने तिरस्कार से एक बार काक की ओर देखा और घर में चला गया। काक आम्रभट को लेकर ऊपर गया।

आम्रभट ! प्रस्थान करने से पहले एक सलाह दूं ?

'हाँ ! लज्जित होकर आम्रभट बोला।

लाट और गुजरात भिन्न हैं यह बात यहा के लोगों के हृदय से निकाल देनी है। नहीं तो ।

_नहीं तो ?

नहीं तो ! तुम्हें मालूम नहीं कि ध्रुवसेन के अनुयायी केवल अवसर की प्रतीक्षा में बठ हुए हैं।

क्या कह रहे हैं आप ? हसकर आम्रभट बोला।

काक के मुख पर कूटनीतिज्ञ जसी गम्भीरता छा गई।

'आंबड भाई ऐसी बातों में हसोगे तो किसी दिन पाटण को रोना पड़ेगा। तुमने आते ही रेवाभाई का अपमान किया। यह एक गलत काम है। जानते हो यह कौन है ?

हाँ।

'नहीं तुम नहीं जानते। जानते होते तो इतनी छोटी-सी बात पर उससे

मिट न पड़ते । भ्राम्रभट ! यह जितना सीधा है उतना निर्जीव नहीं है। लाट की राजसत्ता अवश्य जयसिंहदेव महाराज के हाथ में है, किन्तु उसकी आत्मा और उसका उत्साह दोनों रेवापाल में निहित हैं। वह लाट के गौरव का अवतार माना जाता है। इसका अपमान होने पर सम्पूर्ण देश गरज उठेगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि यह पाटन का शत्रु है ?

चाहो तो यही मान लो। किन्तु उसे छेड़ने जाओगे तो लाट खो बैठोगे। इससे बिगाड़ना मत। नहीं तो इतने वर्षों का सब किया-कराया धूल में मिल जायगा। काक ने कहा अब मैं जाऊंगा। तुम्हें और नगरसेठ को मेरे यहां भोजन करना है इसलिए नगरसेठ के आते ही चले आना।

१५

काक ने अपनी स्वाभाविक विलक्षणता से अनुभवहीन आम्रभट का लड़कपन और अपनी ओर रेवापाल का तिरस्कार देख लिया था। उसके मृगुकच्छ छोड़ देने पर पीछे क्या क्या होगा उसकी एक हल्की झांकी उसे प्रस्थान से पूर्व ही दिखाई दे गई उसके दूरदर्शी मस्तिष्क में एक चिंता घर कर गयी।

इस चिंता ने एक भयंकर चित्र उसकी चेतना में चित्रित कर दिया और उसे देखकर वह कांप गया। वह मंजरी को यहां अकेली छोड़कर जा रहा था। वह मर जाय या लाट में विद्रोह आंधी आ जाय तो उसका क्या होगा ? उदा महेता के हाथों कड़ुए अनुभवों का आस्वादन उसके सम्मुख आ गया। बेचारी को पुन वैसा ही सहन करना पड़े तो कौन इसकी सहायता करेगा ?

आम्रभट को या पट्टणी भटराज माधव को सौंपना सम्भव नहीं था और लाट में ऐसा कोई भी न था कि विपत्ति के समय उसकी पत्नि को आश्रय दे सके।

क्षण भर के लिए काक की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वर्षों तक उसने न जाने कितने आदर्शों का पालन किया था और उन्हें प्राप्त करने के लिए अनेकों कठिनाइयाँ झेली थीं। इस समय तो इन सबके फल मीठे ही लग रहे थे। उसकी प्रियतमा सुख से जीवन-यापन कर रही थी उसका लाट देश परतन्त्र होने पर भी गौरवशाली था उसके स्वामी जयसिंहदेव की शान के साथ-साथ उसकी ख्याति भी चारों दिशाओं में फैल गई थी।

परन्तु यह सब इस समय अवास्तविक लगने लगा। सोरठ जाकर यदि कहीं वह बन्दी बना लिया जाय या प्राण से हाथ धो बैठे तो मंजरी तो दुःखी और निराधार हो ही जायगी साथ ही लाट में दण्ड बलात् अनीति विजेता की क्रूरता और पराजित के दुःख पुनः उमड़ पड़ेंगे और फूलझरणी के जलने के बाद जैसे उसकी राख मात्र धूल में मिलती है वही दशा उसकी अपनी कीर्ति की हो सकती है। ऐसे परिणाम की समस्त सामग्री इस समय तैयार थी। जयदेव को उससे द्वेष था उदा इस समय राजा का विश्वासपात्र बनकर वैर का बदला लेने के अवसर की ताक में था विनाश के द्वार पर पहुँची राणकदेवी उसे हारते हुए का सहायक बनने का निमन्त्रण दे रही थी यहाँ से वह जा रहा था और लाट की समस्त समस्याएं आम्रभट जैसे अभिमानी अनुभवहीन मस्त व्यक्ति के हाथों में छोड़नी पड़ रही थीं।

पल भर के लिए उसके साहसी हृदय में निराशा भर गई और जयसिंहदेव की आज्ञा का अनादर करने की बात मन में आई। दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि भृगुकच्छ से जाने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही नहीं है।

वह लौट पड़ा और पुनः नगरसेठ की हवेली के भीतर चला गया।

'रेवाभाई ऊपर हैं ?' उसने एक सेविका स्त्री से पूछा।

'हाँ। थोड़ी ही देर हुई कमरे में गये हैं।

बचपन में उसने और रेवापाल ने सम्पूर्ण घर में रौंद मारा था इसलिए वह तुरन्त रेवापाल के कमरे की ओर चला गया। रेवापाल का कमरा सबसे दूर घर के छोर पर था।

उसने सीढ़ी चढ़ते चढ़ते आवाज दी रेवाभाई ! कोई उत्तर नहीं आया। काक लपककर कमरे में गया तो देखा कि वहाँ वह नहीं था। उसने गर्दन लम्बी कर द्वार के बाहर देखा तो भी कोई दिखाई न पड़ा। उसने फिर आवाज दी किन्तु कोई उत्तर नहीं आया।

काक विस्मय में पड़ गया। रेवापाल घर के लोगों में बहुत बैठता बोलता नहीं था। द्वार से बाहर भी निकला नहीं था। फिर भी उसका दुपट्टा और उसकी पगड़ी कमरे में नहीं थे।

काक पीछे की खुली हुई खिड़की की ओर गया और चकित हो उठा। पीछे की ओर उतरने के लिए एक सीढ़ी रखी हुई थी। वह झुकता छिपता खिड़की के निकट गया और बाहर देखा।

इस पीछे के छोटे-से बाड़े में कुछ वृक्ष थे और गौशाला के रूप में उसका उपयोग होता था। काक ने ध्यान से सुना—एक दो व्यक्ति चुपचाप वार्तालाप करते हुए सुनाई दिए। रेवापाल की आवाज भी सुनाई दी। यदि वह भृगुकच्छ में न होता अथवा यहाँ का दुर्गपाल न होता तो आगे बढ़कर यह निश्चय कर लेता कि रेवापाल किससे बातें कर रहा है। इस समय आगे बढ़ने से लाभ न होगा यह वह जानता था। इतना तो स्पष्ट था कि किसी सबल कारण के बिना रेवापाल जैसा मनुष्य इस प्रकार पीछे के मार्ग से आकर बात नहीं करेगा। ऐसा लगता था कि रेवापाल ने कोई दाँव खेलना प्रारम्भ किया है। पाटण की सत्ता नष्ट करने के सिवा और कोई दाँव रेवापाल खेले ऐसी सम्भावना तो थी ही नहीं। इतने में पीछे से पगध्वनि सुनाई दी। काक सावधान हो गया और द्वार की ओर मुड़ा। द्वार तक पहुँचने पर

एक स्त्री मिली।

'बनां मामी!

रेवापाल की पत्नी बेनां चमकी कौन काक! तू—अरे तुम यहां?

हाँ मैं ही! काक हंसकर बोला यह घर कहीं छूट सकता है!

बेनां पतली और लम्बी थी। रेवापाल की दुष्क पर ससार की नौका पर बैठकर वह बेचारी सहनशील और एकनिष्ठ बन गई थी। जितना अमानुषी रेवापाल था उतनी ही वह भी थी। उसने प्रेम और अन्तर राग रंग इच्छा-तृष्णा भर्ग सभी कुछ स्वेच्छा से भुला दिए। पति की सेवा भर के लिए वह जीवित थी। दिनों तक रेवापाल उससे नहीं बोलता था और न वही बोलने का प्रयत्न करती थी। यदि घण्टों तक रेवापाल न सो पाता तो वह बिना पलक झपकाए पलंग के पाए के पास बैठी रहती थी। कई बार रेवापाल उपवास करता तो बेनां भी अन्न-जल का त्याग कर देती। जब से जखूसर गिरा तब से रेवापाल ने काक से मिलना जुलना बन्द कर दिया था और तब से बेनां ने भी काक से बोलना बन्द कर दिया था। इस समय बेनां चमक उठी और उसने न बोलने का व्रत भंग हो गया।

कैसे आना हुआ?"

हाय रे दुर्भाग्य! सोचा भी न था कि ऐसे प्रश्न का भी कभी उत्तर देना पड़ेगा! खैर, इसलिए आया हूँ कि 'मुझे भाई से और तुमसे भेंट करनी थी।

मुझसे? करुण हँसी हंसकर बनां बोली।

हाँ! अच्छा हुआ भेंट हो गई। तुम्हारी बहन को तुम्हारे हाथों सौंपना है।

मेरे हाथों? भला मैं क्या कर सकती हूँ? और तुम

मैं सोरठ जा रहा हूँ। इसीलिए मंजरी को भाई भावज को

सौंपना है।

बेनो ने गदन हिलाई— मैं कुछ नहीं जानती। तुम जानो भौर तुम्हारे माई जानें।'

किंतु माई हैं कहाँ ? इसीलिए तो मैं भाया हूँ। भभी वह कहाँ मिलेंगे ?

तुम कब जाभोगे ?

कल। भाज संध्या को मिल सकेंगे ?

'संध्या को तो दर्शन करने जायेंगे।

गणनाथ महादेव पर भुवसेन सेनापति के दर्शन करने जाते हैं न ? यही ठीक है। कहना संध्या को उनसे वहीं मिलूँगा। मैंने जो कहा वह कहोगी न ?

यदि वे पूछेंगे तो ? नहीं तो नहीं।

काक इस स्त्री की त्यागवृत्ति पर विचार करने लगा भौर चुपचाप प्रणाम कर विदा हुआ। भाने वाली विपत्ति के तारा की भस्पष्ट भंकार उसके कानों से निरन्तर टकराने लगी।

१६

बहुत धचन हो गया भाम्रभट। न जाने कैसे कैसे भानन्द उठाने की इच्छा लेकर वह मृगुकच्छ भाया था किन्तु यहाँ तो पाँव धरते ही नौकर खाया भपमान उठाया भौर हृदय भी कोई भपरिचित हर ले गई। अब तक की भायु में इतने दुःखों की इतनी लम्बी परम्परा का भनुभव उसने नहीं किया था।

इतने में नगरसेठ भा गए।

'भहा हा, मेरे खंभात के मन्त्री के चिरंजीव !' तेजपाल सेठ ने

कटाक्ष भरी आवाज में कहा मेरे तो भाग्य खुल गए। उन्होंने आम्रभट का आलिंगन किया मुझे तो प्रातःकाल ही से लग रहा था कि आज मेरे भाग्य खुलने वाले हैं। कहो उदा महेता की कृपा तो है न ?

आम्रभट की समझ में यह व्यक्ति भी नहीं आया। उसके दान्त मिश्री जसे थे। परन्तु उसकी वाणी में स्पष्ट कटाक्ष था। वह गम्भीर बात कर रहा है या ठट्ठा कर रहा है यह भी उसके मुख से समझा नहीं जा सकता था। वह एक कानी आँख के कोने से बराबर आम्रभट को देख रहा था।

अरे ए ठाकर ! जैसे चिल्लाकर उन्होंने अपने दास को पुकारा भटजी की कुछ आवभगतकी ? मरमुखे गाँव के दासों में एक कौडी की भी तो समझ नहीं होती। जाने कसे अवकाश के समय में बनाये गए थे ! कहिए भट जी चित्त तो प्रसन्न ? खेद है हमारे यहाँ तो पाटण जैसे आनन्द नहीं है।

मुझे तो आपका मृगकच्छ बहुत भाया।

अजी पाटण की बराबरी कहाँ ? आम्र भट जी तो आज चले। इनके भी पाँव में भंवरी लगी है। नगर सेठ ने कहा।

हाँ उन्हें महाराज ने बुलाया है।

'क्यों नहीं ? तेजपाल ने पुनः अस्पष्ट से स्वर में कहा एस व्यक्ति महाराज के निकट हो तो कहाँ हों ? महाराज की कीर्ति भी तो कितनी है ! ससार में मनुष्य से लेकर पशु तक उन्हीं का कीर्ति-गान किया करते हैं।

आम्रभट देखता रहा। फिर कहा हाँ।

चलो अब स्नान कर लो। दुर्गपाल के यहाँ आज बहुत समय लगेगा। मैंने तो प्रातःकाल ही स्नान कर लिया था। शीघ्रता करो नहीं बेचारे ब्राह्मण ने घर का अन्न ठण्डा हो जायेगा।

इस तीक्ष्ण वाणी का प्रसाद आस्वादन का भौचक्का सा आम्रभट नहा धोकर तैयार हुआ और नगरसेठ के साथ पालकी में बैठ कर

'तो इसमें आज्ञा किस बात की ? रेवा ! तेरे अन्तर को शान्ति प्राप्त हो यही प्रार्थना तो मैं नित्य किया करता हूं।

गुरुदेव ! आप मुझे समझे नहीं। आप चाहते हैं वही शान्ति मैं नहीं चाहता।

'तो ?

पट्टणी वापस आयें तभी मुझे शांति प्राप्त हो सकेगी।

अब तक तू यह भूला नहो ? रेवा ! कितनी बार कहूं ? मणाल कुंवरि का पाटण से गठबंधन हुआ तभी से पाटन हमारा स्वामी हो गया। अब इतने वर्षों पश्चात् हो भी क्या सकता है ?

गुरुदेव ! आप भी इस प्रकार निराश हो जायेंगे तो—।'

भाई जहाँ तक आशा की एक भी किरण चमकती रही मैं अडिग रहा। किंतु अब आशा रखना विक्षिप्तता है।

आवेश के वश से रेवापाल ने आँखें मीच लीं। उसके होंठ तनकर कठोर हो गए।

गुरुदेव ! आपने संसार त्याग दिया इसीलिए विक्षिप्तता लगती है किन्तु आज जैसा अवसर पुन लौटकर नहीं आने का।

अवसर है—मुझे तो ऐसा विश्वास होता।

न हो अवसर न भी हो तो अब मैं थक गया हूं मुझसे अब वह सब सहन नहीं होता देखा नहीं जाता। अब तो ऐसा लगता है कि या तो मैं मिट जाऊँ या पट्टणिओं को मिटा दूं। आंखों से आंसू पोंछते हुए रेवापाल ने कहा।

क्यों बात क्या है ? तनिक आतुरता से ब्रह्मानन्द ने पूछा।

गुरुदेव ! जिधर दृष्टि जाती है लाट की मान और सुख को नष्ट होते हुए देखता हूं। आज भी एक बात हो गई। अविमुक्तेश्वर के देवल के सामने दो पट्टणियों को मैंने स्त्रियों की हंसी उड़ाते हुए देखा। एक सैनिक के हाथों एक पवित्र ब्राह्मण को अपमानित होते देखा। ऐसा आज ही हुआ हो यह बात नहीं प्रतिदिन कुछ-न-कुछ होता ही

रहता है। भयंकरता की भी सीमा होती है। निश्चित ही नरक भी इससे अधिक भयंकर नहीं होगा।

'कर्क क्या करता रहता है ?'

'कर्क क्या कर सकता है ? वह तो एक खिलौना है। वह मनचला है उसकी चलती है किन्तु उसकी पीठ फिरते ही अनेक अत्याचार हो जाते हैं। और फिर वह भी चला जा रहा है।

'कहाँ ?

'अवन्ती। उसके महाराज की आज्ञा है। और लाट की सत्ता किसके हाथ सौंपी जायगी यह भी सम्भवतः आप नहीं जानते होंगे ?

नहीं।

'एक मन्त्री का पुत्र है। न उसमें बुद्धि है न व्यवहार-कुशलता और न शौर्य! उसके शासन में रहने से तो कट मरना ही अधिक श्रेयस्कर है इसीलिए मैं कहता था कि अवसर बहुत अच्छा है।

'वह ठहरा नहीं है ?

'अरे नहीं। त्रिलोचन तो उसकी बहन का पाणि-ग्रहण करना चाहते हैं।

अच्छा ?

'हाँ। परन्तु मेरा वश चलेगा तो आंबड़ मेहता जैसा व्यक्ति है वैसा बचकर नहीं जाने पायेगा। गुरुदेव! सोचिए! भोलानाथ ने हमें कितना अच्छा अवसर प्रदान किया है। त्रिभुवनपाल नहीं कर्क नहीं पहले भी सत्ता नाम-मात्र की है, और आंबड़ और माधव दोनों के हाथ में रहेगा लाट का सत्ता! गुरुदेव! आपकी एक हुंकार से लाट फिर हमारे हाथ में आ जायगा। आतुरता से ब्रह्मानन्द की ओर देखते हुए रेवापाल बोला गुरुदेव! सोचिए तो दण्डनाथ महाराज की लाट आज कुचली रौंदी जा रही है। निराधार लाट को आप सहायता प्रदान न करेंगे तो कौन करेगा ?

'वत्स! मैंने तो सन्यास ले लिया है, इसलिए मेरी बात तो छोड़

ही दो। और तू जो आंधी खड़ा करना चाहता है उसमें मुझे समझदारी नहीं दिखाई पड़ती। ब्रह्मानन्द ने गर्दन हिलाते हुए कहा।

तो क्या बैठा रहूँ ? गुरुदेव ! एक हजार योद्धा तत्पर हैं पन्द्रह दिन में पाच हजार पदाति भृगुकच्छ आ पहुँचेंगे। तनिक धीमी आवाज में रेवापाल ने रहस्योद्‌घाटन किया।

क्या कर रहा है ?

यू तो पन्द्रह दिन से मुझे थोड़ी बहुत सूचना थी। जैसे ही आज आग्रमट आया मैंने समझ लिया कि इस अवसर पर चूकना नहीं चाहिए। मने चारों ओर आदमी भेज दिए हैं। अक्षयतृतीया के पहले ही भृगुकच्छ से मांडवी तक का प्रदेश हमारे अधिकार में आ जायगा। धीमी किन्तु उत्साह भरी आवाज में रेवापाल बोला।

तूने तो सब कुछ आरम्भ भी कर दिया है। -

'हां। किन्तु आपकी आज्ञा के बिना आगे नहीं बढ़ सकूंगा।

बेटा ! तू जो करे उसमें तुझे विजय प्राप्त हो यही मेरी कामना है।'

देव ! इस समय तो यही आशीर्वाद दीजिए कि या तो विजय प्राप्त करू या देह त्याग करू।

रेवापाल ! ऐसी एकनिष्ठा वाले को विजय ही प्राप्त होती है।

रेवापाल एकाग्र दृष्टि से देख रहा था।

देव ! एक याचना है।

बोल।

आप जोगिया वस्त्र त्याग दीजिए।

ब्रह्मानन्द चमक कर पीछे हट गए।

क्या ?

देव ! ध्रुवसेन सेनापति के बिना समूचे लाट का शौर्य निरर्थक है। किसके नाम पर हम छाती ठोक कर खड़े होंगे ? किसके वचन हमें मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उत्साहित करेंगे ?

रेवा ! आपने ही तो कहा था कि अपने ही हाथों गंवाए हुए लाट

में आपके लिए कोई स्थान नहीं है। तो महाराज! ग्रहण कीजिए अपना स्थान और फिर से लाट को हस्तगत कीजिए। एक बार फिर निकल पड़िए, एक बार फिर अपने धनुष की टंकार से लाट गुँजा दीजिए।

'बेटा तेरे वचन मेरे मन को उलझा अवश्य रहे हैं।'

'तो कहिए—आर्येश ? अक्षयतृतीया को जोगिया त्याग करेंगे ?'

'नहीं।'

देव! आपके मुख नहीं।

कुछ समय तक ब्रह्मानन्द चुप रहे।

'रेवा! एक वचन देता हूँ।'

'क्या ?

'तुम यदि मेरी आवश्यकता जान पड़े, मेरे न रहने से ही यदि तेरा प्रयास धूल में मिल रहा हो तो सन्देशा भेज देना। जोगिया त्याग कर चला आऊंगा। अब तो ठीक है ? तनिक हँसकर ध्रुवसेन बोला।

रेवापाल ने झुक कर ब्रह्मानन्द के चरणों पर अपना माथा टेक दिया। किसी अन्य रीति से वह अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं कर सका। गुरु ने शिष्य के माथे पर हाथ रखा। कुछ समय तक दोनों मौन रहे।

देव! एक कृपा कीजिएगा ?' रेवापाल ने प्रश्न किया।

'कह बेटा।

अपना पद्मविजय देंगे ?

'अवश्य! तुम्हारे सिवा और कौन योद्धा उसका उपयोग कर सकता है ?

'देव! हँसी-हँसी में ही इस धनुष को पद्मविजय नाम दिया था याद है ? जहाँ इसकी टंकार होगी वहाँ विजय निश्चित है।

बेटा! वह उस अटारी पर रखा है, ले ले। और जब मेरी आवश्यकता हो तो इसकी कमान का फुन्ना निस्संकोच मेरे पास भिजवा देना। पद्मनाभ महाराज की पटरानी ने उसे बाँधा था। रेवापाल

उठा और नीचे की अटारी में रखा धनुष खींचकर निकाला दुपट्टे से झाड़ कर साफ किया और फिर भूमि पर रख कर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह पहले जैसी ही दशा में था।

सचमुच यह अद्भुत है।

बेटा! गंगानाथ महादेव की कृपा है। जा अब विजय लाभ कर।

रेवापाल ने पुन: दण्डवत् प्रणाम किया, ब्रह्मानन्द सरस्वती ने मौन रहकर ही आशीर्वाद दिया। दोनों चुपचाप किन्तु भारी हृदय से विदा हुए। दोनों को लग रहा था कि आज विधि उनके जीवन का नया पृष्ठ खोल रही है।

१८

रेवापाल झोपड़ी से बाहर निकला तो उस समय संध्या हो चली थी। ढलते हुए सूरज का प्रकाश और झीने अंधेरे आकाश में सचरण करते तारागण रेवा के तेज को गाम्भीर्य का पुट दे रहे थे। भक्त जैसी तल्लीनता से वह नर्मदा के शान्त तट को देख रहा था विचारमग्नावस्था में धीरे धीरे वह छत पर गया।

आज उसके हृदय का भार हल्का हो गया था। निराशा से क्षुब्ध सोये हुए उसके हृदय में आशा का नूतन उल्लास जाग उठा था। वर्षों की दबी हुई आकांक्षाएँ आज पूर्ण होती दीख रही थीं। लाट की स्वतन्त्रता के लिए एक भयंकर युद्ध करना ही उसके जीवन का उद्देश्य था वह उद्देश्य आज पूर्ति के शिखर की ओर अग्रसर हुआ था।

जम्मूसर गिरने के पश्चात् भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा *उसने क्षण-मात्र के लिए भी न त्यागी थी। लाट की ग्रहदशा में कभी*

उसे विश्वास था अतः उसे पट्टनिमा को लाट से बाहर निकाल देना कभी भी असम्भव नहीं लगा। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में और बड़े-बड़े कष्ट उठाकर पाल-पोसकर बड़ी की हुई यह आशा आज सिद्धि निकट थी।

मन में इस आशा को सजोये हुए भी व्यवहार-कुशलता वह नहीं भूला था। सम्पूर्ण लाट पर उसकी दृष्टि थी चारों ओर के उपद्रवी और असन्तुष्ट योद्धाओं से उसका सम्बन्ध था और उसकी एकनिष्ठा और देशभक्ति के कारण लाट में उसका इतना सम्मान था कि प्रसेन के सन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् लोगों की आँखों में बसी वह था।

नर्मदा की तरंगों की ओर वह देख रहा था। मन ही-मन उसने इस जाग्रत योगमाया को अर्घ्य अर्पण किया और आशीर्वाद की याचना की। उसे लगा कि उन तरंगों से प्रगट होती हुई माता के काल्पनिक कर उसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

अर्द्ध सुप्तावस्था में वह पर्वाविजय के प्रसंग धनुषखण्ड पर हाथ रख कर खड़ा रहा। एका-एक किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। चमक कर वह घूमा और अनायास ही हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। सामने मुस्कराता हुआ दुर्गपाल खड़ा था।

क्रोध से रेवापाल ने होंठ काट लिए। उसके दुर्भाग्य का दूत उसके सन्मुख खड़ा था। इस समय भी वह उसे निश्चित होकर विचार न करने दे रहा था। सम्भव है वह किसी बुरे संकल्प से उसके पीछे आया हो।

रेवाभाई ? अन्त में भेंट हो ही गई। काक बोला।

'कब आया ? दाँत पीसकर क्रोध से खरखराती आवाज में रेवापाल ने प्रश्न किया।

प्रातःकाल मैंने बड़ा भाभी से कहा था कि इसी समय मैं तुमसे भेंट करने आऊँगा, लगता है उन्होंने तुमसे नहीं कहा ? काक ने निर्दोष स्वर में कहा। रेवापाल अपने पुराने मित्र से परिचित था अतः उसका

ठी बाता में यह भा जाय ऐसा न था। कुछ देर तक वह भौंखें
काल कर देखता रहा।
किस काम भाया है ? अधीर होकर रेवापाल ने प्रश्न किया।
मैं कल थयली जाने वाला हूं।
तो इससे मुझे क्या सरोकार ?
एक याचना करने भाया हूं।
किसी को दान देने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि हो भी तो
तुझे नहीं दूंगा। रेवापाल तिरस्कार पूर्वक बोला।
फिर भी याचना मैं तुम्हीं से करूंगा भौर तुम्हारे सिवा कोई
दान दे भी न सकेगा। काक ने नम्रता से कहा।
'दान मांग अपने पाटण के स्वामी से। हठ पूर्वक गर्दन हिलाते हुए
रेवापाल ने कहा।
जो दान बालमित्र दे सकता है वह संसार का स्वामी भी नहीं
दे सकता।
मैं तेरा मित्र नहीं भौर न मुझे तेरी मित्रता ही चाहिए। कह
कर रेवापाल चलने लगा।
'किन्तु मुझे तुम्हारी मित्रता की आवश्यकता है। सुन तो लो कि
मैं क्या मांगता हूं ? फिर भले ही ना कह देना। मुझे एक स्त्री को
तुम्हारे संरक्षण में छोड़ना है। रेवाभाई! क्या तुमसे इतना सा भी न
हो सकेगा ? शांत रह हंस कर विनोद में काक ने पूछा।
काक की बात सुन कर रेवापाल एकदम रुक कर उसकी भोर घूम
गया। उसकी कठोर दृष्टि में नरमी भाई। काक ने देखा कि रेवापाल
पिघला है।
'भाई! मुझे अपनी भृगुकच्छ की या पाटणकी तनिक भी चिन्ता नहीं
है। उनका जो होना होगा होगा उनक जो कुछ तुम्हें करना हो करना।
काक ने रेवापाल के हाथ का धनुष देखकर कहा अभी तो एक निःसहाय
स्त्री की रक्षा करनी है। इतना-सा काम लाट में तुम न करोगे तो कौन

करेगा ?

तुमसे नहीं हो सकता ?

'कहा न मैं तो कल जा रहा हूँ। सम्भव है लौट कर न आ सकूं। काक ने कहा।

कौन है ?

'एक विद्वान ब्राह्मण की पुत्री है।

रेवापाल चकित हो गया। पूछा कौन तेरी पत्नी ?

'यदि वही हो तो—

'उसे मैं अपने यहाँ क्यों शरण दूं ?

मुझे कुछ हो जाय तो ?

तुझे और तेरे संग सम्बन्धियों को कुछ भी हो इससे मुझे क्या ?

मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो यह नहीं कहता।

'काक ! मैं तुमसे भली भाँति परिचित हूं। तेरे जैसा हरामखोर मैंने दूसरा नहीं देखा। इस समय मृगुकच्छ में सब कुछ अव्यवस्थित हो गया है अतः तू यनकेन प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहता है।

भगवान सोमनाथ साक्षी है कि मुझे अपनी चिन्ता बिल्कुल नहीं है। किन्तु उस बेचारी को विदेश से मैं लाया हूँ। मेरे सिवा उसका और कोई नहीं है। मानलो सुमन लाट पुनः हस्तगत कर लिया—तनिक तीक्ष्णता से रेवापाल की ओर देख कर काक बोला तो इस बेचारी का कौन सहायक होगा ?

अपने स्वामियों को क्यों नहीं सौंप जाता ?

सर्वमान्य सिद्धांत यह है कि अपना जीवन सर्वस्व स्वामियों को नहीं मित्रों को सौंपा जाता है। काक ने उत्तर दिया।

एमे तो कितनों ही के जीवन सर्वस्व तूने लूट लिये। रेवापाल ने कहा। काक समझ गया कि उसके शब्दों का प्रभाव रेवापाल पर बड़े वेग से हो रहा है किन्तु उसके हृदय को पिघलाने के लिए अभी और

सावधानी से काम लेना पड़ेगा। उसने आधे क्षण तक विचार किया और फिर एक भयंकर ब्रह्मास्त्र छोड़ा।

'रेवा भाई! तुम्हारे जीवन सर्वस्व को पाटण भिजवा दिया सम्भवत उसी का यह प्रतिकार दे रहे हो क्या ?

रेवापाल बचपन से लीलादेवी के चरण पूजता था। वह स्वामी भक्ति थी या और कुछ यह कोई नहीं जान पाया। जब से ब्याह कर लीलादेवी पाटन चली गई तब से उसके हृदय में स्वदेश की आग को छोड़ और कोई लगन कभी भी थी या नहीं यह भी कोई नहीं जानता था। किन्तु काक से कुछ भी छिपा हुआ न था। वर्षों से छिपाए हुए व्रण पर उसने एसा तीव्र आघात किया कि वह फिर हरा हो उठा।

क्या ? चमककर रेवापाल गरज उठा। उसकी आँखों में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। आवेश में आकर उसने तलवार निकाल ली। मौत आई है क्या ? गरज कर वह बोला।

तुम्हारे हाथों मौत—इससे बढ़कर अच्छी वस्तु और क्या हो सकती है ? मुस्कराते हुए शांत और प्रसन्नचित्त से काक बोला। लीलादेवी का पाणिग्रहण सोलकी के साथ कराया उसी का वर निकाल रहे हो क्या ?

चुप—रहो —रेवापाल धीरे किन्तु इस प्रकार बोला मानो रक्त ही पी जायगा।

क्या क्या मेरी बात असत्य है ? मणालकु वर यदि यहाँ होती भी तो तुम्हारा मनोरथ पूरा नहीं होता। कृत्रिम तिरस्कार से काक बोला।

चाण्डाल ब्राह्मण! काँपते हुए स्वर में रेवापाल बोला तेरा समय आ गया है अब या तो तू नहीं या मै नहीं। निकाल अपनी तलवार। बिना युद्ध किए तुझे नहीं मारू गा। तेरी पापी जीभ को अब एक शब्द भी न बोलने दू गा। चल निकाल। रेवापाल के मु ह में झाग आ गए।

शान्त रहकर मुस्कराते हुए काक ने गर्दन हिलाकर ना कर दी। रेवाभाई! मै तुम्हारे सामने मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा ?

'क्यों ?

मैं कायर नहीं किन्तु यदि हम लड़ें तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। जानते हो कि मैं तुमसे दुगुना बलवान हूं और अपने बालमित्र को मैं मारना नहीं चाहता।

रेवापाल के क्रोध की सीमा न रही। वह चेतना खो बठा। उसकी दृष्टि में काक ही उसका एक मात्र शत्रु था वही उसकी आकांक्षाओं में सबसे बड़ा रोड़ा था। अतः उसे मौत के घाट उतार देने में ही उसे अपनी और लाट की मुक्ति दिखाई दी।

'पापी ! खड़ा रह। अभी तेरे दो टकड़े करता हूं।' कहकर वह तलवार उठाकर आगे बढ़ा। काक कठोर होकर तिरस्कार से देखता रहा।

यही तो देखना है कि किस प्रकार याचक ब्राह्मण को मारकर रेवापाल अपनी टेक पर पानी फेरता है ? गर्व से काक ने कहा।

'रेवापाल की टेक !' इन शब्दों के कानों में पड़ते ही रेवापाल रुक गया। उसकी तलवार निकली-की-निकली रह गई।

रेवापाल कभी अपना टेक नहीं त्यागता। निकट ही से एक मधुर स्वर आया।

दोनों घूमे। निकट ही तारों के क्षीण प्रकाश में तेजस्वी और गौरवयुक्त ब्रह्मानन्द सरस्वती खड़े हुए थे। काक ने साष्टांग प्रणाम किया। रेवापाल का उठा हुआ हाथ नीचे झुक गया और उसके हाथ से तलवार छूट पड़ा। वह धरती पर बैठ गया और दोनों हाथों में माथा रखकर सिसकने लगा।

१६

'रेवापाल, यह क्या ? काक दो घनिष्ठ मित्रों को क्या यह सब शोभा देता है ?

रवापाल ने हाथों में से सिर नहीं उठाया। काक मुस्कराते हुए देखता रहा।

गुरुदेव ! घनिष्ठ मित्र ही तो इस प्रकार लड़कर फिर एक हो जाते हैं। कल मैं सोरठ जाने वाला हूँ इसलिए भाई को एक अमानत सौंपने आया था।

'क्या ?

मेरी स्त्री ! उस बिचारी का क्या होगा इसकी मुझे अत्यन्त चिन्ता है। काक ने कहा।

'बेटा ! ब्रह्मानन्द बोले उसको क्या हो सकता है ?

'गुरुदेव ! रेवाभाई को तो मैं तनिक खिझा रहा था यह क्रुद्ध होते हैं तो मुझे आनन्द मिलता है। आपसे सच-सच कहता हूँ। रेवाभाई तो अवसर की ताक में बैठे ही हैं और मृगुकच्छ के नए दुर्गपाल में रत्ती भर बुद्धि नहीं है। अतएव लाट में उपद्रव होगा यह निश्चित है। आप ना न कहिएगा क्योंकि मैं दूसरी कोई मानने का नहीं। मैं आपको और रेवाभाई को पहचानता हूँ।

तो अपने साथ लेता जा।

एसा भी नहीं हो सकता। जयसिंहदेव महाराज के दरबार में मेरा एक कट्टर विरोधी बैठा हुआ है। महाराज या लीलादेवी भी मेरी स्त्री को आश्रय देंगे नहीं। कल मुझे कहीं कुछ हो जाय तो फिर उसका क्या होगा ?

काक ! ब्रह्मानन्द ने कहा तू तो धोबी का कुत्ता हो गया है, न घर का रहा न घाट का।

बात है तो ऐसी ही।

'तो घर का क्यों नहीं हो जाता ? पाटन में तेरा कौन है ? अपने रेवाभाई के साथ क्यों नहीं रहता ? तुम दोनों बचपन के साथी हो इस तरह एक-दूसरे में कट-मरने में क्या कुछ लाभ है ?

हाँ कान !' रेवापाल एकदम खड़ा होकर बोला हमारे साथ आ हम पाटन को भी जीत लेंगे।

भाई ! गुरुदेव ! खिन्न स्वर में कान बोला 'यह निमन्त्रण नया नहीं है क्योंकि पहले भी मुझे मिला है। किन्तु मुझे आपकी योजना में श्रद्धा नहीं है। अकेला लाट पाटन के सामने कर ही क्या सकता है ? एक बात और भी है जो मुझे स्पष्ट दिखाई देती है वह आपको नहीं दिखाई देती।

कौन सी ?

गुरुदेव ! लाट गुजरात अथवा सोरठ अब अकेले टिक सकें ऐसा सम्भव नहीं है। मालवा और सपादलक्ष★ भी अकेले रहकर नहीं टिक सकेंगे। यदि यह सब एक न हो सके तो हम सब-के-सब नष्ट हो जायेंगे। युग-पर-युग व्यतीत हो गए—लाट और गुजरात गुजरात और मालवा गुजरात और सपादलक्ष आपस में लड़ते झगड़ते चले आए हैं। इसी प्रकार चलता रहा तो हम निर्वीर्य और निराधार हो जायगे। और फिर गुरुदेव ! लाट में बैठ-बैठ आपको कुछ पता भी तो नहीं है।

'क्या ?

जिन विधर्मी यवनों ने भीमदेव महाराज के समय में सोमनाथ लूटा था वह फिर आगे बढ़ते ही चले आ रहे हैं। प्रति वर्ष उनके विषय में अधिक-से-अधिक बातें सुनाई देती हैं। यदि हम अन्दर-ही अन्दर लड़ मरेंगे तो हमारी क्या दशा होगी ? पाटन में एक पागल यती आया था—वर्षों पहले। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह सदा अलग अलग धर्मों को त्याग कर एक धर्म स्वीकार करने की बात

★अजमेर के आस-पास का प्रदेश।

'तो मैं कहाँ ना कहता हूँ । परन्तु बाद में मेरी स्त्री सेर भर धान के लिए भूखो न मर जाय भाई ! निराधार होकर न रोए मेरा पुत्र निराश्रय होकर कुम्हला न जाय—बस इतना ही वचन दे दे।

दे दे रेवा ! इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।

अच्छा काक ! अपना सोचा तूने किया ही । तेरी पत्नी और पुत्र को निराधार कभी न होने दूंगा । अब तो ठीक ? अब जा भाग तो मैं तुमसे उकता गया हूँ । इस जन्म मे अब अपना मुह न दिखाना।

भाई ! विधि ने क्या-क्या लिख रखा है कौन जाने ? कहकर काक ने दोनों को नमस्कार किया।

काक ! जहाँ कहीं रहे काम वही करना जो तेरे गुरु को शोभा दे।

निश्चिन्त रहिए गुरुदेव ! अच्छा अब आज्ञा ?

हाँ बेटा !

काक पुन नमस्कार करके चला गया।

रेवा ! यह लडका है विलक्षण ! ब्रह्मानन्द ने कहा।

स्वार्थ साधने में एक ही है गुरुदव। रेवापाल ने उत्तर दिया।

२०

काक ने बन्दरगाह पर आकर इच्छानुकूल पोत का प्रबन्ध हुआ कि नहीं इसकी छानबीन की। वहाँ से लौटकर अन्य कार्य पूरे करके वह मजरी के पास गया।

मजरी ने सांसारिक जीवन स्वीकार किया था फिर भी शरीर और बुद्धि में वह जसी थी वैसी ही मोहक बनी रही। वह पहले के ही समान गर्विष्ठा थी पहले से भी अधिक विद्वान थी। जिन जिन लोगों से उसका

परिचय हुआ उन सभी पर उसकी मोहिनी प्रभाव कर गई थी।

उसका पांडित्य विद्वाना में उसके प्रति मान पैदा करता था परदेशी विद्वान भृगुकच्छ में आते तो इससे भेंट करने अवश्य जाते और प्रशसा से आर्द्र हुए हृदय से पराजय स्वीकार कर उसकी तुलना सरस्वती से करते हुए श्लोक रचना करते। चारों ओर से जो योद्धा आते और दुर्गपाल का आतिथ्य स्वीकार करते वे उसके महत्व को भूलकर उसकी स्त्री के पुजारी हो जाते थे। भृगुकच्छ के साधारण लोग उससे परिचय होने पर उसे देवी मानते, वृद्ध उसे रेवा मां का अवतार समझकर उसके दर्शन कर कृताय होते थे अधेड वय वाले अपने घर के झंझटों को भूलने के लिए इसके निकट बात करने बठ जाते थे और एक अमृत भरी दृष्टि की याचना करने वाले युवक उसकी एक अर्थहीन दृष्टि से प्रोत्साहन पाकर उसको प्रसन्न करने के लिए भवसागर पार करने के लिए तत्पर हो जाते थे।

इस गर्विष्ठा स्वस्थ और सुन्दर रमणी के प्रति एक अस्पष्ट तिरस्कार की भावना वह ही पुरुष और नारियां रखते थे जो इसके सम्पर्क में न आ पाते थे। मंजरी यह बात जानती थी परन्तु इन्हों को वह भी स्पष्ट तिरस्कार से देखती थी।

पति और उसके उपरान्त स्वय की भक्ति में उसे इतनी श्रद्धा थी कि जब काक ने उसे रेवापाल द्वारा दिये हुए वचन की बात कही तो उसकी आंखों से चिनगारियां निकल पड़ी।

क्यों किसी के पास भीख मांगने गए ? 'उसने होंठ-पर होंठ दबा कर पूछा तुम्हें—महारथियों के शिरोमणि को—ऐसी याचना करते लज्जा न आई ? क्या हो गया था तुम्हें तुम कैसे इतने अधिक अधीर हो सके ?

काक के स्नेह में पली सुन्दरी का क्रोध देखकर मधुर हास्य कर उठा।

मैं न होऊं और कुछ उपद्रव हो जाय तो ?

तो मुझे क्या हो सकता था ? किसकी मजाल कि मेरा कुछ कर सके ।

काक पुन हँस दिया हाँ यह तो मुझे मालूम है । मृगुकच्छ का प्रत्येक नवयुवक तेरे लिए प्राण देने को तयार हो जायगा ।

नहीं तो क्या । जसे सब लोग तुम्हीं पर मोहित हो पड़ते हों ! मजरी ने भी हँसकर उत्तर दिया । किन्तु रेवापाल के गर्व की तो कोई सीमा ही नहीं है । उसकी शरण माँगने से पहले मैं मर जाना अच्छा समझूँगी ।

पगली ! रही न वसी-की-वसी । मेरे कानों में अभी से उपद्रवों की भनक पड़ रही है । और इस सम्पूर्ण लाट में सबल का पक्का कोई है तो रेवापाल ! आँबड़ को सौंपना तो निरर्थक है ।

आँबड़ ! जसा बाप वसा बेटा । मुझे तो उसका नाम ही अच्छा नहीं लगता । फिर भी तुम व्यर्थ की चिंता कर रहे हो । सोमेश्वर है मणिभद्र है और क्या चाहिए ? तुम अपनी चिन्ता करो । और जिस प्रकार पन्द्रह वर्ष पहले पाटण विजय करके लौटे थे इस बार भी वसे ही विजय पाकर लौटना ।

साथ में किसी को लेता आऊ ?

'मंजरी से अधिक सरस मिल सके तो अवश्य लेते आना ! मेरी सौगन्ध है । मंजरी ने हँसकर कहा । तेजस्वी सुकुमार स्फटिक-सी चित्त इस मोहनी के शब्द सुनकर वह सब कुछ भूल गया । वह पल भर तक उसके मुख की अपूर्व रेखाओं और उसके हास्य की विद्युत्प्रभा की ओर मोह दृष्टि से देखता रहा । फिर उचित उत्तर न दिया उसने मंजरी का चुम्बन कर लिया ।

मान छोड़ कर मंजरी काक की बाहुओं में लिपट गई ।

नटराज ! उसने धीरे-से अन्तर की अभिलाषा प्रकट की शीघ्र लौटोगे न ?

तुरन्त । घबराओ नहीं । मुझे कुछ होने वाला नहीं है ।

दोनों आत्मश्रद्धा के आनन्द में चिन्ता भूल गए।

दूसरे दिन दुर्गपाल विदा हुआ। बन्दरगाह तक आम्रभट नगरसेठ माधव और मणिभद्र पहुँचाने गए। मन्दिर की छत पर से मंजरी क्षितिज में अन्तर्धान होते हुए पोत पर खड़े हुए कान्त को देखती रही। पोत के अदृश्य हो जाने पर आँचल से आँसू पोंछे और बाँसुरि को छाती से चिपका लिया।

उसकी दो-तीन सखियाँ साथ में थीं। वह चुपचाप इस स्नेही हृदय की व्यथा को देखती रहीं परन्तु मंजरी से एक शब्द भी कहने का किसी को साहस न हुआ।

उसने बाँसुरि को एक सखी को दिया और दर्शन करने के लिए मन्दिर की ओर घूमी। एक विद्यार्थी ने आकर दीपक जलाया। वृद्ध पुजारी लगड़ाता-लगड़ाता आया और हँस हँस कर समाचार पूछने लगा। हास्य की किरणें प्रदीप्त करती हुई मंजरी अपने तेज से अँधेरे मन्दिर को भी आलोकित कर रही थी।

वह मन्दिर से बाहर निकली ही थी कि बेना के साथ नगरसेठ के यहाँ की अन्य स्त्रियाँ आईं। रेवापाल उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखता था यह मंजरी को मालूम था। बेना को भी उसका समागम पसन्द नहीं था। अतः उसकी ग्रीवा की भंगिमा में गर्व भर गया उसके हास्य में तनिक अभिमान भी प्रकट हुआ।

'मंजरी भाभी कैसी हो?' बेना ने कहा।

'अच्छी हूँ। तुम कैसी हो?'

'ठीक हूँ मेरे देवर गए न?'

हाँ।

'मंजरी इधर आओ एक बात कहनी है?'

'क्या?' कह कर मंजरी कुछ दूर बेना की ओर गई।

मंजरी सुन कर सीधी खड़ी हो गई। उसकी आँखें अधिक बड़ी हो गईं। वह एक शब्द भी न बोली।

कहलाया है। पतिपरायण बेनां मजरी के गव को देख उत्पन्न हुए अपने क्रोध को दबाते हुए बोली कि कुछ काम हो तो उन्हें कहला भेजना।

क्षण भर के लिए मंजरी के होठ काँप उठे। उसने उत्तर दिया, बनां देवी! उनसे कहना कि नटराज की स्त्री को किसी के सरक्षण की आवश्यकता नही।

मजरी की आँखो में तलवार की धार जसी तीक्ष्णता थी, उसके सस्कृत स्वर में अपमान के सरगम के सभी स्वर थ।

बेनां को इन शब्दो से गहरा आघात लगा। पतिभक्ति करते-करते सीखी नम्रता भूल गई और अपमानित स्त्री के हृदय में निवास करते—विषैली नागिन के विष से भी भयकर विष उसके अन्त करण में घुस व्याप्त था।

हाँ मैं भूली। तुम्हारे यहाँ कमी ही किस बात की है कि उनके सरक्षण की आवश्यकता पड़े इतना कह बनां वहां से चलो। शब्द निर्दोष थे किन्तु उसमें छिपा विष मजरी ने देख लिया। एक भयकर दृष्टि बना पर डाली और गव से सिर ऊचा करके वहां से चली गई। उसकी आँखो मे क्रोध के आँसू निकल आए।

उसकी सखियाँ कुछ जान न पाईं। वह भी मन्दिर से बाहर निकली। साम्वा बह्मानि के बाड़े में प्रवेश करने से पहले उन्हें एक स्थान पर मुख्य पथ पार करना पड़ता था। वे जैसे ही मुख्य पथ पर गईं वस ही उन्होंने पथ के दूसरी ओर से कुछ गुरुओं सहित एक नवयुवक साधु को आते हुए देखा। मजरी अपनी सखियों को लेकर तेज गति स गली में चली गयी, परन्तु उसने उस साधु का तजस्वी मुख देख लिया था। एक सखी से बोली यह जो नया साधु आया है म बड़ा विद्वान माना जाता है।

हाँ! मैंने भी सुना है। बड़े-बड़े विद्वानों की भी इसके सामने नही चलती।

हेमसूरि की चंचल दृष्टि भी मंजरी पर पड़ गई थी। काक द्वारा दिया हुआ परिचय उसे याद आया—बचपन में खमात में जिस युवती के पड़ोस में रहा था और जिसे काक उठा ले गया था वही।

उसकी विस्मृत तेजस्विता का उसे स्मरण हो आया।

दुर्गपाल को कैसे यह स्त्री मिली और उसके पांडित्य के विषय में लोकोक्ति क्या थी यह तो उसे ज्ञात था। उसके निकट ही चल रहे एक श्रावक से पूछा 'दुर्गपाल की पत्नि बड़ी शास्त्र विशारद मानी जाती है न?

'जी हाँ। युवक साधु की सर्वज्ञता पर मोहित होकर श्रावक ने कहा।

२१

आंबड़ तेजपाल माधव और सोमेश्वर काक को विदा कर लौटे। अब आंबड़ में कुछ कुछ साहस आया। काक से उसे भय लगता था। अत उसकी उपस्थिति में वह निःसहाय सा बना रहा। अब तो जब तक जूनागढ न हार जाय और कोई दूसरा दण्डनायक या दुर्गपाल न आ जाय तब तक वह लाट का स्वच्छाचार स्वामी था। उसके आनन्द की सीमा न रही। सोमेश्वर काक के घर गया अन्य यह माधव के यहाँ भोजन करने के लिए जाने वाले थे। अतएव अपनी-अपनी पालकी की ओर बढ़े। आम्रभट की पालकी के आस-पास कथित चाटुकार और तथा अन्य जन नएदुर्गपाल को देखने की उत्सुकता से खड़े हुए थे। एक सैनिक ने धक्के मारकर इन सबको दूर खदेड़ा और आम्रभट अपनी पालकी में जा बैठा। कहारों के पालकी उठाने से पूर्व ही आस-पास की भीड़ को चीरता हुआ एक मोटा मनुष्य पालकी तक आया और झुक झुक कर अभिवादन करने लगा।

नए दुर्गपाल ने नेरा तोतला को पहचान लिया। उसे काक द्वारा दी गई चेतावनी का स्मरण हो आया। नेरा लहजे में बोल रहा था घ घ घणी घणी खम्मा अन्नदाता ! दु-दुर्गपाल म-महाराज की ज-ज जय। ब बापू को नमस्कार ? भाड के थड जसा उसका मोटा शरीर नीचे झुकते समय कुछ-कुछ आनन्द में झूमते हुए हाथी के बच्चे का स्मरण करवा रहा था। आस-पास खड़े हुए लोग देखकर हसने लगे।

आम्रभट को तुरन्त वही अपरिचित सुन्दरी याद आई। हमीर मृत्यु शया पर लेटा था और बीरा उतना बुद्धिमान नहीं था। नेरा के बिना उसे और कौन खोज सकेगा ?

आम्रभट ने काक की चेतावनी की चिन्ता नहीं की। वह नेरा को सामने देखकर मुस्करा दिया क्यों नेरा ?

घ घणी घणी खम्मा बापू ! आपकी कृपा से आनन्द है।

आम्रभट को लगा कि नेरा कुछ कहना चाहता है। उस अपरिचित का समाचार तो ...ो लाया है ?

मेरे साथ चल।

ब बापू की आज्ञा। चि चिरंजीव हो सौ सौ वर्ष तक। घ घणी घणी खम्मा अन्नदाता। कहता हुआ वह पालकी के एक ओर चलने लगा।

अभी पालकी थोडी दूर ही गई होगी कि नेरा ने आम्रभट के कान में कहा म महाराज ! प प "प पता मिल गया।

सच ? हर्षित होकर आंबड बोला। उसका हृदय उछल पडा। नेरा ने आंख-ही आंख में उसे सावधान रहने के लिए कहा। लम्बी है ?

'हाँ दू दूध जसा श्वेत रग ? वह बोला।

आंबड ने जोर से गर्दन हिलाई।

औ और म मन हर ल ऐसी जादू भ भरी आँखें।

नेरा अपनी वाक्पटुता की परीक्षा करने लगा।

मानभट को बुरा लगा किन्तु चुप रहा। उसकी प्रियतमा के विषय में इस नौकर का इस प्रकार बातें करना उसे खटका।

श्री और व बाएं हाथ में रुद्राक्ष का क कण है।

रोमांच से श्रींवड़ ने आँखें मूंद लीं और अपनी प्रियतमा को प्रतिमा मस्तिष्क के सामने लाया।

क क्यों ठी ठीक है न ?' नेरा ने विस्मित होकर पूछा।

'नहीं। अच्छा फिर ?'

मु भूल गया व बापू ! एक रुद्राक्ष और एक स्फटिक।'

श्रींवड़ पालकी में उछल पड़ा 'ठीक।

'त तो मिल गई।

कहाँ है ?

व बापू मैं ग-ग-गरीब मारा जाऊँगा। मुझ गरीब क॒ह न बापू—।

अधीर होकर श्रींवड़ ने कहा हरामखोर बोल !

अन्नदाता ! वह स सरस्वती के समान विद्वान है।

सचमुच ?

'ब बापू ! मैं तो अब त सक भ म भट भी नहीं बना।

तू भट बनना चाहता है न ?'

हाँ य बापू ! आपकी सेवा करते करते ही मरने की कामना है।

अच्छी बात है।

अन्नदाता व वचन दीजिए, मैं कहीं व बीच में ही न मारा जाऊँ।

बोल कायर ! घबराता क्यों है ?

'ब बापू ! मुझे भट बनाएंगे न ?

हाँ हाँ हाँ।

'तो कहता हूँ। कि किन्तु व बा ! ऐसी नहीं है जो हाथ लग सके।'

इससे मुझे क्या मतलब ?' आँवड़ ने कहा ।

तो आप जानें ! म महाराज ! वह तो भटराज की विवाहिता है।

'है ? किसकी क्या माधव की ?

'हाँ—हाँ दी म बापू ! उस दू दूसरे की ।'

आम्रभट का हृदय मानो रुक गया जो गया उसकी ?

नेरा ने ज़ोर से गर्दन हिलाई ।

आँवड़ मौन रह गया । उसकी स्थिति ठगे से व्यक्ति जैसी हो गई। उसके कानों में घमघम जैसी आवाज़ होने लगी।

अन्नदाताओं के अन्तर को पहचानने का नेरा ने विशेष अध्ययन किया था। वह मन ही-मन मुस्कराया। उसके बिना नए दुर्गपाल का काम चल ही नहीं सकता।

म महाराज ! ब बात ब बनने जैसी नहीं है। उसने धीरे से कहा।

नेरा ! कुछ भूल हुई है। मणिभद्र का रूप और रंग याद आते ही आम्रभट के हृदय में शंका उत्पन्न हुई।

स स्वयं चल कर द देख लीजिए।

आम्रभट को कुछ सूझ नहीं पड़ा। परन्तु नेरा के पास युक्ति थी।

'म महाराज ! ब आप अब दुर्गपाल हो गए हैं न। म भट राज के घर की कुशलता जानना आपका कर्तव्य है।

आम्रभट ने अनुग्रह भरी दृष्टि से नेरा की ओर देखा तू मुझसे संध्या को मिलना।

ज ज जैसी आज्ञा।

आँवड़ के मस्तिष्क में दो बातें बिजली की भाँति कौंध गईं। एक तो अपरिचित रमणी का पता मिलने का हर्ष—और दूसरी उसे सिंह के पंजे से छीनना होगा इस बात से उत्पन्न भय। भृगुकच्छ आने से पहले उसने नए नगर के स्त्री-पुरुषों के विषय में छान-बीन की नहीं थी जितना कुछ जानकारी थी वह उसके पिता उदा महेता द्वारा ही प्राप्त थी और वह भिल्ला भमरी के विषय में जानकारी देने के लिए हिल भी

सके ऐसा तो था नहीं मणिभद्र भी विशेष कुछ बता सकें एसी स्थिति में नहीं थे। इन्हीं कारणों से आँबड़ महेता ने मञ्जरी को एक सामान्य स्त्री समझ लिया था। अतएव नेरा की बात एसी अविश्वसनीय लग रही थी कि उस मानने को जी नहीं चाहा।

उस अपरिचित मोहिनी का वह ऐसा दास हो गया था कि इस अनिश्चित दशा से छुटकारा पाने के लिए वह छटपटा उठा। जसे ही माधव का घर आया वसे ही आम्रभट न माधव और तजपाल स कहा—यदि समय हो तो मैं एक औपचारिक कर्तव्य पूरा कर लू ।

क्या ? विनयपूर्ण प्रश्न हुआ।

क्षण-मात्र के लिए आँबड़ हिचकिचाया फिर बोला—वाग्भट चले गए अत मुझे तनिक उनके घर हो आना चाहिए। उनके घर वालों को प्रसन्नता होगी और मेरा भी दायित्व है।

'भोजन करके चले जायें तो कैसा रह ? माधव ने कहा।

'फिर तो सग्‍ जी भ यहाँ हेमचन्द्र सूरि आने वाल हैं। और बहुत सन्ध्या हो जाने पर जाना भला भी नहीं लगता।

तेजपाल सेठ अपनी कानी आँख से शिष्टाचार के इस समयक की ओर देखने लगे। फिर कुछ गम्भीर किन्तु विनोद भरी वाणी में उत्तर दिया बात सच है। वाक की स्त्री भी अपने आपको एकदम निराधार न समझेगी। तुम्हारे जसे भल पुरुष भी यदि परिपाटी का पालन न करेंग तो करेगा कौन ? निस्सन्देह जाओ।

आम्रभट वृद्ध की ओर देखने लगा। क्या यह रहस्य पा गया ? नगरसेठ के मुख पर से कुछ भी प्रकट नहीं हो रहा था।

अच्छी बात है। मैं यह आया। कहकर आम्रभट ने पालकी उठाने वालों को मुड़ने का आदेश देते हुए कहा—'जल्दी चलो—सामबा बृहस्पति के बाड़े में मेरे साथ किसी को आने की आवश्यकता नहीं। वाक भट जी के यहाँ भीड़भाड़ सहित जाना अच्छा नहीं लगेगा। उसने अपने अश्वारोहियों को आज्ञा दी।

वह स्त्री हँसी । कैसा मधुर हास्य ! आम्रभट रोमांचित हो उठा ।

'काका ! इस बालक को आदि कवि वाल्मीकि के वचन सुनाओ तो !'

थोड़ी देर तक पुराणी गला खकारकर फिर अपनी कर्कश आवाज में बोला

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले ।
अयत्नादागतं राज्यं यतस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि ॥

(अर्थ है – धन्य है तुझे तुझ जैसा दूसरा संसार में नहीं देखा क्योंकि बिना माँगे मिले हुए राज्य को भी तू त्यागना चाहता है—रामायण)

'समझा ? उस स्त्री की आवाज आई। भरत ने राज्य त्याग दिया इसलिए कि उसने कभी राज्य आकांक्षा ही नहीं की थी और इसी लिए वह महान् हो गया । उन्हीं जैसे व्यक्ति धन्य हैं तेरे जैसे लोभी नहीं । वह हँसी पुन उस मधुर हास्य को सुनकर आम्रभट अधीर-सा हो गया ।

अच्छी बात है । हँसकर सोमेश्वर ने कहा हम लोभी हैं तो लोभी ही सही । कर भी क्या सकते हैं हमारे भाग्य में न भरत होना लिखा है न रामचन्द्र ।

कहाँ जाना ? उस स्त्री ने पूछा ।

आम्रभट का अधीर मन अब और अधिक न रुक सका उसने आगे बढ़कर द्वार पर लगा कड़ा खटखटा दिया । उसके मस्तिष्क में उस सुन्दरी के शब्द घूम रहे थे ।

इतने में उसकी दृष्टि उस साँडनी के हाँकने वाले पर पड़ी । वह साँडनी को खड़ा करने का प्रयत्न कर रहा था । सम्भव है वह धौंसा निदान यहाँ से ले जा रहा हो । जिस प्रकार आदि कवि को क्रौंच वध से काव्य की प्रेरणा हुई थी उसी प्रकार उसका श्लोक सुनकर आँबड़ महेता को एक प्रेरणा हुई यहाँ आने का कारण सूझ गया । बिना प्रयत्न किये हुए हाथ आया राज्य त्याग दे वही महान् होता है । वह

झुनझुनाया।

हो—हो—कौन आँवड़ भाई ! तुम किधर से ? कहकर मणिभद्र ने द्वार खोलकर उसका स्वागत किया।

कल जिस कमरे में काक से भेंट की थी उसी कमरे में आँवड़ बैठा। हिंडोले पर पुराणी काका और सोमेश्वर बैठे हुए थे। अन्दर के कमरे की देहली पर भाजी काटती हुई वह सुन्दरी बैठी हुई थी।

आम्रभट ठगा-सा देखने लगा। वही मुख वही आँखें वही भंगिमा और वही रेखाएं ! सम्पूर्ण प्रकोष्ठ में अनन्त यौवन का अधिकारी देवों के नृत्य में विभोर स्वर्गलोक का-सा उल्लासजनक मादक वातावरण था। दो विशाल तेजस्वी नयन उस पर टिके हुए थे। मजरी का सगभरभर-सा श्वेत भाल पर दुविधा से बल पड़ गए।

दो दिन से जिसके लिए प्रतिक्षण प्राण व्याकुल थे उसी रमणी को यहाँ देखकर उसे रोमांच हो आया। वह अपने आप पर वश न रख सका। और आगे भी न बढ़ सका। बस अपनी सुध-बुध खो बैठा।

खाट का युवक सोमेश्वर रूपवान योद्धा था। उसकी दृष्टि में काक शंकर और मजरी पार्वती थी। इन दोनों के बीच उसकी भक्ति उसका हृदय और उसकी चाकरी बटी हुई थी। शंकर की अनुपस्थिति में अरक्षित पार्वती का अपमान करने के लिए आने वाले की ओर जिस प्रकार नन्दी देखता है उसी प्रकार वह आँवड़ की ओर देखने लगा। वह काक का शिष्य था, गुरु की कृपा से वह समय और रुचि परख सकता था। उसकी मजरी के भाल पर पड़ी सिकुड़न देखी। वह हिंडोले पर से उठा द्वार तक आया और आँवड़ और मजरी के मध्य में खड़ा होकर बोला—

कहिए भटजी ! इस समय कैसे कष्ट किया ?

डूबता हुआ तारा जैसे प्रबलता से चमक उठता है वैसे ही आँवड़ में साहस जगा।

भाई सोमेश्वर ! मुझे देवी से कुछ बातें करनी हैं। वह देहली के

२३

आंबड़ ने अनुभव किया कि वह महान् पुरुष है, लाट का सत्ताधीश है सब लोग उसकी आज्ञा के अधीन हैं। मंजरी जसी मोहक स्त्री के लिए उत्पन्न मोह का उत्साह उसकी रोम रोम में समा रहा था और आज प्रथम प्रयास में ही विजय पाई थी। उसके प्राण मदोन्मत्त थे। प्रथम बार ही उसे अपनी शक्ति में पूरा-पूरा विश्वास हुआ।

बिल्कुल ही कच्चा वह नहीं था। माधव और तेजपाल को सारी योजना बता देना उस जैसा नहीं। किन्तु आनन्द उसके मुख पर से टपका पड़ता था। तेजपाल और माधव ने उसे नई सत्ता के मद का स्वाभाविक परिणाम समझा।

माधव के यहाँ भोजन समाप्त हुआ और तीनों व्यक्ति नगरसेठ के यहाँ आये।

वह तीनों सेठ के घर पहुँचे उनसे थोड़ी देर पहले ही हेमचन्द्र सूरि आये थे। रेवापाल घर में था। उसने इस युवक साधु का आगत-स्वागत किया उसे बरामदे में बिठाया। सूरि के साथ में आये हुए साधु उसके आस-पास बैठे।

रेवापाल इस नए साधु से पहले दिन मिल आया था और वह मुग्ध कच्छ किस लिये आया है यह रहस्य समझने का प्रयत्न भी उसने किया था। इस बालक जसे दिखाई देने वाले साधु का व्यक्तित्व विचित्र था। वाक्य वह इस प्रकार बोलता कि उसका उद्देश्य स्पष्ट समझ में न आवे फिर भी उसने अपनी बात कह दी है ऐसा लगता था और उसकी बात चीत में इस प्रकार अस्पष्ट विद्वता थी कि सुनने वाले को उसके ज्ञान की अगाधता का भ्रम हो जाता था। उसके बात करने का ढंग तथा अपरोक्ष रीति में सत्ता और आवेश दिखाई नहीं देते परन्तु सुनने वाले को यही लगता कि वह ठीक कह रहा है।

रेवापाल जी! तुम्हारी ख्याति सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई है।

तुमने अपने कुल की तथा अपने पिता की कीर्ति को दीप्त किया है। असंतोष है तो केवल इतना ही कि जितने तुम रणवीर हो उतने धर्मवीर नहीं।

'यथा शक्ति तो धर्म पालन करता हूँ। रेवापाल ने कहा। उसे साधुओं के साथ बातें करना रुचता नहीं था।

परन्तु शिव-मंदिर का विशेष पक्षपात है क्यों ? हेमचन्द्र सूरि ने पूछा। इतने शब्द कहकर उसने बड़ी खूबी से जैन और शैव सम्प्रदाय में परस्पर विरोध आन्दोलन का प्रचार किया। तुम्हारे जैसे योद्धा को विरागात्मक शुद्ध वृत्ति भाने दर लगती है और राजकीय धर्म की ओर विशेष झुकाव होता है पर तुम लाट के श्रावक-श्रेष्ठ हो तुम्हें तो पहले अपने धर्म-पालन और पोषण करना चाहिए।

रेवापाल इस बुद्धिमान युवक का उपदेश जरा अनिच्छा से सुनता रहा। उसने उत्तर नहीं दिया। सूरि ने बात आगे चलाई अच्छा तो शस्त्र किसलिए धारण करते हो ? तुम तो अहिंसा धर्म बड़ा सुगमता से ग्रहण कर सकोगे।

मुझे अहिंसा धर्म अच्छा ही नहीं लगता।

'अरे रे ! मिठास से मुस्कराकर साधु ने कहा तुम एक बार खंभात आओ निश्चय ही तुम्हारे विचार बदल जायेंगे।

मैंने तो लाट नहीं छोड़ने का व्रत ले रक्खा है।

यह क्यों ?

'लाट का सौभाग्य जो नष्ट हो गया है। उसे ऐसी दुर्दशा में कैसे छोड़ जाऊं ? हाँ यदि लाट की विजयी सेना खंभात आए तो मैं अवश्य ही आऊँगा ! निराशा भरी आवाज से रेवापाल ने कहा।

जयदेव महाराज के राज्य में यह असंतोष की भावना क्यों है मेरी समझ में यह बात नहीं आती।

आपकी समझ में न आना स्वाभाविक है। जरा कठोरता से रेवापाल ने कहा। दूसरे ही क्षण उसे भान हुआ कि सूरि बात नहीं कर रहा था

लगा कि यह बातें उसकी अपनी प्रतिष्ठा छीन लेने की थी। यह उसका अपमान था।

'और घौंसा निशान भी! सूरि की सूचना आगे बढ़ी। 'काक के यहाँ से मंगा ली।

आंबड के सिर पर जैसे वज्र गिरा। घौंसा निशान काक के यहाँ ही रहेंगे—मंजरी को वह एसा वचन दे आया था। क्या वह वहाँ से मगा ले? क्या मंजरी के घर को निस्तेज बना दे? क्या लाट की साम्राज्ञी जसी सुन्दरी को एक सामान्य गृहिणी वह अपनी आज्ञा से बना दे? आंबड के मस्तिष्क में उसके घर के कमरे का मादक वातावरण फल गया। उसके वातावरण में से दो बड़े-बड़े तेजस्वी जादू भरे नयन उसकी ओर दीनता से व्यंग से देख रहे थे। वह नयन उससे पूछ रहे थे—आंबड महेता तुम मुझे वचन देने के बाद मेरे घर की एसी प्रतिष्ठा करोग? लाट प्राप्त मेरा स्थान छीन लोगे? प्रणयी का उत्साही हृदय इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सका। जब तक वह लाट में है तब तक किसमें इतना साहस है कि उसकी—हाँ—उसकी मंजरी की प्रतिष्ठा की ओर उगली उठा सके।

आंबड! किस विचार में पड़े हो? सूरि की शांत आवाज आई। आंबड कल्पना-सृष्टि से लौटा पर उस सृष्टि में किया हुआ निश्चय साथ लाया।

अन्तिम उत्तर आपको क्या दूँ? तब में उसने पूछा।

काक के यहाँ से घौंसा निशान मगा लो। हेमचन्द्र की आवाज में जरा कठोरता थी।

क्यों? आंबड ने क्रोध से कांपती हुई आवाज में पूछा।

इसलिए कि महाराज की आज्ञा है।

महाराज ने मुझे तो ऐसी आज्ञा नहीं दी।

तेजपाल और माधव दोनों देखते रहे। वे दोनों हेमचन्द्र और आंबड को एक ही समझते थे।

'तो इसका अर्थ हुआ कि तुम धौला निशान काक के यहाँ ही रहने होने ?

'हाँ।'

तुम क्या कह रहे हो ? इससे तो प्रजा यही समझेगी कि काक ही सत्ताधीश है।

'तो इससे बिगड़ क्या जायेगा ? मांबड़ ने पूछा। 'महाराज का भ्रम है कि काक कृतघ्न है। वास्तविकता यह है कि उसी ने महाराज को लाट दिलाया और अब पाटन कृतघ्न होकर बिना किसी अपराध के उससे सत्ता क्यों छीन ले ?

इसलिए उग्र महेता ने ऐसा ही करने के लिए कहा है। असन्तुष्ट होकर हेमचन्द्र ने कहा।

'मृगकच्छ का दुर्गपाल मैं हूँ उग्र महेता नहीं। मांबड़ बोला।

हेमचन्द्र सूरि का मुँह फीका पड़ गया। तेजपाल काक का दुश्मन नहीं था इसलिए मांबड़ का यह अभिप्राय जानकर उसने भी कहा मांबड़ महेता की बात तो ठीक है ऐसा करने से लाट में प्रजा हाहाकार मचा देगा।

मांबड़ ! सूरि कह रहे थे परन्तु दूसरा विचार आते ही वह नगर सेठ तथा माधव से बोले तुम मुझे जरा अकेले बात करने दोगे ? मांबड़ नहीं जानता कि यह क्या कर रहा है।

मांबड़ को इसका ध्यान नहीं था। वह तो कल्पना में एक सुन्दरी के युगल नयनों से झरते हुए आभार को स्वीकार कर रहा था। सेठ और माधव दोनों उठकर जरा दूर चले गये।

पागल ! तू क्या कर रहा है इसकी कुछ खबर है ?

हेमसूरि ! दुर्गपाल मैं हूँ आप नहीं। आपको बीच में नहीं पड़ना चाहिए।

'परन्तु इसीलिए तो मैं खंभात से यहाँ आया हूँ।

मैंने तो नहीं बुलाया था। मांबड़ ने जवाब दिया पिता जी ने

भेजा है तो उन्हीं से पूछ भाभो।

'तू राजद्रोह कर रहा है!' कठोरता से सूरि ने कहा।

'मैं केवल एक पुराने राजसेवक का अपमान नहीं होने देना चाहता हूँ।

'तब तो उसके आदमी भी रहने देगा?

'जैसे चलता आया है उसी प्रकार चलाऊंगा। आंबड ने आश्वासन दिया।

तब मैं यहाँ से चला जाऊंगा। सूरि ने अन्तिम धमकी दी।

'जब इच्छा हो आप सभी जा सकते हैं।

ठीक! जरा तिरस्कार से हेम सूरि ने कहा। तुरन्त ही उसकी मधुर आवाज ने पलटा खाया। जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसने शान्त परन्तु ऊँची आवाज में कहा भाई! तुम जानो। तुम्हारे जी में आये सो करो मुझे जो ठीक लगा मैंने कह दिया।'

नगरसेठ और माधव यह सुनकर पास आये। आंबड को लगा कि उसकी महान् विजय हुई। उसने कहा महाराज' कल सवेरे हम मिलेंगे पर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में ही।

सूरि हँसा हाँ लोग जहाँ जाने के आदी हो वहीं मिलना। अच्छा अब मैं जाऊँगा। तेजपाल सेठ कुछ दिन रहकर मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

'ऐसा क्यों? एकाएक?

हाँ, जरा इधर आओगे? उठकर सूरि ने तेजपाल को बुलाया। सेठ गये।

इन यतियों से तो माथा न मारना ही अच्छा है। माधव नागर ने अपने-अपने मन की बात प्रगट की।

'और नहीं तो क्या? आंबड ने जवाब दिया। उसकी कल्पना में दो ललित एव मनोहर औंठ उसे धन्यवाद देते हुए दिखाई दिये।

'सबेरे आंबड़ किसी से मिला था? उधर सूरि ने पूछा।

हाँ काक की स्त्री मंजरी से वह मिल आया है। सेठ ने जवाब दिया।

कोई बोला नहीं। सूरि ने मन में निश्चय किया कि उस स्त्री से उसे भी मिलना चाहिये।

२४

आंबड़ महेता के बालक जैसे मुख पर सन्तोष छा रहा था। आखिर भृगुकच्छ आने में कोई बुराई नहीं थी वह वास्तव में दुर्गपाल बन ही गया और मंजरी जैसी अपूर्व सुन्दरी भी तो मिली थी। वह अकेला हँस पड़ा। विधि को करना हो तो क्या नहीं कर सकता?

कैसा उसका रूप है कैसा उसका मधुर स्वर! कैसी उसके सुन्दर नेत्रों की शोभा है और उससे वह बोला था उसके यहाँ बैठा था। वह जरा हँसी भी थी। प्रातःकाल वह उसके घर जा अपनी नवीन सत्ता की धाक जमा सकेगा।

स्वप्न समान मोहक वातावरण चारों ओर छा रहा हो ऐसा लगता था। रग रग में विचित्र झंकार हो रही थी सूर्य और आकाश के रंग में सृष्टि की रचना में एक अवर्णनीय आकर्षण दिखाई दे रहा था। एक परिपक्व शासक की रसिकता से वह आँखें मींचकर इन सब का अनुभव कर रहा था। एकाएक उसकी आँखों के आगे मंजरी का ऊंचा स्वरूपवान शरीर आ खड़ा हुआ। उसके अंग-अंग में उमड़ते मोह ने उसकी आँखों को आश्चर्य चकित कर दिया। वह अचेतन अवस्था में उसके विकसित नेत्रों की ओर देखता रहा।

आंबड़ की काल्पनिक दृष्टि के आगे जैसी प्रातःकाल देखी थी वैसी मंजरी दिखाई दी—गर्वभरी प्रतापी और विदुषी और उससे न

आई थी न सकुचाई थी और न आश्चर्य-चकित ही हुई थी।
उसका मोह मुग्ध हृदय शीतल हुआ। उदा महेता के पुत्र के पद
को इस सुन्दरी की दृष्टि में कोई गिनती नहीं थी, श्रावकश्रेष्ठ के
अहंकार का उसकी दृष्टि में कोई सम्मान नहीं था खंभात की युवतियों
के हृदय के हार की उसे कोई पर्वाह न थी। पाटण की सेना के महा
रथी उसकी सेवा करते थे। मृगुकच्छ के विद्वान् शिरोमणि उसकी पूजा
करते थे। उसके और इसके बीच एक अभेद्य अन्तरपट था। और इस
पारदर्शक पट में से एक मूख लड़का उस ओर रखी हुई एक सोह की
अद्भुत मूर्ति देखकर मुह में पानी भर लाये वही दशा उसकी उस
मय हो रही थी।

आंबड़ आत्म-सन्तोष खो बैठा, उसका स्वाभाविक दृप नष्ट हो
गया उसकी आशा के प्रासाद ध्वस्त हो गये। इस समय भी उसकी
एक मीठी नजर पर अनेकों युवतियां प्राण न्योछावर करने को तैयार हो
जातीं पर यह युवती तो वह स्वयं चरणों पर अपना सिर रख दे तो
भी पलक न हिलाये ऐसी थी? आंबड़ पसीने-पसीने हो गया।

थोड़ी देर में उसका अभिमान सतेज हुआ। प्रणयी की कला एक
वीर पुरुष नहीं जानता—उसे इस सूत्र का भान हुआ। रसमुग्ध
सुन्दरियां केवल महत्ता की ओर ही आकर्षित नहीं होतीं—इस सिद्धान्त
ने उसे आश्वासन दिया। हृदय रिझाने की कठिन कला तो उस जैसे
किसी अद्भुत कलाकार को ही आती है। इस समय उसकी वास्तविक
परीक्षा हुए बिना न रहेगी ऐसा उसे लगा।

ऐसे तर्क वितर्कों में आम्रभट ने पूरी दोपहरी बिता दी। मंजरी के
दर्शन फिर किस प्रकार हो सकें ऐसा उपाय वह सोचने लगा। इतने में
एक पारखक ने खबर दी कि सोमेश्वर भट्ट मिलने आये हैं। आलसी
आम्रभट उठ बैठा। उसकी मंजरी से सम्बन्धित भट जो आया था!
विधि की सानुकूलता! क्या मंजरी ने नये दुर्गपाल को बुलाने के लिए

आदमी भेजा है ? या उसने सोमेश्वर भट्ट द्वारा कोई संदेशा भेजा है ?

जहाँ वह बैठा था वहाँ सोमेश्वर आया और नमस्कार कर विनय से बैठ गया। आम्रभट ने नमस्कार स्वीकार की। थोड़ी देर दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे।

'भट जी कसे कष्ट किया ?' आम्रभट ने पूछा।

'महाराज !' शांत विनय से सोमेश्वर ने कहा आपको नए दुग के निरीक्षण के लिए ले जाने के लिए आया हूँ।

अच्छा। हँसकर आँबड़ ने कहा दुग की कुंजियां तुम्हारे पास हैं, ऐसा तो मैंने सुना था। अच्छा चलो। कहकर आँबड कपड़े पहनकर तैयार हो गया। मंजरी की सेवा में रहने वाले सोमेश्वर के साथ घूमना भी आँबड़ को सुखदायक लगा।

सोमेश्वर जी ! जब वह पालकी में बठकर गढ की ओर जाने लगे तो आँबड़ ने बात छड़ी, तुम भटराज काक के कुछ सगे सम्बन्धी हो ?

हाँ एक रिश्ता भी है—बहुत दूर का वह मेरे गुरु हैं।

'बहुत जबरदस्त आदमी है ? काक की बात करते हुए मंजरी के विषय पर कैसे आया जाय यह विचार करत हुए आम्रभट ने पूछा।

आप सब उनको सामान्य व्यवहार में जानते हैं, इसलिए उनकी वास्तविक महत्ता कभी भी आँक नहीं सकेंगे।

नहीं, एसा नहीं है।'

महेता जी ! उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन करने के लिए मेरी तरह आपको भी उनके चरणों की सेवा करनी चाहिये। उनकी युद्ध-कला और बुद्धि, उनके आचार विचार और सिद्धात तभी जाने जा सकते हैं। यह कलियुग है और भृगुकच्छ पराधीन है बस इसलिए काक भट दुगपाल के पद पर ही पड़े सड रहे हैं।

तब पाटण क्यों नहीं चले आते ?

सोमेश्वर ने एक तीक्ष्ण दृष्टि आँबड़ पर डालकर मुस्कराते हुए कहा, आपके राजा में मन्त्रियों में इतना साहस ही कहाँ है जो उन्हें

'खूब सुदृढ़ दिखाई देता है।

'महाराज! यह गढ़ चालीस वर्ष तक घेरा बरदाश्त कर सके ऐसा है।

'एँ!' चकित होकर माम्रभट ने पूछा।

'जी हाँ।

थोड़ी देर दोनों चुपचाप चढ़ाई चढ़ते रहे। मन्त में वे दरवाजे के पास जा पहुँचे।

यह दरवाजा इस समय बन्द क्यों है? सबेरे तो खुला था?

भटराज गये तो केवल उस मोर का दरवाजा ही खोलने के लिए ही कह गये हैं।

उन्हें भृगुकच्छ की मधिक चिन्ता है ऐसा लगता है। जरा असन्तोष से माँबड़ ने कहा।

उन्हें न हो तो मौर किसे हो? तिरस्कार भरी भाँखों से सोमेश्वर ने उत्तर दिया।

ठीक परन्तु दुर्गपाल तो मैं हूं। हँसकर माम्रभट ने कहा।

हाँ परन्तु माप नये हैं। शान्ति से सोमेश्वर ने कहा।

सोमेश्वर ने दरवाजे की खिड़की खोली मौर मन्दर से एक सैनिक दौड़ता हुमा माया।

देखो! यह तो मैं हूँ सोमेश्वर! सोमेश्वर ने कहा मौर यह हैं नये दुर्गपाल। पधारिये माम्रभट जी।

यह दोनों मन्दर घुसे। माम्रभट को सोमेश्वर प्राचीर पर ले गया।

इस नवीन भृगुकच्छ का प्राचीर देखकर माँबड़ को माश्चर्य हुमा। भृगुकच्छ नदी की घाटी पर स्थित विशाल तथा ऊंची पहाड़ी पर बनवाया गया था। मौर पहाड़ी पर बनवाया हुमा यह प्राचीर नदी के तल से इतना ऊंचा था कि यह दुर्ग कभी जीता जा सके इसकी कल्पना करना भी कठिन था।

'यह दुर्ग इतना बड़ा किस लिए बनवाया गया है ?

क्योंकि चारों ओर से इसे नदी ने घेर रक्खा है। सोमेश्वर ने कहा आवश्यकता पड़ने पर आधा गाँव अन्दर रखा जा सकता है। इसमें तीन हजार सैनिक आराम से रह सकते हैं।

'यदि कोई घेरा डाल दे तो इतने बड़े दुर्ग में लोग भूखा न मर जायें।

'नहीं यह इस प्रकार बनाया गया है कि तीन ओर से तो इसे भय ही नहीं। आवश्यकता पड़ने पर कुछ सैनिक इसको महीना तक रक्षा कर सकते हैं।

'वह क्या है ? एक घर की ओर संकेत कर आम्रभट ने पूछा।

'यह कठोर है।

अरे इतना बड़ा ?

'हाँ इसे सदा भरा हुआ ही रक्खा जाता है।

/ अब कौन घेरा डालने वाला था ? उलाहन जैसे स्वर में आंबड़ ने पूछा।

'सचेत न नर सदा सुखी। कहकर दोनो चारों ओर घूम कर देखने चले।

२५

आम्रभट और सोमेश्वर दुर्ग का निरीक्षण कर रहे थे तो देवा नामक चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी हवा में लहरा रही थी उसकी दृष्टि सम्मान में नीची झुकी हुई थी फिर भी उसके वृद्ध परन्तु सशक्त हाथ ने भाला अस्वाभाविक कठोरता से पकड़ रक्खा था। उसके झुर्रीदार माथे पर इस समय और भी अधिक झुरियाँ

पड़ी हुई थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह छिपी नजर से श्राम्रभट की ओर देख लेता था।

वह ध्रुवसेन का पुराना सैनिक था और काक के अनुचर रूप में पाटण के लश्कर में सम्मिलित हुआ था। ध्रुवसेन का पतन हुआ और लाट पर पाटण का शासन स्थापित हुआ परन्तु उसे इसकी कुछ चिन्ता नहीं थी। प्रतिदिन सन्ध्या को वह एकान्त झोपड़ी से निकल कर काक के चबूतरे पर जा बैठा और जब काक अपने घर आता तो पूछता— भाई कैसे हो ? प्रसन्न हो न ? तब देवा जवाब देता हाँ भाई !' और चुपचाप लौट जाता। सम्पूर्ण सृष्टि में केवल इतनी सी बात में ही उसे रस था।

उसके एकाकी जीवन को संसार से जोड़ने वाली डोरी एकमात्र काक था। और इस डोरी को पकड़कर वह भवसागर पार करने के लिए भी प्रस्तुत था उसके एकसदमी मस्तिष्क में काक ने एसा स्थान बना लिया था कि उसकी परिस्थिति में परिवर्तन उसे सहन नहीं था। काक दुर्गपाल हुआ विवाह किया भटराज हुआ—यह उसे जरा भी अच्छा नहीं लगा। इस परिवर्तन से उसे ऐसा लगा कि काक उसका न रहकर दूसरे का होता जा रहा था।

काक ने उसको गढ़ के कोठार का नायक नियुक्त किया पर उसको यह अच्छा नहीं लगा फिर भी वह अपने भाई की आज्ञा की उपेक्षा न कर सका।

कल जब वह शिष्टाचार के अनुसार साम्बा बृहस्पति के बाड़े में गया था और काक से मिला था।

देवा ! मैं बदली जा रहा हूं।

देवा ने ऊपर देखा। आँखों में व्याकुलता थी।

'मैं भी चलू भाई ?

काक स्नेह भरी हंसी हंसा, 'अरे नहीं देवा भाई ! फिर यहाँ कौन रहेगा ?

'जी।'

'मजरी को देखते रहना।'

'जी। कहकर देवा वहीं बठ गया। उसके वृद्ध हृदय की समझ में नहीं धाए ऐसी वेदना का मनुभव उसने किया। काक कुछ क्षण उसकी भोर देखता रहा उसके हृदय की व्यथा भी उसने समझी।

'देवा! मैं शीघ्र ही लौट भाऊँगा। तू गढ़ की रक्षा करना।

जी। कहकर देवा देखता रहा। उसकी भांखों में भांसू छलछला उठे। उसे लगा जसे कोई माँ का इकलौता बटा छीने लिये जा रहा हो।

माई मैं जा रहा हूँ।

हाँ जाओ पर जरा सतक रहना।'

देवा चुपचाप बठा रहा भौर घर में जाते हुए काक की भोर देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने नि श्वास छोड़ी भौर सिर हिलाता हुआ वह गढ़ में लौट भाया। तब से उसका सिर झुका हुमा है भौर उसका बोलना भी बन्द हो गया। उसे भ्रम हुमा है कि उसका 'माई' भव फिर नहीं मिलेगा।

इस समय मभे दुगपाल को देखकर उसकी भांखों में विष उतर भाया। माई के भतिरिक्त किसी दूसरे को दुगपाल होते वह नहीं देख सकता।

चुपचाप वह चल रहा है। कोठार के भागे भाकर भासभट भौर सोमश्वर नदी की ओर देखने लगे। देवा चपचाप सोमश्वर के पास गया।

'सोमश्वर! देवा ने पूछा, तुम्हें तो देर लगेगी?

सोमश्वर हसकर उसकी ओर मुड़ा। काक के सभी साथी देवा के प्रति प्रीति रखते थे। भाइ! माई के घर जाना है न?

हाँ समय तो हो गया।

परन्तु भाज तो तेरा 'माई' है नहीं।

इससे क्या?'

'जाभो तब। सोमश्वर ने कहा।

'सोमेश्वर ! कोठार देखना हो तो देख लो।'

'आप कोठार देखना चाहते हैं ? सोमेश्वर ने आंबड से पूछा। आंबड को इस नायक की अशिष्टता तथा सोमेश्वर के साथ बातचीत करने का ढंग पसन्द नहीं आया।

यह कौन है ? आंबड ने तिरस्कार से पूछा।

यह भटराज का विश्वासपात्र नायक है और यहाँ के कोठार का रक्षक है।

'इस तरह कहाँ जाने के लिए उतावला हो रहा है यह ? जरा रोब में नये दुर्गपाल पूछा।

देवा की नीची झुकी हुई आंख जरा कठोर हो गई।

यह भटराज के घर जाना चाहता। अपना दैनिक क्रम निभाने।

तुम्हारे आदमी बड़े मुँह लगे हैं जी ! आम्रभट ने कहा। देवा ने ऊपर देखा।

महाराज ! देवा सनिक मात्र नहीं है घर के आदमी जसा है। जा देवा ! सोमेश्वर ने कहा।

देवा बिना कुछ कहे चला गया।

प्रत्येक सनिक यदि घर का आदमी होने लगगा तो इस गाँव का क्या होगा ?

भटजी ! नम्रता पूर्वक सोमेश्वर ने कहा इसके जसा विश्वासपात्र दूसरा नहीं। इसका अपमान करने से लाभ नहीं है ?

'लगता है यहाँ दुर्गपाल के मान के अतिरिक्त सम्पूर्ण गाँव का मान भस्म हो चुका है।

देखिए म आज पन्द्रह वष स प्रतिदिन यह भटराज के यहाँ जाता है। वह जायगा, थोड़ी देर तक चबूतरे पर बठेगा और लौट आयेगा। परन्तु गए बिना रह नहीं सकता।

'मुझे एसे नौकर अच्छ नहीं लगते।

'ऐसे नौकर आपको मिलेंगे भी नहीं।' तनिक मुस्करा कर सोमेश्वर ने कहा। वह आगे बढ़े।

देवा नायक चुपचाप गढ़ से उतर कर पुराने नगर में होकर साम्बा बृहस्पति के बाड़े में आया और काक के चबूतरे पर इस तरह मौन होकर बैठ गया मानो किसी के आने की बाट जोह रहा हो। अंधेरा होने लगा। उसने ऊपर देखा और यह सोचकर कि काक की बाट जोहना व्यर्थ है वहाँ से उठकर चला।

'कौन है?' तभी द्वार खोलते हुए मणिभद्र ने पूछा।

'मैं देवा नायक।'

'क्या बात है?'

'कुछ नहीं यों ही।'

'कौन नायक?' अन्दर से मंजरी की आवाज आई। वह तुरन्त बाहर आई। 'आओ देवा! बाहर क्यों बैठ गए?'

'कुछ नहीं यों ही।' कहकर उसने निःश्वास ली।

'देवा! तेरे भाई थोड़े दिन में आ जाएंगे।'

वृद्ध ने गर्दन हिलाई 'नहीं देवी! मैं अब उनसे भेंट नहीं कर सकूंगा।'

'क्यों?' फीकी हंसी हंसकर मंजरी ने कहा।

'कल मेरी झोंपड़ी पर उन्हें आना है।'

'अरे तो इससे क्या होता है?' मंजरी ने साहस से कहा। 'तेरे भाई तो बस आए ही समझ।'

'भाई तो आएंगे किन्तु मुझ से भेंट न होगी। देवी? 'चौलाभाई' को दिखाओगी?'

इस वृद्ध की ऐसा एसा स्नेह देखकर मंजरी की आँखों में पानी आ गया 'आ अन्दर आ।'

देवा अन्दर गया और चौलादि को देखकर पुनः बाहर आया। जिस समय वह धीमी गति और भारी हृदय से गढ़ की ओर मुड़ा उस

'एक वर्ष तक चल सके इतना अनाज तो गढ़ में है।'

'आपने कहाँ से जाना ?

जान ही लिया कहीं से। मुझे पट्टणियों को निराश करने का एक ही मार्ग है।

कौन सा ?

यहाँ से अनाज हटा देना होगा।

कहाँ ? चकित होकर देवा ने पूछा।

'जहाँ इच्छा हो।

और भाई आ गए तो ? देवा ने पूछा।

देवा मैं गंगानाथ भगवान् की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मेरा अभिप्राय यही है कि यह पट्टणी सेना गढ़ में आनन्द से न रह सके। एक काम करेगा ? अभी अनाज निकाल दे। यदि तेरे भाई आ गए तो दूसरे दिन मैं कोठार फिर से भरवा दूंगा।

अगर किसी ने जान लिया तो ?

कौन जानेगा ?

'किन्तु निकाला किस प्रकार जायेगा ?

देख प्रतिदिन रात को नवग्धी के घाट के सामने मेरे आदमी नौका लेकर आयेंगे। तू ऊपर से बोरे गिरा देना।

'मेरे भाई डाटेंगे तो ?

पागल ! तेरे भाई आयेंगे ही नहीं। रेवापाल कठोरता से कहा। देव काँप उठा। उसे कल का उल्लू बोलता को सुनाई दिया था।

धोखा तो नहीं है ?

'सौगन्ध से ले।

तो अपनी सात पीढ़ी की सौगन्ध सात पीढ़ी की सौगन्ध ?' देवा ने पूछा।

'हाँ। मेरी सात पीढ़ी की सौगन्ध।

देवा थोड़ी देर चुप रहा। उसने एकाएक ऊपर देखकर कहा, महा

राज ! कल रात को साथ भेजना । यदि मेरा ज्योतिष की बात ठीक हुई तो पैसे गिनाऊंगा ।' कहकर वह बन्दी से चला गया ।

देवपाल हँसा । 'नाट का भाग्य चमक रहा है' वह बोला, और अपने साथी को लेकर चला गया ।

२६

तेजपाल के उपाश्रय में हेमचन्द्र सूरि मौन धारण किये हुए थे । वह कुछ ही दूर पर रखे हुए अपने 'प्रोञ्छन' की ओर देख रहे थे । इस युवक सूरि को ध्यान करने के सिवाय इस प्रकार बैठने की आदत नहीं थी । आज की यह स्थिति उन्हें तनिक असाधारण लग रही थी ।

जिस आयु में और बालक झूले में झूलते हैं उस समय इन्होंने वीतराग होने की इच्छा प्रकट की थी जिस समय युवक जीवन में अंकुरित नवीन आह्लादों का अनुभव करने का उत्पात रहते हैं उस समय इन्होंने सूरिपद पाया था और साधु अभ्यास करना प्रारम्भ करते हैं उस समय यह शास्त्र-विशारद होने आये थे । प्रत्येक मनुष्य इनके अपूर्व चरित्र निःसीम ज्ञान और अगाध चतुरता को देखकर चकित हो जाता था । इतने थोड़े समय में ही जनविद्या और यश के व्योम में एक अद्भुत अलौकिक का आभास लोगों को होने लगा था ।

यौवन आगमन के पश्चात जीवन में प्रथम बार उन्हें सावधानी से आत्म-निरीक्षण करने की आवश्यकता पड़ी । उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क अन्य लोगों से निराले ही प्रकार का था । उन्हें कभी संयम रखने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता न पड़ी था, विकार क्या वस्तु है इसका अनुभव कभी किया नहीं था । उनकी यह निश्चल श्रद्धा थी कि वह आजन्म अविकारी है ।

अधिकांश जनों के मस्तिष्क कीचड़ भरे पोखर के समान होते हैं कई के नहीं नाम मात्र लहरियों से अलंकृत स्थिर बँधे हुए, जल से भरे तालाब जैसे होते हैं। कई एक प्रवाहयुक्त नदी के समान होते हैं। जिसमें उछलती लहरियां भी होती हैं और शांति सरलता भी। कुछ के मस्तिष्क समुद्र के समान होते हैं—शांत सरोवर की अगाधता उठती गिरती लहरों का आनन्द दुर्जय और उछलता हुआ उत्साह प्रलय जैसी चपल तरंगों का ताण्डवनृत्य।

इस युवक का मस्तिष्क इनमें से किसी प्रकार का नहीं था। उसमें आरसी की स्वच्छता शांति उदासीनता और सर्वग्राह्यता थी।

वीतराग या निर्द्वन्द्व होने औरों को कठिनाई होती है जितेन्द्रिय होने के लिए व्रतों की परम्परा का पालन करना पड़ता है किन्तु इस शांत स्थिर एवं भावनाविहीन हृदय को जितेन्द्रिय अथवा निर्विकार बनने के लिए प्रयत्न करना ही नहीं पड़ा। कारण कि इसमें विकार अनुभव करने की शक्ति थी। जिनशासन के स्तम्भ विकार ग्रहण करने की शक्तिहीनता को देखकर स्तब्ध रह जाते और पूर्व जन्म के सुसंस्कार और क्षयोपशमन का ही परिणाम समझकर स्पर्द्धा करना त्याग देते थ।

निर्मल आरसी-सा मस्तिष्क जिस ओर सूरि की इच्छा होती उसी दिशा में घूम जाता था और इच्छित विषय का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता था। इस प्रकार वह बिना प्रयत्न किए ही अपूर्व था इसका हेमचन्द्र को पूरा-पूरा भान था।

इस उम्र में प्रथम बार उसके मस्तिष्क में संशय उत्पन्न हुआ। क्या मस्तिष्क पर विकार की छाया पड़ी है? अन्य लोगों में तो ऐसा संशय उत्पन्न ही नहीं होता परन्तु यह अद्भुत नवयुवक इतना-सा *संशय होते ही उसके अनुसंधान में लग गया।*

कल उसने वर्षों पहले देखी एक स्त्री का मुख देखा एक मूर्ख द्वारा उसकी सोची हुई बाजी को उलटते देखा और यह बाजी यह मूर्ख उस स्त्री की सलाह से ही उलट रहा था ऐसी उसे आशंका हुई। उसने

कई प्रकार की स्त्रियाँ देखी थीं, कई मूर्खों को बाजी उलटते हुए देखा था, कई स्त्रियाँ बाजी उलटने में समर्थ होती हैं। इसका भी उसे अनुभव था। यह विकार तो नहीं ही था किन्तु विकार का संशय ही अशुभ होता है। विकार का संशय उत्पन्न हुआ है ऐसा भ्रम ही मस्तिष्क में क्योंकर हुआ ? अडिग नैयायिक की तीक्ष्णता से सूरि ने यह प्रश्न अपने आप से किया।

जिस समय उसने दीक्षा ली थी उस समय इस स्त्री को देखा था ऐसा कुछ-कुछ स्मरण था तत्पश्चात् इसे फाक ले गया और उससे ब्याह कर लिया यह भी उसकी जानकारी के बाहर नहीं था और इस विद्वान् और सजग स्त्री ने आंबड़ जसे को मात दी थी इसमें ऐसा कुछ नहीं था। जिससे उसके स्थिर चित्त को किंचित् मात्र भी अस्थिर होने का कारण मिले। तो यह संशय उत्पन्न हुआ कसे ? हठी बनकर हेमचन्द्र सूरि ने अपने निर्मल मस्तिष्क से प्रश्न किया।

महाराज ! प्रणाम। आम्रभट का सनिक उपहास करता-सा स्वर सुनाई पड़ा। उसने आकर प्रणाम किया।

कौन आंबड़ ! आओ धर्मलाभ। सूरि ने कहा।

आम्रभट और हेमचन्द्र बचपन के मित्र थे एक ही घर में बड़े हुए थे और दोनों उदा महेता के सर्वव्यापी खेल क खिलौने थे। फिर भी इस प्रतापी बालसूरि को सर्वोपरि बनाने के उदा महेता के प्रयत्न के कारण खभात में हेमचन्द्र सूरि ने ऐसा आडम्बर रच रखा था मानो वह कोई तीर्थंकर हो। इसलिए साधारणतया आम्रभट को उसे इस प्रकार सम्बोधित करने का साहस नहीं होता। परन्तु कहावत प्रसिद्ध है कि कोंचे हुए नाग से कोंचा हुआ अणमी बुरा होता है। उसके सम्मान को धक्का पहुँचाया होता तो आंबड़ सहन कर लेता किन्तु अब सूरि ने उसकी हृदयेश्वरी के मान को ही तोड़ने का काम आरम्भ किया तो उससे कसे सहन हो सकता था ?

आम्रभट के मस्तिष्क में एक बहुत ही विनोद भरा योजना आई।

उठा। इस तीव्र बुद्धि वाले युवक ने अपने मस्तिष्क से हिसाब मांगा।

आरम्भ उस विचार आया कि नहीं' जाना चाहिये। हेमचन्द्र ने आँखें मीच लीं। क्या सचमुच विकार आ गया है? अथवा इस डर से कि कहीं विकार बढ़ न जाय इस स्त्री को न देखने की यह उचित प्रेरणा हो रही है? क्या उसे भी और साधुओं के समान साधारण श्रावकों के समान एसे प्रसगों में मनोनिग्रह करने की आवश्यकता पड़ेगी? क्या वह ऐसी अधोगति को पहुँच गया है? जिस इन्द्रियों के जीतने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ेगी जो पूर्व जन्म के प्रताप से अपने को वीत राग मानता था उसे आज इन्द्रियां जीतने का प्रयत्न करना पड़ेगा? नहीं—उसके अन्तर ने उत्तर दिया। सशय करने के लिए कोई कारण ही नहीं था। उसने स्थिर होकर आम्रभट की ओर देखा।

'आंबड़! मुझे कल से एक व्रत करना पड़ेगा। तेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है।

आम्रभट हँस पड़ा' आप तनिक भी चिन्ता न कीजिए। आप आयेंगे न?

हां! शांति से हेमचन्द्र बोला मैं सोचूंगा।

अच्छी बात है। आप दोनों विद्वान हैं अतएव मेरा विश्वास है कि आपको भी लाभ होगा। आखिरी दाव फक कर आंबड़ उठा और प्रणाम कर विदा हुआ।

'धर्मलाभ। सूरि ने कहा और फिर आत्मनिरीक्षण में रत हो गया।

२७

आम्रभट के यहाँ समात के सुविख्यात सूरि 'गोचरी' के लिए आ रहे हैं यह सुनकर लोग कुछ चकित हुए।

जिस समय हेमचन्द्र सूरि अपने छः शिष्यों सहित साम्बा बहस्पति के बाड़ में आए उस समय उनके साथ आम्रभट भी था। सोमेश्वर मणिभद्र और पुराणी काका साधुओं का अभिवादन करने के लिए आये और स्वागत करके उन्हें अन्दर ले गए।

आवश्यकता से अधिक हेमचन्द्र नहीं बोलते थे। उनका सिर तनिक झुका हुआ था। वह अपने क्षीण और भावनाविहीन मस्तिष्क को कठोरता से अपनी अविकारी स्वस्थता की रक्षा करने का आदेश दे रहे थे। उनके लिए उनके जीवन की परम कसौटी आ रही थी। अब तक निर्विकार होने को वह बहुत तुच्छ मानते थे क्योंकि स्वयं अविकारी होकर अविकारीपन को श्रेष्ठ मानते थे। विकार को निर्मूल करने के लिए किसी तप की आवश्यकता पड़े यह उनके लिए निर्बलता का चिन्ह था। वासना जीतने के स्थान पर एक ऐसी स्थिति प्राप्त करना उसके जीवन का महान् लक्ष्य था जहाँ पहुँचकर वासना का अनुभव ही न हो सके। और ऐसी स्थिति प्राप्त करने में उन्हें अब तक कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी।

जिनशासन की रक्षा करना और उसके उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करना उसके अहिंसा-मन्त्र का प्रचार करना और उसके लिए किसी न-किसी प्रकार से राज्यसत्ता हस्तगत करना यही उनका परम ध्येय हो था। जीवन के साथ उनका संसर्ग मात्र इस आकांक्षा को सिद्ध करने के प्रयासों तक ही सीमित था। मानव हृदय के उत्साह आनन्द या व्यथा की ओर अनुकम्पा या स्नेह उनकी दृष्टि नहीं देखती थी। उनके विचार में यह सब तुच्छ जन्तुओं की विकारी लीला थी, उनकी ओर वह किसी महामोह की ठगी पीड़ाओं का हनन करने वाले शस्त्रोपचारी वद्य के समान देखते थे।

पधारिए, महाराज! मंजरी का सुसंस्कृत स्वर सुनाई पड़ा विराजिए।

नीची दृष्टि करके खड़े हुए सूरि ने ऊपर देखने से पहले भौंरे से

रजोहरण से धूल बुहारकर 'धमलाभ' का उच्चारण किया। जब उन्होंने ऊपर देखा तो द्वार में श्वेत वस्त्र में अप्सरा के समान कांतिवान् लम्बी और चित्ताकर्षक सुन्दरी खड़ी हुई दिखाई दी। उसके मधुर होठों पर स्वागत की मुस्कराहट थी, तेजस्वी आँखों में स्नेही हृदय के उल्लास का प्रतिबिम्ब था। सूरि का जैसा मस्तिष्क था वैसी ही उनकी निरीक्षण शक्ति भी थी। अलंकार शास्त्र और काव्य से याद किया शब्द-समुच्चय धीरे धीरे खुलने लगा। मदालसा, चन्दनैना' शरीरयष्टि 'जघन गौरव' इस सम्पूर्ण योजना में शब्द और वस्तु को रखने वाले का निष्पक्ष अधिकार था। उसमें था न सौंदर्य भक्त का उत्साह और न कवि की भावना। भक्ति के भार से सोमेश्वर की दृष्टि झुक गई मोह की अधीनता से आम्रभट की आँखें जैं फटसे गई। दूसरे साधुओं पर इस दर्शन की जो प्रतिक्रिया हुई उसे वह केवल मुह फाड़कर ही बता सके।

मंजरी ने वंदना की 'सूरिजी! आप और साधु मण्डल को मेरी वंदना।

मजरी वस्त्र सिकोड़कर पुराणी काका और मणिभद्र के मध्य में बैठ गई और गव भरी दृष्टि से दिग्दिगत में जिसकी ख्याति फली हुई थी उस बालसूरि की ओर निहारने लगी।

देवी! आंबड़ ने कहा सूरिजी हमारे समाज के माथे के मुकुट हैं।

मैंने इन्हें बहुत वष हुए तब देखा था।' मजरी ने मुस्कराते हुए कहा कहिए महाराज! याद है? आपने दीक्षा ली उससे पहले हम दोनों एक ही उपाश्रय में थे। आपने मुझे भी दीक्षा लेने के लिए कहा था, याद है? आप उस समय आठ वष के थे।

मुझे याद है। अविकत्थन भिक्षु के ढंग से हेमचन्द्र ने कहा।

ऐसा? यह तो मुझे कुछ मालूम नहीं। आंबड़ बोला।

आंबड़ को देखकर उदा महेता भी याद आई, और मजरी के मुख

पर रेखाएं खिचकर मिट गईं । उसने आंबड़ के सामने देखकर कहा, तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? सूरिजी के साथ वह मुझे भी दीक्षा देने वाले थे ।

फिर ?' आंबड़ के कानों में उड़ती बात आई अवश्य थी किन्तु मंजरी के मुंह से सुनने के लिए उसने पूछा ।

'फिर ? मंजरी नीचे देखकर हंस पड़ी । उसके हास्य की तरंगें कमरे में प्रसारित हो उठीं । सूरि के अविकारी कान को यह स्वच्छन्दता खटकी । उसके मस्तिष्क ने केवल इतनी-सी टीका की— इस हास्य को विद्युल्लेखा कहा जा सकता है ।

'फिर क्या ?' मंजरी ने बात आगे बढ़ाई, मैं भाग गई । महाराज! दीक्षा लेने के पश्चात् जिस शांति की खोज में आप थे क्या वह मिली ?'

मेरे मन में अशांति थी ही नहीं । हेमचन्द्र ने कहा । किन्तु जिनशासन का श्रेयस्कर पथ छोड़ देने के पश्चात् तुम अपना ब्राह्मणत्व तो रख सकी न ?

मंजरी के कानों को इन शब्दों में कर्कशता लगी । इस प्रश्न में उसे उलाहना सा लगा । उसने सावधान होकर ऊपर देखा ।

'मेरे ब्राह्मणत्व को अथवा आपकी दृष्टि में मेरी मिथ्यादृष्टि को— छूने की किसी में शक्ति थी ही नहीं ।

सूरि मुस्करा दिए, तुमने दीक्षा ली होती तो जिनशासन की आभूषणस्वरूप साध्वी बनतीं । मंजरी का सुडौल सिर गर्व से ऊंचा उठा । उसकी आंखों की चमक बढ़ गई । उसने आंखें तनिक खोलीं, उनमें चमक आने की दक्षता सभी देखने लगे ।

मैं भाग गई तो आपका सम्पूर्ण शासन भी जो मुझे नहीं दे सकता था वह मुझे मिला ।

क्या ? अनायास आंबड़ के मुंह से निकल गया ।

मंजरी यह प्रश्न सुनकर हंस पड़ी । उसके नयनों में दया और वाणी में मृदुलता आ गई तुम्हारे दुर्भाग्य ।

'काक मटराज।' सूरिजी इस प्रकार बोले मानो आम्रभट को उत्तर दे रहे हों। मंजरी ने इसमें छिपा हुआ कटाक्ष भी भांप लिया।

'हाँ। उसकी वाणी में दुर्जय गर्व की झंकार थी। उसकी सुन्दर ग्रीवा की नसें कुछ फूलकर उठ आई गुरु द्रोणाचार्य और कौटिल्य दोनों का दर्प भंग करे ऐसा मटराज! वह हँस दी। उस हँसी में विजय दुन्दुभी की प्रतिध्वनि थी।

हेमचन्द्र सूरि को लगा कि उसके जैसे साधु के सामने मंजरी आडम्बर दिखाये यह सर्वथा अनुचित है। उसे भास हुआ मानो उसे प्रशंसा करने के लिए ही बुलाया गया था।

भगवती! लगता है काव्य-पुराणों में बहुत रुचि है तुम्हारी! हँसकर सूरि ने कहा।

उसकी हँसी में पिता जैसा वात्सल्य था। यह देखकर मंजरी क्रोधित हो गई। आम्रभट के कथनानुसार हेमचन्द्र उससे भेंट करना चाहता था तो क्या उसका अपमान करने के लिए!

रुचि! सोमेश्वर को भी तनिक खटक गया था इसलिए वह बीच ही में बोला सूरि जी! लगता है आप देवी की शास्त्रज्ञता से परिचित नहीं हैं।

बस आंबड़ को सहारा मिल गया। मंजरी की प्रशंसा करके हेमचन्द्र को नीचा दिखाने का यही अवसर उसे उपयुक्त दिखाई दिया सोमेश्वर! हमारे सूरिजी अन्य शास्त्रज्ञों के समान नहीं हैं। यह हमारे गुजरात के अद्वितीय विद्वान् हैं। ऐसी चाहें तो शास्त्रार्थ कर लें।

मंजरी ने चौंककर ऊपर देखा। क्या इस विदेशी सूरि और उसके मित्र आंबड़ ने उसकी परीक्षा लेने उसकी विद्वता का उपहास उड़ाने के लिए यह प्रपंच रचा है? उसने कई सभाएं देखी थीं कई एक में विजय भी पाई थी जैसे जैसे उसका जीवन काक के जीवन में समाता गया त्यों-त्यों हर किसी पण्डित के साथ विवाद करने का उसने दृढ़ सकल्प कर लिया था। क्या उसके गौरव का अपमान करने के लिए

ही यह वापिस आये थे ? क्या उसके वीरपति के शत्रु उसको पत्नी की हँसी उड़ाकर उसका अपमान करने का प्रयत्न कर रहे थे ? उसे सदा महेता—आंबड का पिता हेमचन्द्र का सहायक और उसका और उसके पति का शत्रु—याद आ गया। काश्मीर के कवि-कुलश्च शिरोमणि की कन्या नवघण विजेता राजा की अर्द्धांगिनी का रक्त खौल उठा। उसके मोहक रक्तिम अधर कांपे और बन्द होकर कठोर हो गए। कामदेव के धनुष सी उसकी भवें तनिक निकट आईं उसकी नाक गव से तनिक तिरछी हो गई। वह हसी—इस प्रकार कि नरपति भी क्षुद्र लगने लगें—और बोली गुजराती विद्वान्! और रण के लिए तत्पर वीर की भाँति सुधि खोकर मानो पण्डितों की सभा में ही इस प्रकार गर्व वचन बोला—

या पाणिनीयमुपजीवति शास्त्रमाश्रम्
यः मम्मटोदितमलंकरणं प्रयुङ्क्ते।

(जो पाणिनी द्वारा रची हुई व्याकरण की शरण लेता है और जो मम्मट की बताई अलंकार-योजना अपनाता है उस गुजर भाषा के सेवक को मेरे साथ विवाद करने का अवकाश हो सकता है)।

तस्या नु गुर्जरगिर परिचारकस्य
कस्ते मया सह विवादकथावकाशः ॥

हेमचन्द्र में जितनी साधु की निर्लिप्तता थी उतनी ही चतुर व्यक्ति की दृष्टि भी थी। वह तुरन्त समझ गया कि कुछ भ्रम होने के कारण ही मंजरी ऐसे शब्द कह रही है। उसने एक दम आंबड़ की सामने देखा और उसके मुस्कराते हुए उसके मुख का हास्य जाना। इसी मोह पीड़ित ने यह सब किया है यह वह समझ गया। और मंजरी को देख उसके भावहीन मस्तिष्क में अपरिचित के समान प्रशंसा करने का विचार उठा। उसने नम्रता से हाथ जोड़े और अत्यन्त उदारपूर्ण मुखमुद्रा में सम्मान से उत्तर दिया—

मंजरी के नयनों में न्निव्य तेज देखा उसके स्फटिक भाल पर अगाध
ज्ञान की रेखाएं देखीं उसके सौंदय में से विशुद्ध ज्ञान की शांत रश्मियां
फूटती देखीं। सूरि की एकाग्रता व्यापक हुई। उसने मजरी की गोद में
वीणा पड़ी देखी। उसके चरणों के सामने मयूर बठा देखा। उत्साह
प्ररित करने के लिए उसके आगे बढ़ाए हुए हाथ में उसने कमल देखा।
रूप मजरी का ही रहा किन्तु उसने दशन किए सरस्वती के।

हेमचन्द्र ने साष्टांग दण्डवत् किया माता ! तुम्हारा वरदान
अवश्य फलीभूत होगा।

एक क्षण उसने दृष्टि ठहराई। उतने समय में सूरि ने योगबल से
निर्विकारता साध ली थी। उसने प्रणाम किया आँखें मीची और
खोली। सभी उसकी ओर देख रहे थे। भाग्य से कोई नम्रता का अथ
समझा हो। सूरि ने शांत स्वर में कहा—

काश्मीरान् गन्तुकामस्य शारदाराधनेच्छया।
यात्राभूत पुनश्वता मे वीक्ष्य त्वां शारदामहि॥

शारदा की आराधना करने की इच्छा से मैं काश्मीर जाना
चाहता था। किन्तु आप स्वय शारदा हैं। आपको यहाँ देखने के पश्चात
मेरी यात्रा का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

मंजरी की आँखें हस रही थीं। सूरि के अतर में जितना समय
है उतना उत्साह आया।

सूरिजी ! आप यहाँ कब तक ठहरेंगे ?

मैं कल जाऊंगा।

माँ ! कहता हुआ लुढ़कता फिसलता बौसरि अन्दर आया। वा
आकर मजरी के गले से लिपट गया। सभी उसकी ओर देखने लगे
मजरी की आँखों में स्नेह उमड आया।

'माता ! यह तुम्हारा पुत्र है ?

हाँ, महाराज !

हेमचन्द्र लड़के की ओर एकटक देखता रहा और फिर ग

मुख से कहा— माता ! इस पुत्र को माता के रूप में मैं पुन प्रणाम करता हूँ।

'क्यों ?'

'जिनशासन का संरक्षण इसी के प्रताप से होगा।

सभी चकित होकर सूरि की ओर देखने लगे। केवल हेमचन्द्र सूरि बालक की मुखमुद्रा को ध्यान से देखता रहा। उसकी वाणी में शांति थी।

'महाराज ! क्या कहते हैं ? अनायास ही मंजरी को कपकपी छूट गई।

हाँ ! मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

'तो महाराज ! एक बात पूछूं ? आतुरता से मंजरी बोली।

क्या ?

मेरे नटराज कब लौटेंगे ?

सूरि ने चकित होकर मंजरी की ओर निहार कर कहा— मेरी विद्या इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकती। माता ! अब हमारे जाने का समय हो गया।

'हाँ ठहरिए। भिक्षा दे दूं। मंजरी उठी। उसका हृदय खिन्नता से भर आया। समुद्र की यात्रा करते हुए पोत का वियोग दुसह हो उठा।

दूसरे दिन जब हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ से प्रस्थान किया उस समय उनके मुख पर सरस्वती से वरदान पाने का गर्व था।

बार कहने की प्रतीक्षा वह नहीं करता था। वह खलासियों को आदेश देने के लिए चला गया।

खेमा!' काक ने खेमा को बुलाया 'देख मैं सामन्त दामा और खलासी नौका से उतर जायेंगे। खेमा! मैं अपने प्राण और प्रतिष्ठा अब तेरे हाथों में सौंपता हूँ। तेरी चतुराई पर सम्पूर्ण लाट निर्भर है। देख तू मेरे वस्त्र पहन ले और अपने वस्त्र मुझे दे दे।

'जो आज्ञा।

फिर तू और कावा नाविक दोनों पोत लेकर पाटण की ओर जाना। पाटण के दीखते ही पोत डुबो देना। कावा मानो बह रहा हो इस प्रकार आकर यहाँ दामा से मिलेगा और तू तैरता हुआ पाटण के बन्दरगाह में जाना।'

'जी!

देख ध्यान रखना। मुझसे परिचित कोई मिले तो कहना कि पोत डूब गया और मेरा क्या हुआ मालूम नहीं। किन्तु जहाँ तक मेरा अनुमान है कोई नया आदमी ही आयेगा। नए पट्टणी योद्धाओं ने मुझे नहीं देखा है। तेरा और मेरा शरीर समान है अतः अगर कोई तुझे काक समझ ले तो ना मत करना।

खेमा तनिक चकित होकर देखने लगा।

सुन खेमा! हमारा एक-दूसरे से दस वर्ष पुराना सम्बन्ध है और तेरी चतुराई में मुझे विश्वास है। देख यदि वह तुझे काक समझ लें तो उनका भ्रम भंग मत करना। सम्भव है तुझ पर असहनीय दुःख टूट पड़े, वैसी दशा में एक बात याद रखना। यदि उदा महेता के आदमी तुझे कष्ट पहुँचायें तो कहना कि तुझे मामी सम्बन्धी बात करनी है। वह तुरन्त तुझे उसके पास ले जायेंगे। तू काक नहीं है यह उदा महेता देखते ही समझ जायगा। यदि महाराज के आदमी पकड़ें तो कहना मुंजाल महेता से योगमाया के बारे की बात कहनी है। समझा? आवश्यकता पड़ने पर दो में से कोई एक तुझे पहचान लेगा और तेरा

बाल बाँका भी नहीं होगा। मैं जीवित रहा तो पाँच-सात दिन में आ ही पहुँचूँगा।'

जी!

खेमा! तू सब बात जानता है इसलिए कुछ ऐसा करना कि इतने दिनों तक यह भ्रम बना रहे।

जी बहुत अच्छा।

और खेमा! काक की शांत वाणी तनिक काँप उठी मुझ कुछ हो जाय तो— काक ने गला साफ किया तू और सोमस्वर अपनी मामी और बच्चों को देखना।

छोड़ो बापू! आँखों से जल पोंछते हुए खमा बोला किसकी मजाल कि आपका बाल बाँका भी कर सके। अधिक हुआ तो इन पट्टणियों को भी उखाड़ फेंकूँगा।

काक मुस्करा दिया। बात इतनी सहज नहीं है।

बापू आप बुद्धिमानो को एसा ही लगता है। हम तो गुरन्त दान महाकल्याण में विश्वास करते हैं।

अच्छा कहकर काक ने खमा का आलिंगन किया।

पोत के किनारे के निकट पहुँचने पर काक दामा नायक सामन्त और सलाखी लकड़ी के पाट डाल कर पानी में कूद पड़े और किनारे की ओर चले गए। खमाभट और कावा ने धीरे धीरे पोत को पुनः नदी की बीच धार की ओर बढ़ाया।

२६

सूर्य का स्वच्छ प्रकाश बढ़ने लगा था। प्रकाश में सोमनाथ पाटण समुद्र से निकली रंभा के समान शोभित हो रहा था। सुन्दर वस्त्र के ...र के समान नगर-कोट समुद्र तक आता और जहाँ वह जलधि को

स्पर्श करता था वहाँ बन्दर में पड़ी नौकाओं की झालर मन्द-मन्द पवन में झूल उठती थी। इस घेरे के ऊपर अप्सरा की अमर देह के समान सोमनाथ का भव्य मन्दिर खड़ा था। मन्दिर का स्वर्ण कलश और उसके चारों ओर फहराती हुई ध्वजा ऐसी लग रही थी मानो उज्ज्वल दिव्य सुन्दर अपने मुख को ओढ़नी में छिपाने का निरर्थक प्रयत्न कर रही हो। प्रभास में आज जिस मन्दिर के भग्नावशेष दीख पड़ते हैं वही कभी पृथ्वी से प्रदक्षिणा करवाते मेरु के समान अपनी सम्पूर्ण छटा में स्थित था। आज भी उसकी प्रत्येक शिला की अपूर्व कारीगरी उसके स्तम्भों का गौरव और उसके गुम्बजों के अवशेष इन सबसे यह मन्दिर कैसा रहा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु इस कथा के काल में तो वह नया था और नवयौवन की मोहकता में अडिग खड़ा था।

महमूद गजनवी ने पाटण लूटकर और सोमनाथ के प्राचीन मन्दिर को तोड़कर यह मान लिया कि उसने गुजरात की शक्ति और समृद्धि को सदा के लिए लूट लिया है। किन्तु वह धर्म विनाशक विदेशी गुजरात से परिचित नहीं था। उसके पीठ फेरते ही शूरवीर भीम ने फिर पाटण ले लिया और वहाँ प्राचीन मन्दिर के जले हुए पत्थर पड़े थे वहाँ नए मन्दिर की रचना आरम्भ करा दी। देश-देश के कारीगरों ने वर्षों तक एकाग्र होकर साधना की। देश-देश के नरपतियों ने अतुल धन का उपहार दिया। और जिस मन्दिर का निर्माण शूरवीर भीम ने आरम्भ किया निर्माणादि में रुचि रखने वाले कर्णदेव ने उसे अलंकृत किया और तीन पीढ़ी पश्चात् उसी पर जयदेव ने अनमोल स्वर्ण-कलश चढ़ाकर महमूद गजनवी की विनाशक वृत्ति का उपहास किया।

यह मन्दिर नहीं वरन् पत्थर में तराशा हुआ एक महाकाव्य था और उसकी प्रेरणा-शक्ति उससे भी अधिक थी। चारों दिशाओं से आये हुए यात्री कलाम्न के समान गगनचुम्बी और अमरावती के समान अपूर्व आकार के इस सदन को देखकर ऐसा समझते मानो उन्हें सदेह

मुक्तिलाभ हो गया हो और जन्म जन्मान्तर के पाप मिट गए हों।

यह मन्दिर पृथ्वी पर खड़ी की हुई अनहिलवाड़ के प्रभाव की अमरमूर्ति की रक्षा करता था। यह ठीक है कि खंभात भड़ौंच और प्रभास गुजरात के इन तीन विशाल द्वारों में से प्रभास सबसे छोटा था। फिर भी विदेशी पोत यहाँ की पवित्रता और मन्दिर की भव्यता से आकर्षित होकर यहाँ लंगर डालना न चूकते थे। बन्दरगाह के निकट आते हुए यात्रियों की प्रशंसा भरी दृष्टि क्षितिज पर सोमनाथ भगवान के गगनभेदी गुम्बज पर पड़ती थी। जितनी उनकी भक्ति भावना बढ़ती थी उतना ही पाटण का मान बढ़ता था।

पाटण के नरेशों की दृष्टि में भी यह मन्दिर उनके प्रताप की आश्रित प्रतिष्ठा था। मूलराज सोलंकी की गम्भीर चतुराई ने प्रभास धाम को अनहिलवाड़ का पुण्यक्षेत्र बनाया। इसी से सोरठ में गुजरात का प्रभाव फला और सम्पूर्ण भारत के पुण्यधाम के रक्षक कहलाने का गौरव सोलंकियों को प्राप्त हुआ। भीम ने गुजरात के रुधिर से इस भूमि को सींचा इसकी पवित्रता को उज्ज्वलता प्रदान की और समग्र संसार पर विजय प्राप्त करने को व्याकुल जयसिंहदेव भी यही मानते थे कि इष्टदेव के वैभव में ही उनका वैभव निहित है।

शिवालय घण्टानाद से पहले ही घोड़ों की टाप से जाग उठा। तीन अश्वारोही अश्वों को दौड़ाते हुए मन्दिर के सामने आए। उनमें से आगे का अश्वारोही अश्व से धरती पर कूद पड़ा और पीछे देखे बिना ही तीव्र गति से मन्दिर में घुस गया।

आगन्तुक पट्टणी वणिक था। उसके वस्त्र और आभूषणों से लगता था कि वह बहुत सम्पन्न है और उसके मुख से लगता था कि वह बुद्धिशाली भी है। वह तीव्रगति से मन्दिर में गया। ध्यान दिए बिना ही घण्टा बजाया और महादेव की ओर देखे बिना ही नमस्कार किया। मन्दिर की एक खिड़की के निकट एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। नवागन्तुक ने उसे देखा और आवश्यकता के अनुकूल मान देकर उसकी ओर

गया। खिड़की के सामने खड़ा हुआ व्यक्ति खलासी जैसा लग रहा था।

नायक ! उस नवागन्तुक युवक ने कहा।

बापू !' उस व्यक्ति ने बड़े सम्मान से नमस्कार करते हुए कहा।

क्या हाल है ?

बापू ! खलासी अभी-अभी चारों ओर होकर आए हैं। ऐसा लगता है केवल एक ही पोत आ रहा है।

यहाँ से दिखाई देता है ? उस युवक ने पूछा।

वह है ? खलासी ने हाथ के संकेत से दिखाया।

कुछ क्षण मौन वातावरण रहा। क्षितिज पर एक बिन्दु आकार में निरन्तर बड़ा होता जा रहा था।

चल बाहर चलें। आगन्तुक ने कहा और बाहर निकल गया। खलासी पीछे-पीछे आया और दोनों मन्दिर की कोट पर चढ़कर खड़े हो गए।

आगन्तुक चौबीस-पच्चीस वर्ष का था फिर भी उसके मुख पर गांभीर्य की छाप थी। वह स्वाभाविक गर्व से चलता था और रह रह कर अधीरता से क्षितिज की ओर देखता थोड़ी देर में सूर्योदय हुआ और सूर्य का स्वर्णिम बिम्ब ऊपर उतर आया। दृश्य प्रतिदिन के समान होते हुए भी अपूर्व था। सुन्दर लगते हुए इस बिम्ब की ओर क्षण भर तक यह युवक देखता रहा। फिर धीरे-से मन्दिर के शिखर की ओर देखा और पोत पर मस्ती से उड़ती हुई ध्वजा की ओर प्रसन्न होकर देखने लगा। वह अपनी दृष्टि उधर ही जमाए था मानो उछलती तरंगों से कोई संदेशा सुना हो वह बड़बड़ाया।

तरंग भ्रूभंगा।

बापू ! उस खलासी ने इस कविताप्रेमी युवक की विचार-माला को क्रूरता से भंग कर दिया।

क्यों ?'

'वह गया ।' खलासी ने हाथ लम्बा करके आवाज दी।

'क्या ?'

'वह अलपोत चट्टान पर चढ़ गया है। देखिए डोल रहा है।'

'हाँ। अरे अब क्या होगा ?'

'टूटा अरेरे—वह डूबेगा।' खलासी ने टूटे हुए शब्दों में कहा।

'वह भड़ौंच से आ रहा था वही पोत है क्या ?' युवक ने पूछा।

'हाँ बापू !'

हाय हाय ! उस युवक का कपाल सकुचित हो गया 'नायक ? इसमें के सभी व्यक्तियों की रक्षा करनी होगी।'

'अब तो जो भोलानाथ करे वही ठीक।'

'अरे भोलानाथ तो करेगा ही।' अधीरता से पग पटककर युवक बोला।

'तू जल्दी दूसरे खलासी लेकर पहुँच और उसमें जितने योद्धा हों उन्हें किसी-न-किसी प्रकार मेरे पास ला। देखता क्या है ?' युवक ने क्रोधित होकर कहा 'जा एकदम और बन्दरगाह पर आज्ञा दे दे—कोई भी तरकर आए तो उसे पकड़कर मेरे पास लाया जाय।'

'और न आए तो ?'

'तुम लोगों के पास बांधने के लिए रस्सियां हैं या नहीं ?' कटाक्ष से युवक ने कहा, 'जा शीघ्र जा।'

दूसरे ही क्षण वह खलासी अन्दर की ओर भागा अन्य खलासियों को एकत्रित करके नौकाएं खोलने में लग गया। वह युवक थोड़ी देर तक नायक की गति विधि देखता रहा फिर डूबते हुए पोत की ओर देखा। अन्त में हतोत्साह होकर धीमी गति से वह मन्दिर की ओर मुड़ा। उसके मुख पर निराशा की छाप स्पष्ट प्रकट हो रही थी।

थोड़ी दूर जाकर पुनः लौटा और मन्दिर में प्रवेश किया। उसने घण्टा बजाया और सभामण्डप तक जाकर साष्टांग प्रणाम किया। 'भोलानाथ ! अवज्ञा की हो तो क्षमा करना।' उसने गद्‌गद् कण्ठ से

प्रार्थना की।

वह उठा मन्दिर से बाहर गया, और अश्व पर बैठकर अपने अपने निवास-स्थान की ओर मुड़ गया। उसकी मुखमुद्रा स्पष्ट ही चिन्तायुक्त थी।

३०

युवक धीमे धीमे चलता हुआ अपने [स्थान पर गया और पगडी उतारकर इधर-उधर टहलने लगा। उसके मुख पर ग्लानि थी और वह जब-तब कान लगाकर आते-जाते लोगों की पग ध्वनि सुन रहा था।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे उसकी अधीरता बढ़ती गई। अन्त में उसने एक आदमी को बुलाकर बन्दरगाह की ओर भेजा।

समय बहुत व्यतीत हो गया था। युवक का मुख निस्तेज और निरुत्साह-सा होने लगा। होठों को दबाकर वह अधीरता को दबाने का यत्न कर रहा था। उसने एक निःश्वास ली। ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन की आशा नष्ट होती जा रही है।

इतने में बाहर घोड़े की टाप सुनाई दी। युवक एकदम आगे बढ़ आया। अश्व पर से नायक और एक अधेड़ वय के योद्धा को उतरते हुए देखकर उसके मुख पर मुस्कराहट की हल्की सी रेखा छा गई। नायक के साथ आने वाले योद्धा का मुख उसे तेजस्वी लगा। आँखों में चमक भी थी—किन्तु अस्पष्ट सी—क्योंकि वह थका हुआ था। उसके चलने की छटा में गर्व था। नाक तीखी कही जा सकती है स्नायु भी दृढ़ थे। युवक को सन्तोष हुआ। समरथ देखा! मैं जीता। तू हारी अब तू मेरी—

किन्तु युवक का यह असम्बद्ध प्रलाप अधिक न चल पाया। वह

योद्धा भीगे वस्त्रों सहित आया।

'कौन भटजी ?' उस युवक ने आगे बढ़कर पूछा।

उस योद्धा ने कपाल को आकुंचित कर सिर ऊपर उठाया। 'मुझे यह लोग यहाँ क्यों लाये हैं ?' तनिक गर्व से उसने पूछा।

'क्षमा करो भटराज ! युवक ने कहा जयसिंहदेव महाराज ने आपके स्वागत के लिए मुझे भेजा है। आपके पोत को विकट परिस्थिति में देखकर मैंने ही इस नायक को भेजा था।

तुम कौन हो ? गर्व से उस योद्धा ने पूछा।

'आपने मुझे नहीं पहचाना ?

कभी देखा हो ऐसा स्मरण नहीं आता।

मैं उदा महता का वाहड़ हूँ। उस युवक ने कहा।

'उदा महेता का पुत्र वाग्भट भटराज और पण्डित।' धीरे-से वह योद्धा बोला वाग्भट को बोलने की इस आडम्बर भरी रीति के प्रति तिरस्कार हो आया।

'जी हाँ ? आप दूसरे वस्त्र धारण कर लीजिए। अब हम वथली चलेंगे।

'परन्तु मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊँगा।

'क्यों ?

मेरी इच्छा।

वाग्भट की आशा भंग हो गई। उसने काकभट की इतनी प्रशंसा सुनी थी कि उसने उसके विषय में वास्तविक काकभट से भी हजार गुणा अधिक ऊँची कल्पना कर रखी थी।

चलना तो आपको होगा ही।'

'क्यों ?

'महाराज की आज्ञा जो है।

और यदि न चलूँ तो ?' तनिक विचित्र ढंग से हँसकर वह योद्धा बोला।

'आपको ले जाना मेरा कर्त्तव्य। यहाँ से वापसी आने का रास्ता नहीं है। इसलिए मुझे विशेष आज्ञा दी गई है।

तो ठीक है। काकभट को एकदम स्वीकार करते देखकर वह और आश्चर्य में पड़ गया।

अभी प्रस्थान कर दें ?' वाग्भट ने पूछा।

जब तुम कहो।

आप विश्राम कर लीजिए, तब चलेंगे। विनयी वाग्भट बोला। उसका मन वमलो जाने के लिए उत्साहित हो उठा।

३१

जब काक को पकड़कर अपने आपको भाग्यशाली मानता हुआ वाग्भट फूला न समा रहा था तब काक सरपट भागते हुए घोड़े पर जूनागढ़ की ओर बढ़ रहा था। लाठी जाकर उसने खलासियों और दामा को वहीं छोड़ दिया और स्वयं तुरन्त चोरवाड गया। थोड़ी ही देर में चोरवाड का मोतिया अहीर और काक दोनों ने जनागढ का मार्ग लिया। रात होते हुए भी वह जूनागढ़ वाली मुख्य सड़क से न जा सके। इस मुख्य सड़क की रक्षा पाटन की सेना करती थी अतः उधर होकर जाना विपत्तियों से भरा हुआ था। इसी कारण उन्हें लम्बा टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ने की आवश्यकता हुई।

सोरठ के निर्मल व्योम में चमकते हुए तारागणों के प्रकाश में वह मार्ग काट रहे थे। परन्तु सोरठ के हवा से बात करते हुए घोड़ों के लिए अंधकार या पथ की कठिनाइयाँ गौण थीं। योजन-पर-योजन पार होते चले जा रहे थे फिर भी मोतिया और काक अधीरता से निरन्तर एड़ का उपयोग करते ही चले आ रहे थे।

काठियावाड़ी घोड़े में जब साहस आता है तो उसके पख लग जाते हैं उसके पाव थकते नहीं उसकी श्वास भरती नहीं और उसको एड़ियों की आवश्यकता भी नहीं होती। वह प'गु न रहकर वेग की मूर्ति बन जाता है। उसका स्थूल देह समीर की सूक्ष्मता ग्रहण कर लेता है। इन वेगवती घोड़ियों को उसकी इच्छा शक्ति को तन्मयता से साधते देखकर काक को भी उत्साह हुआ। उपाकाल के समय जब उसने घोड़ियो को रोका उस समय क्षितिज पर गिरनार शोभित हो रहा था। पर्वतों से परिचित यात्री को गिरनार खिलौना मालूम होता है और वह शका होने लगती है कि इसे पर्वत क्यों कहा जाता है! किंतु चौरस भूमि में रहने वाले गुजराती के लिए तो गिरनार गिरिराज है।

छोटे जबुआ के बीच खड़े मनुष्य-वीर की भांति वह सोरठ की चौरस भूमि पर शोभित है और शताब्दियो से जनसमूह की भक्ति का आकर्षण केंद्र बना हुआ है यादव चक्रवर्ती माधात के पुत्र ने इसकी छाया में शांति प्राप्त की तथा याम्वपति कंसहारी कृष्ण ने कालयवन के भय से भागते हुए इसी की शरण ली थी। भवनो पर बुद्धधर्म का प्रसार करने के लिए उत्सुक देवप्रिय अशोक आर्यावर्त में हिन्दू सस्कृत स्थापित करने के लिए मातृकुलभूषण समुद्रगुप्त और विदेशी होते हुए भी आर्य-धर्म के गर्व से मस्त रुद्रदामन—इन तीनों ने गिरनार को अपनी सत्ता का सीमा दर्शक विजय-स्तम्भ माना था। चूड़ासमा की सत्ता के स्थापक ने भी इसकी अभेद्यता की सहायता से सोरठ का साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था इसी की प्रेरणा से प्रबल बनकर खेंगार पाटन की सब विजयी सत्ता को वर्षों से छका रहा था।

निर्वाण की खोज में लगे हुए बौद्ध भिक्षु की शांति और स्थिरता प्रकट करती हुई पञ्चरेखा सस्कार के विजय की निरन्तर साधना में रत और आर्य धर्म की धुरी को सीधी रखने वाले ब्राह्मणों की निडर निश्चयात्मकता की साक्षी देने वाले पदचिन्ह हिंसा के मोह में फंसी हुई मनुष्य जाति को अहिंसा धर्म की शिक्षा देने के लिए व्याकुल जैन

साधुओं की सहनशीलता की छाया से शोभित पदचिन्ह पवित्रता के सभी पदास्पद वहां पत्थर-पत्थर में दिखाई पड़ते हैं। तनिक अधिक ध्यान से देखने पर दो और रेखायें भी दिखाई पड़ेंगी।

एक नन्ही और सुघड़—नर केसरियों की विस्मृत होती हुई वीरता को सुकुमार हाथों से टिकाए रखने वाली सतियों में श्रेष्ठ राणक की और दूसरी विशाल और कठोर—जिसके शिशुहृदय में उपजी सद जीवन की पवित्रता भक्ति-योग की महत्ता और सत्य प्रेम की रसिकता त्रिवेणी-संगम के प्रताप से गुजरात की रसाल भूमि पुन रसमय हो गई थी उस कृष्ण-विह्वल नागर की!

किंतु इस सब पर विचार करने के लिए काक के पास न समय था और न शक्ति। उसके लिए गिरनार उसके मित्र खेंगार—केसरी की गुफा थी और इसीलिए था उसकी यात्रा का लक्ष्य।

सूर्योदय होने लगा। गिरनार के शिखरों पर भूरापन हटकर स्वर्ण जैसे तेज की चमक छा गई थी। निकट ही पर्वत के शृंगों से विश्वकर्मा ने मानो गढ़ बना लिया हो ऐसा जूनागढ़ भी दिखाई दिया।

मोतिया! काक ने कहा।

हां बापू!

हम जूनागढ़ कब तक पहुंचेंगे?

बापू! पहुंच तो अभी जाते किन्तु इधर पट्टणियों का प्रबंध कुछ विशेष है इसलिए शीघ्रता नहीं की जा सकती। सन्ध्या तक पहुंच जायंगे।

दोनों थोड़ी देर तक चलते रहे और फिर घोड़ियों को छोड़कर एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गए। किन्तु उनके भाग्य में अधिक विश्राम करना भी नहीं लिखा था।

बापू! उठो घोड़ी संभालो।

क्यों?'

वहां धूल उड़ती दिखाई दे रही है। कोई आया है।

काक ने देखा। कुछ दूर पर सचमुच धूल उड़ती दिखाई दी। वह लपक कर घोड़िया पर चढ़ गये और वेग से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से भागने लगे। दिनभर वे इसी प्रकार गाँवों और मुख्य सड़क से दूर चलते रहे। सन्ध्या होते-होते वह गिरनार आ ही पहुँचे।

बापू! अब निश्चिन्त हो जाइए। इस पथ पर अब कोई नहीं मिलेगा।

'क्यों?

'यह पथ केवल मैं ही जानता हूं।

काक ने चारों ओर देखा। मोतिया! अब मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दे।

'क्यों? चकित होकर अहीर ने पूछा।

मैं शत्रु पक्ष का आदमी हूं। मैं इस पथ से परिचित न होऊं तो अच्छा।

मोतिया ने गर्व से काक की ओर देखा और वस्त्र लेकर उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी।

काक ने नाम मात्र को लगाम पकड़ रक्खी थी। उसकी चतुर घोड़ी वेग से अहीर के घोड़ों के पीछे-पीछे चली जा रही थी। पथ में स्थान स्थान पर उतार और चढ़ाव आते कई बार घोड़ी एकदम खड़ी हो जाती थी। एक बार वह चमक भी गई।

काक को पट्टी से चारों ओर अंधकार ही प्रतीत होता था थोड़ी देर पश्चात मोतिया बोला।

'बापू उतरिय! गढ़ आ गया।

'ऊपर जाने से पहले पट्टी मत खोलना।

जसी बापू की इच्छा।

मोतिया थोड़ी दूर तक काक का हाथ पकड़ कर ले गया। वहाँ कोई खड़ा हुआ था। मोतिया ने उससे बात की और फिर काक का हाथ पकड़ कर पत्थर की एक सकरी पगडण्डी पर चढ़ने लगा। पग-पग पर

मोतिया काक को सावधान रहने की सूचना देता रहता था। कुछ देर पश्चात वह गढ़ पर आ गये। मोतिया ने पट्टी खोल दी।

चारों ओर अंधकार छा चुका था। कभी-कभी मशाल का क्षीण प्रकाश दिखाई देकर अदृष्ट सा हो जाता था। इस अंधकार में भी मोतिया काक को बहुत शीघ्रता से ले चला।

थोड़ी दूर चलकर महल के पिछले द्वार से उन्होंने अन्दर प्रवेश किया जहाँ मोतिया ने किसी मनुष्य के कान में कुछ कहा। वह तुरन्त ऊपर जाकर लौट आया और काक को ले गया। महल की छत के एक किनारे काक को खड़ा करके वह चला गया।

रात अंधेरी थी। काक तारा के क्षीण प्रकाश में भी चारों दिशाओं में भली प्रकार देख सकता था। थोड़ी दूर पर सैनिकों की हुंकार और वेदना की चीत्कार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। कोट की खाई से दूर अरु.. की हिनहिनाहट या कभी-कभी उत्साह भरी गर्जना से पट्टणी और सोरठीर सैनिकों के सहने के स्थान का ज्ञान करवा देते थे। चारों ओर के अंधकार में दीपक के प्रकाश के कारण विजय-सेना की छावनी वनस्थली स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ने वाली आग की लपटें या धुआं विदेशियों द्वारा किए हुए व्यवहार की साक्षी दे रहे थे। सबसे तटस्थ अंधकार में भी काला लगता हुआ गिरनार सभी पर अपना एक समान भयंकर प्रभाव डाल रहा था। इस सब से अलग दूर किसी गुहा में पड़े सिंह की गर्जना का गम्भीर नाद उस त्रासमय वातावरण को और भी त्रासन्यी बना रहा था। काक विचार-मग्न होकर देख रहा और मौन ही उसने जूनागढ़ के दुर्जय खेंगार की अडिग वीरता को अर्घ्य अर्पण किया।

पीछे से कोई दौड़ता हुआ आया। कौन काक? आगन्तुक का स्वर सुनाई पड़ा।

काक को स्वर परिचित लगा। आगन्तुक को वह देख सके उस पहले तो आगन्तुक ने उसे अपनी बाहुओं में भर लिया।

काक चमका किन्तु पहचानते ही बोला कौन रा?

३२

राणकदवी के स्थान पर रा' क्यों आये ? उसे किसने बुलाया है ? रा' क्या सोचेंगे ? इस प्रकार के अनेक विचार काक के मन में उठे। रा' के आलिंगन समाप्त कर लेने पर उसने उसे ध्यान स देखा। उसे देख कर उसके मस्तिष्क के आगे पन्द्रह वर्ष पहले का खेंगार खड़ा हो गया। उसके सबल और छटा भरे अंग अब भी जैसे-के-तैसे थे। सोमसुन्दरी के इस प्रणयी के सुन्दर अंगों पर इस समय कवच और पट्टियाँ थीं। उसके सिंह स भव्य मुख पर सुन्दर दाढ़ी शोभित हो रही थी और दो घावों की रेखायें इस भव्यता को अनुपम शोभा प्रदान कर रही थीं। उसकी चमकती हुई आँखों में निश्चल किन्तु अस्वाभाविक तेजस्विता दिखाई पड़ रही थी। आज भी उसका हास्य पहले जैसा ही मोहक था।

'काक आ गया तू। खेंगार ने भाव भरे स्वर में कहा।

महाराज! काक ने विशेष मान से कहा—भला आप बुलावें और मैं न आऊँ ?

धीरे। खेंगार ने कहा हाँ मैंने ही बुलाया था।

'परन्तु मुझे तो देवी का संदेशा मिला था।

नहीं, मैंने भेजा था।

किन्तु मणिभद्र तो कहता था कि वह देवी से मिला था।

'वह तनिक पागल है। मैंने दूसरी रानी के द्वारा कहलवाया था। किन्तु वह मगडी भ्रम में यह समझ बैठा कि वह राणक से मिला था।

ऐसा क्यों किया काक ने पूछा।

'वरना तू आता भी नहीं।

आपने कहलाया होता तो भी मैं आता और निश्चय ही आता।

क्यों पाटण की चाकरी छोड़ दी ? तनिक तिरस्कार से खेंगार ने पूछा।

'नहीं। अब तक तो चाकर हूँ। कल की बात भगवान सोमनाथ

जानें।

'क्यों ? फिर तेरे स्वामी क्रुद्ध हो गए हैं क्या ?' रेवा ने हँसकर पूछा। उसकी हँसी से पहले जैसा ही विनोद झलकता था।

बापू ! अपनी पीड़ा मैं स्वयं सम्भाल लूंगा। यह कहिए कि मुझे क्या बुलाया ?

खेंगार ने सावधानी से चारों ओर देखा और फिर धीमे से कहा—मुझे तेरी सहायता की आवश्यकता है काक।

मैं प्रस्तुत हूँ।

मुझे पाटण के साथ सन्धि करनी है।

स न्धि ! काक आश्चर्य चकित हो गया।

धीरे बोल। कोई सुन लेगा। काक आश्चय की इसमें नई बात क्या है भाई ? शांत और विनोद भरे स्वर में खेंगार ने कहा 'खेंगार ने जयसिंह देव को पन्द्रह वर्ष तक छकाया और अब भी जूनागढ़ के कँगूरे अखंड हैं। फिर भी सोरठ का रा' सन्धि की याचना क्यों करता है यही जानना चाहता है न ?

हाँ। काक ने कहा।

काक ! कोई रा कभी नतमस्तक नहीं हुआ और जूनागढ ने कभी विजेता का स्वागत नहीं किया। इसलिए सन्धि की बात करते हुए मेरे प्राण कांप रहे हैं। गत वर्ष मुझे मुंजाल ने सन्धि की सलाह भेजी थी तो मैंने सलाह लाने वाले को गधे पर बिठाकर घुमाया था।

तो अब क्या हो गया ?

खेंगार ने एक गहरी सांस ली— भाई मुझे मालूम नहीं था कि जयदेव स्वयं भी रण में भाग लेंगे।

काक आँखें फाड़कर रा की ओर देखने लगा। खेंगार जैसे अडिग वीर के हृदय में कायरता ?

तो उससे क्या ?

'उससे क्या ? काक ! मैं वीर राजपूत हूँ, और वीर राजपूत का

सामना करने से मैं कभी डरा नहीं। किन्तु तुम्हारा जयदेव न टेक का ही दृढ़ है और न राजपूत ही। खेंगार ने कटुता पूर्वक कहा।

'बापू ! मै नहीं समझ पाया।

'काक ! जयदेव युद्ध के लिए अवश्य निकला है किन्तु जूनागढ़ लेने नहीं। कटाक्ष भरे स्वर में खेंगार ने कहा।

'तो ?

वह पुनः रोणक का लेना चाहता है।

काक पीछे हटा 'क्या पागल हुए हो ?

नहीं उसकी दृष्टि तो वहां है। उसे राजपूत की टेक की क्या चिन्ता ? वह कोई मनुष्य है ? राक्षस और पिशाच के बल पर जो राजपूत बनता है वह कोई आदमी है ?

बाबरा भूत की बात कर रहे हो ?

'तुम्हारे महाराज की प्रत्येक विशेषता निराली है। बाबराभूत उनका सेवक है सो तो ठीक। किन्तु जब से वह बंधनी पाया है तब से स्वयं बाबराभूत हो गया है। गांवों में आग लगा दी जाती है चारों ओर लोग त्राहि त्राहि कर रहे हैं। बाप-दादा यवनों की कथा कहा करते थे। वैसी ही दशा हो रही है। मुझसे अपनी असहाय प्रजा की विपत्ति नहीं देखी जाती। इस से तो सन्धि करके नाक कटाना अधिक अच्छा है।

'महाराज ! आप सम्पूर्ण कुल के कलंक बन कर रह जायेंगे।

हाँ। किन्तु अपनी निःसहाय प्रजा और अपनी राणक की रक्षा तो कर लूंगा।

महाराज ! वैसे सन्धि करना मुझे तो अच्छा लगता है। लाट का विग्रह भी मैने ऐसे ही समाप्त किया था। किन्तु प्रश्न तो यह है कि जयदेव महाराज मानेंगे भी या नहीं। काक ने कहा।

'उससे भी बड़ी कठिनाई एक और है।

कौन सी ?

'राणक की।

राणक देवी की ? काक ने पूछा।

'हाँ, काक ! तुझे बुलाने का मुख्य हेतु इसी बात को समझाने का है भाई ! राणक स्त्री नहीं जगदम्बा का अवतार है। लोग मुझे यश देते हैं किन्तु जूनागढ़ यदि अब तक टिका रह सका है तो उसी के प्रताप से। उसी के उत्साह से हम जीवित हैं। उससे संधि की बात कौन कर सकता है ?'

'आपने उनसे बात नहीं की ?

नहीं, साहस जो होता। काक ! यह न होती तो मैं युद्ध में कभी का हार जाता—और जूनागढ़ भी अब तक भूमिसात् हो गया होता। किन्तु मेरी राणक दे—'खेंगार ने स्नेह भीनी वाणी में कहा के साहस ने हमें खड़ा रहने दिया। अब उसके दृढ़ संकल्प के विरुद्ध कौन जाय ? सम्भव है तू उसे समझा सके।

'किन्तु मेरी बात मानेंगी ?

'सम्भव है मान ले। वह तेरा अत्यन्त मान करती है और मुझे तुझ में बहुत विश्वास है।

काक मुस्कराया जो सती आपकी नहीं मानती वह मेरी बात कैसे मानेगी ?

'काक ! प्रयत्न करके तो देख। मुझे मृत्यु का डर नहीं—और न राणक ही को है। किन्तु मैं खेत रहूँ और वह महाराज के हाथों में पड़े—। खेंगार के शरीर में कंपकपी छूटी यह काक ने स्पष्ट देखा।

'बापू ! आप मुझे बहुत कठिन काम सौंप रहे हैं।

क्यों ?

'राणक देवी से कुल का नाम डुबोने के लिए कहना और जयदेव महाराज के क्रोध को रोकना यह दो काम त्रिपुरारी से भी नहीं हो सकते तो मुझसे कैसे होंगे ?

मुझे विश्वास है कि बनेगा तो तुझ ही से बनेगा।

किन्तु महाराज ! देवी को यहाँ आने का कारण क्या बताऊंगा ?'

'कह देना कि मैंने मन्त्रणा करने बुलाया है।'

'अच्छा ! किधर है ?'

'अभी आती है। तू स्नान करके भोजन कर। बस हो अपने मुख पर वस्त्र बाँध ले।'

'जो आज्ञा' कह कर काक वस्त्र बाँध कर रा के पीछे हो लिया।

३३

काक के भोजन कर चुकने पर रा खेंगार उसे स्वयं रनिवास में ले गया। कमरा छोटा और अँधेरा था। एक बड़े दीपक का प्रकाश फैला हुआ था। वहाँ पाँच-सात स्त्रियाँ बैठकर हथियार साफ कर रही थीं। एक सामने की ताक में भवानी की प्रतिमा के सम्मुख घी का दिया जल रहा था। सभी स्त्रियाँ काले वस्त्र पहने हुए थीं। एक छोटी स्त्री दीपक के पास बैठी-बैठी एक खास पर से रक्त के धब्बे साफ कर रही थी। वह धीमे-धीमे कुछ गा रही थी और शेष स्त्रियाँ धीरे धीरे उसे दोहरा रही थीं। गीत भी अद्भुत सा था। गाने वाली यमराज से कह रही थीं कि 'कल आना क्योंकि आज तो उनका पति शत्रु का हनन करने गया हुआ है।'

ऐसा लग रहा था मानो जोगमाया खप्पर निकलने से पहले तैयारी में लगी हों। कमरे में अपरिमित गंभीर छाया हुआ था। रा' और काक धीमे-धीमे आए। काक के अन्तर में अजाने ही पूज्य भावना उदित हो रही थी। उसे लगा कि एक प्रकार का दैवी और शुभ्र वातावरण चारों ओर फैला हुआ है।

'दे ! खेंगार ने धीमे और सम्मान से कहा।

रा' का स्वर सुनकर आस-पास बैठी स्त्रियाँ चमकीं और रा' को

जानकर शीघ्रता से घूंघट निकालती हुई वहाँ से चली गईं। दीपक सामने बैठी हुई छोटी स्त्री ने हाथ रखकर ऊपर देखा। दीपक के क्षीण प्रकाश में उस मुख को देखकर ही काक को विश्वास हो गया कि इस स्त्री को छिपाना असम्भव है।

काली ओढ़नी की किनारी में अद्भुत रीति से मढ़ा हुआ मुख छोटा और क्षीण था—कभी सुन्दर रहा होगा! उसके अधरों में निश्चलता थी उसकी आँखों में तेजस्विता किन्तु यह सब होने पर भी उस मुख पर एक ऐसी गहनता थी जो न समझी जा सकती थी और न सहन ही की जा सकती थी।

उसके चारों ओर फैला तेज दुःसह था। ऐसा लग रहा था मानो यमराज को हराने वाली सावित्री या वेणीसंहार करने के लिए इच्छुक द्रौपदी के मुख का तेज सदा के लिए इस मुख पर आकर बस गया हो। जिस प्रकार उस कमरे का वातावरण अपावित्र था वैसा ही वह तेज भी अपावित्र था। काक का मन अपनी स्वाभाविक स्थिरता को स्थिर न रख सका। उसने इस स्त्री को साष्टांग प्रणाम किया।

राणकदेवी ने काक को नहीं पहचाना, किन्तु रा को देखकर वह उठी उसका छोटा एवं क्षीण शरीर धनुष के दण्ड के समान झुका उसके मुख पर अवर्णनीय भक्ति की मुस्कराहट छाई हुई थी।

'पधारिये महाराज!' उसने आदर से कहा। उसकी वाणी में दबाई हुई भावना का कंपन था। खेंगार भक्ति से बैठ गया।

यह कौन है?

देवी! आपने मुझे नहीं पहचाना? कहकर काक ने वस्त्र हटा दिया।

कौन भाई काक? आँखें फाड़कर राणक बोली।

हाँ।

राणकदेवी की गहन आँखों की गहराई से भी किरणें फूट पड़ीं। 'तुम यहाँ? उसके स्वर में कुछ-कुछ धाक थी।

'देवी !' काक ने कहा, 'मैं जयदेव महाराज का भेजा नहीं आया हूँ। मुझे तो बापू ने बुलवाया था।

'क्यों ? उसने अपने पति की ओर घूमकर प्रश्न किया।

मुझे इससे सलाह लेनी थी।

'किस विषय में ? उसने पूछा।

बापू को मैंने सलाह दी है कि पाटण के साथ संधि कर डालो नहीं तो जनागढ़ मलियामेट हो जायगा। काक ने राणकदेवी की ओर देखकर कहा।

राणक के मुख पर विचित्र परिवर्तन हुए। उसका फीका श्वेत मुख लाल हो गया मानो किसी ने अपमान किया हो तमाचा मारा हो और उसके मुख पर मग्न गौरव की माया स्पष्ट हो गई। से्ह स वह कुछ पीछे हटी और फिर रा' के सामने देखन लगी—फिर धीमी और करती हुई वाणी में प्रश्न किया मेरा रा जयदेव से संधि किसलिए करे ? सपनोली आँखों से उसन काक की ओर देखा।

उसकी वाणी में तिरस्कार न था डाँट न थी फिर भी काक को तिरस्कार और डाँट दोनों मिले। एक वाक्य ही में इस अपार्थिव स्त्री की अतुल मृदुता उसकी पतिभक्ति और उसके अपने पति के चारों ओर रच हुए स्वप्न दृष्टिगोचर हो गए। इस स्त्री के लिए खेंगार मनुष्य नहीं दुर्जय देवता था। इस देवता की वह पूजा करती थी। खेंगार और काक दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। उस दृष्टि में काक ने अपने प्रयत्न की निष्फलता स्वीकार की। फिर भी काक ने एक बार फिर प्रयत्न करने का निश्चय किया।

'देवी ! प्रजा भीषण कष्ट में है और सम्पूर्ण सोरठ उजाड़ होता जा रहा है। किसी प्रकार तो जूनागढ़ की रक्षा हो ।

काक ! एक गहरी सांस लेकर देवड़ी बोली मेरा रा' है तो पीड़ित प्रजा कल फिर सुखी होगी और उजाड़ सोरठ में राग रंग होंगे।

किन्तु, न करे नारायण कहीं जूनागढ़ पराजित हो जाय तो '

'अच्छा। मजरी भी तो हमारे जूनागढ़ की ही कहाती है।

'ऐसा तो है ही। देवी, अब आप बठिए। महाराज, अब आप मुझे आज्ञा दें तो जाऊँ।

'रात यहीं रहकर जाना। तू थक गया है। प्रातःकाल जूनागढ़ देखकर जाना।

बापू मुझे रात रातों वयली जाना है और जूनागढ़ मुझे देखना नहीं। यह भी हो सकता है कि जूनागढ़ पर चढ़ाई करने का काम मुझे सौंप दिया जाए ?

काक तेरे जसा और नहीं दखा। खेंगार ने कहा तूने वर्षों पहले मेरा मानी होती और जूनागढ़ आकर बस गया होता तो हम दोनो क्या कर डालते ?'

महाराज! आपका शौय आपकी टेक देखकर मुझे भी ऐसा ही लगता था। किन्तु जसी सोरठ की टेक आपको प्यारी है वैसी लाट की मुझे। अच्छा दवी आज्ञा ?

भाई! मरे आशीर्वाद। राणक देवी ने कहा।

जाते-जाते काली ओढ़नी में मढ़े हुए उस अप्रतिम स्त्री के क्षीण मुख की ओर काक ने एक बार दखा और मन-ही-मन प्रणाम करके खेंगार के साथ बाहर निकल गया।

बाहर निकलते समय उसने मुख पर वस्त्र बाँधते हुए उसने कहा महाराज! चिन्ता न कीजिएगा जूनागढ़ का अभी तक कंकड़ भी नहीं हिला है और जयदेव महाराज मनस्वी पुरुष हैं अत कुछ होने का नहीं।

तुम जूनागढ़ लेने को कहेंगे तो ? खेंगार ने शांत और विनोद भरे स्वर में कहा।

मुझ जनागढ़ लेने को कोई नहीं कहेगा, और आपके कथनानुसार कोई कहे तो भी मैं लूगा नही।

'नहीं, लेना। तेरे हाथ मृत्यु पाकर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। सच

जान मृत्यु से मुझे तनिक भी भय नहीं है।

'तो बापू ! मरने के पश्चात क्या होगा इसका भी तनिक डर न रखिए। मुझे एक डर है—कल मेरा क्या होगा यह समझ में नहीं आ रहा है।

'काक ! तेरा कोई कुछ करने का नहीं। मैं भी पाटन से कुछ-कुछ परिचित हूं। तेरा बाल भी बांका करने का साहस किसी में नहीं है।

'देखा जायगा।

'ले मोतिया यह रहा। मोतिया इन्हें वंथली के मार्ग पर छोड़ था।

'बापू की जो आज्ञा। कहकर मोतिया काक को ले गया।

-

३४

जाने से पहले काक ने रा से बहुत बातें कीं और तब भारी मन से विदा ली। राणकदेवी के व्यक्तित्व का काक पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इस प्रतापी स्त्री के अपने और पति और सम्पूर्ण जूनागढ़ पर अपने स्वप्नों का ऐसा जादू कर लिया था कि उसे कोई भंग नहीं कर सकता था। राणक और खेंगार के स्वप्न और गौरव बने रहें और पाटन की विजय भी हो जाय—इन दो वस्तुओं पर गहरा विचार करता हुआ काक जूनागढ़ से बाहर आया।

मोतिया उसे एक सम्बे पथ से गिरनार की दूसरी ओर ले गया जहाँ उसने उसकी आँखों की पट्टी खोल दी और इसके बाद दोनों बड़े वेग से वंथली की ओर चले। मेंदरडा की ओर कई दिनों से सोरठी और पाटनी सैनिकों में झड़प हो रही थी। इसलिए उन्होंने उससे अलग दूसरा मार्ग पकड़ा। इस प्रकार थोड़े-थोड़े अन्तर पर जूनागढ़ की चौकी या थाना

मिलते, किन्तु मालूम होता है मोतिया सब चौकीदारों को पहचानता था क्योंकि उसे देखकर कोई भी काक के विषय में पूछ-ताछ नहीं करता था। यात्रा कुछ कठिन अवश्य थी। पथ ऊँचा-नीचा था झाड़ियाँ भी बीच में पड़ती थीं, इसलिए वह जल्दी-जल्दी नहीं चल सकते थे। मार्ग में पड़े हुए शवों को देखकर घोड़ियाँ चमक उठती थीं।

थोड़ी देर में वे एक टेकरी पर पहुँच गए, जहाँ वह विश्राम करने के लिए ठहर गए। टेकरी के नीचे एक चौकी थी जहाँ कुछ सैनिक अलाव के चारों ओर बैठे हुए थे। एकाएक टेकरी के दूसरी ओर से घोड़े की टाप सुनाई दी। अहीर और काक दोनों ने ध्यान से चारों ओर देखा। दूर एक काला अश्व वेग से चौकी की ओर चला आ रहा था और दूसरा बयली की ओर वाले जंगल में घुसा जा रहा था। अहीर ने शंकित होकर चारों ओर देखा और शिकारी कुत्ते के समान सूँघने लगा। काक वेग से आते हुए अश्वारोही की ओर एकाग्रता से देख रहा था।

'मालूम होता है तुम्हारे चौकीदार ढंग से चौकीदारी नहीं करते।

बापू! कोई परिचित व्यक्ति ही होगा नहीं तो जूनागढ़ की चौकियों से निकल आना सुगम नहीं है।

चलो देखें।' कहकर काक टेकरी से उतर कर चौकी की ओर गया। वह अश्वारोही चौकी के निकट पहुँच चुका था और चौकीदार उठकर उसके निकट पहुँच गये थे। अश्वारोही ने अपने मुँह पर वस्त्र बाँध रखा था। मोतिया चतुर था। उसने तुरन्त अश्वारोही को पहचान लिया और आगे बढ़कर प्रणाम किया देशलदेव बापू को घणीखम्मा।

चौकीदार और अश्वारोही दोनों चौंक पड़े। इधर काक भी चमका। वर्षों पहले उसने देशलदेव को देखा था और उसने यह भी सुन रखा था कि इस समय देशल और उसका भाई विशास दोनों खेंगार के पक्ष में हैं। इसलिए इस समय उसका मिलना काक को भला नहीं लगा।

कौन मोतिया! चकित होकर देशलदेव ने पूछा। देशलदेव और मोतिया को पहचान कर चौकीदार दूर खिसक गए। काक भी दूर

खड़ा रहा।

हाँ बापू ! किन्तु इस समय आप यहाँ कैसे ?'

'मैं चौकियाँ देखने ही निकला हूँ।

'ऐसा ?' मोतिया ने नम्रता से कहा एक आदमी को अपनी चौकी के बाहर भेजता है।

देवलदेव ने शंका से काक की ओर देखा, कौन है ?

बापू का आदमी है।

'किन्तु यह है कौन ? [अपनी घोड़ी मोतिया की घोड़ी के निकट लाकर देवल ने धीमे-से पूछा।

मुझे नहीं मालूम।

एसा कभी हो सकता है ? देवल ने हंसकर पूछा।

हो सकता है तभी तो। नहीं आपसे कहने में क्या बाधा ?

अच्छा ठहर पूछता हूँ।

नहीं बापू ! महाराज व्यर्थ ही क्रोधित हो जायँगे। मोतिया ने कहा।

अरे ए ! इधर आ। देवल ने काक को निकट बुलाया। काक थोड़ी थोड़ी आगे से आया और खड़ा हो गया।

तेरा क्या नाम है ?

काक ने मौन रहकर मोतिया की ओर संकेत किया।

आप इससे कुछ न पूछिए। मोतिया ने अधीरता से कहा हम जायँगे। हमें देर हो रही है।

यह नहीं हो सकता ? मुझे जानना ही पड़ेगा।' देवल ने तनिक क्रोध में कहा नहीं तो चलो महाराज के पास।

बापू ! मोतिया अहीर पर भी विश्वास नहीं ?

'आजकल किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

मोतिया का मुख क्रोध से तमतमा उठा। काक ने देखा कि यदि बात बढ़ जायेगी तो गड़बड़ हुए बिना न रहेगी। उसने घोड़ी को एड़ मारी और आगे आया।

'महाराज !' बनावटी स्वर में काक बोला। देशल और अहीर ने ऊपर देखा। काक अपनी घोड़ी देशल की घोड़ी के निकट ले गया और नीचे झुककर देशल के कान में कहा— बापू जिससे आपने अभी अभी भेंट की है मैं उसी का आदमी हूं।

देशल चमका फीका पड़ गया और उसकी अस्वस्थता का अनुभव करके उसका घोड़ा भी उछल पड़ा।

चल मोतिया ! काक ने कहा और उसने और अहीर ने अपनी अपनी घोड़ियों को एड़ लगाई। देशल अपनी पगड़ी सम्भालता ही रह गया।

बापू ! आपने तो चमत्कार की बात की। मोतिया ने कहा।

अरे यह तो मेरा पुराना मित्र है काक ने कुछ दूर दौड़ाने के बाद घोड़ी रोकते हुए कहा।

मोतिया अब तू जा। वथली वह रही। मैं अपने आप ही चला जाऊंगा।

'भटक जायेंगे तो ?

कैसी बात करता है ? हां देख महाराज से कहना कि कुछ संदेशा कहलवाना है इसलिए अगले बुधवार को तुझे यहां भेज दें। यदि कुछ कहना होगा तो मैं उस दिन मध्य रात्रि को इसी स्थान पर आऊंगा। बापू और देवी को मेरी जय सोमनाथ कहना।

'जो आज्ञा। कह कर मोतिया ने अपनी घोड़ी घुमा दी। हो सके तो इस बापुडी' को वापिस भेज दीजिएगा। बड़ी समझदार घोड़ी है। बेटी आना। अहीर ने घोड़ी से कहा।

काक कुछ देर तक खड़ा रहा। वथली जाने का मार्ग सीधा जान पड़ता था। वह तुरन्त घोड़ी पर से उतरा और धरती पर कान लगाकर लेट गया। धीरे चलते हुए घोड़े की टाप-सी कुछ सुनाई दी। वह तुरन्त घोड़ी पर चढ़ बठा और घोड़ी को दौड़ा दिया।

थोड़ी देर में आगे जाते हुए किसी घोड़े की टाप स्पष्ट सुनाई देने

सगी। पाटण के मण्डलेश्वर का पुत्र और खेंगार का भाणेज विश्वासघाती देशल इस समय वथली के किसी व्यक्ति के साथ गुप्त मन्त्रणा करे और यह कहते हों कि यह उस व्यक्ति का नाम है देशलदेव का चेहरा फीका पड़ जाय—काक के लिए इतना बहुत था। वह वथली आने से पहले वहाँ की परिस्थिति का जानकारी प्राप्त करने के लिए व्याकुल था। वथली जाने वाला यह व्यक्ति कौन था, यह जान लेने की भी उसने अत्यन्त आवश्यकता समझी।

जैसे-जैसे उसकी घोड़ी आगे बढ़ती गई, वैसे वैसे आगे का घोड़ा और वेग से भागने लगा। फिर एकाएक उसकी चाल धीमी हो गई। जब काक उस घोड़े के पास पहुंचा तो घोड़ा अकेला चल रहा था। काक मन-ही-मन हंसा। घुड़सवार चतुर लगता था किन्तु काक की बराबरी कर सके ऐसा नहीं था। काक अपनी घोड़ी पर से उतर पड़ा और उस घोड़े पर बैठकर आगे चल पड़ा।

जब उसने देखा कि वथली तनिक निकट आगई है तो वह मार्ग के निकट एक खेत में घोड़ी की लगाम हाथ में लेकर लेट गया। थोड़ी देर में काक ने जो सोचा था वही हुआ। उसकी घोड़ी पर बैठकर एक व्यक्ति आया और उसे सोया हुआ समझकर घोड़ी रोककर देखने लगा। फिर कुछ देर विचार करके वह घुड़सवार वथली की ओर चल दिया।

तब काक ने विश्राम करने के लिए आँखें मींच लीं।

३५

घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर काक उठ बैठा। चारों ओर ऊषा का प्रकाश फैला हुआ था, फिर भी काक को ऐसा लगा मानो उसने कोई भयानक स्वप्न देखा हो। दो बलिष्ट काली भुजाओं ने उसे धरती पर दबा रखा था और उसे एक भयानक मुख दिखाई पड़ रहा था।

चीत्कार की। उसे सुनकर चौकीदार काँप उठे और सिर के बल गिर पड़े। काक ने चौकी पर की।

'तुझे जाना हो तो जा। किन्तु तू कहाँ मिलेगा ?

सन्ध्या को श्मशान में और दिन को रामगढ़ के नीचे वाले चौक में। आप कौन हैं ?

मैं ? तू क्यों जानना चाहता है ? किन्तु सुन मुझे एक बात बताता हूँ।

'कौन सी ?'

मढ़ीच का दुर्गपाल काक प्रभास से इस ओर आ रहा है। सम्भव है दिन निकले आ भी पहुँचे। उसे पकड़कर महाराज के निकट ले जायगा तो महाराज बहुत प्रसन्न होंगे।

बावरा बोला का—क ? और हँसकर गर्दन हिलाने लगा।

तू उसे पहचानता है क्या ? काक ने तनिक सावधान होकर पूछा।

नहीं। महाराज ने उसे पकड़ने की आज्ञा दी है।

उसे कौन लेने गया है।

वाहड़।

उदा का पुत्र ?

'हाँ।

'अच्छा ? काक ने कहा तो जा आनन्द कर। कहकर काक ने घोड़ा बढ़ा दिया। बावरा दूसरे मार्ग से चला गया।

बावरा के अदृष्ट होते ही काक का ध्यान अपने घोड़े और उसके स्वामी की ओर गया। यह पुरुष कौन था इसका निश्चय करने के लिए उसने घोड़े की लगाम छोड़ दी ताकि अपना स्थान स्वयं ढूँढ़ने के लिए वह स्वतंत्र हो जाय। काक अपने चारों ओर ध्यान से देखने लगा। जूनागढ़ राणक के प्रताप से अडिग था, जयसिंहदेव राणक को हथियाने का निश्चय कर चुका था इस घोड़े का स्वामी और देशलदेव कुछ सम्मिलित षड्यन्त्र कर रहे हैं और खेंगार की चले तो वह सदि

कर ले। किन्तु इन सब में मुंजाल महेता कहाँ है ? क्या वह वृद्ध हो गया ? क्या जयदेव ने गुरु को भी मात दे दी ? क्या मीनलदेवी भी पुत्र की राजनीति के आधार पर चलने लगीं हैं ? और यदि ऐसा होता तो मुंजाल महेता यहाँ किस लिए आए हैं ? और उदा महेता क्या कर रहा है ? यह ग्रन्थि किसी प्रकार भी नहीं खुल पा रही थी।

ऐसा विचार करते-करते उसकी आँखों के सामने फिर हथियार साफ करती हुई और यम का आह्वाहन करती हुई देवड़ी आई। काक ने मन-ही-मन संकल्प किया कि जयदेव का रा का या जूनागढ़ का जो हो सो हो किन्तु देवड़ी का गौरव अखंड रखने के लिए यदि प्राण भी देने पड़ें तो मुंह नहीं मोड़ूंगा।

फिर वह अपने विषय में सोचने लगा। जयदेव महाराज उसे पकड़ मगवाने के लिए आतुर थे उदा महेता की भी यही इच्छा थी परन्तु मीनलदेवी उसकी सहायता की प्रतीक्षा कर रही थी। यह सभी एक साथ उसके लिए एकाएक कैसे पागल हो उठे हैं ? इन सभी को क्या विभिन्न प्रेरणायें हुईं ? या किसी एक ही स्वार्थ से, या एक ही के कहने से सबको प्रेरणा हुई ? ऐसी प्रेरणा कौन दे सकता है ?

जयदेव महाराज का प्रताप वह स्पष्ट देख पा रहा था। उसे लगा कि अब मुंजाल का सूर्य अस्त हो रहा है। महाराज उदा का उपयोग कर रहे थे। भूत समझा जाने वाला बाबरा उसके प्रताप को अस्वाभाविक और दुःसह बना रहा था और जयदेव परमार जैसे विदेशी योद्धा को गुर्जर वीरों पर अपना क्रोध निकालने का अवसर मिल रहा था। काक मन-ही-मन विस्मित हो गया। निःसत्व किन्तु महत्वाकांक्षी दिखाई पड़ने वाले लड़के का कैसा असीम विकास हुआ है ?

चलता चलता घोड़ा रुक गया। प्रकाश फैल गया था। राजगढ़ के अस्तबल के सामने घोड़ा खड़ा हुआ। निकट ही एक बड़ी हवेली थी। बथली की सुरक्षित स्थिति देखकर पटटणी दण्डनायक परशुराम के प्रति उसे भान हुआ। एक योजन की दूरी पर ही युद्ध चल रहा था किन्तु

हिलाने लगा, तू—

'काक ! अभी यह नहीं गया तो जयदेव महाराज मेरे प्राण ले लेंगे ।

जयसिं—

हां । काम से मुझे रात बाहर चला जाना पड़ा । लौटने में देर हो गई । काका ! तुम अपने लिए दूसरा पात्र ले आओ । कहकर काक ने पूजा-पात्र पकड़ लिया । वह वृद्ध ब्राह्मण घबरा गया ।

'अरे छू दिया मुझे स्नान करना पड़ेगा ।

'जाओ जाकर स्नान कर आओ और यह लो पसे ।

किन्तु यह तो बलात्कार ब्राह्मण तनिक जोर से बोला ।

काक ने उसकी ओर आँखें तरेर दीं ।

'महाराज आवश्यक समझते तो मेरी ओर से यह स्वर्ण-खड दान कर देना । किन्तु बिना गड़बड़ किए चले जाओ । नहीं तो— कहकर काक ने अपनी लकड़ी सभाली । वृद्ध ब्राह्मण के होश जाते रहे । परन्तु उसकी आँखें हथेली पड़े हुए स्वर्ण-खड पर आजन्म सूम की-सी लालसा से टिकी हुई थी । थोड़ी देर में काक ने पूजा-पात्र के पानी से मुह धोया वस्त्र और शस्त्र उतारे और च दन-पात्र से त्रिपुण्ड्र धारण किया ।

'महाराज ! आपका नाम ?

'दयानाथ चतुर्वेदी ।

अब जाओ । काक बोला ।

वृद्ध भयभीत-सा चला गया और काक पूजा-पात्र लेकर राजगढ़ के एक छोटे द्वार के सामने गया । प्रहरी ऊंघ रहा था किन्तु जसे ही काक द्वार में घुसकर वेग से सीढ़ियाँ चढ़ने लगा वसे ही उसकी नींद उड़ गई ।

'ए महाराज ! कौन हो ?'

मैं दयानाथ चतुर्वेदी का भतीजा हूँ। और आँखें टेढ़ी करके वह सनिक की शक्ति का अनुमान लगाने लगा।

'बुड्ढ को क्या हो गया ?

'नाग ने मार लिया है। कहकर काक जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा।

अरे खड़ा तो रह। दया काका के नए भतीजे का मुख तो देखूं। कहकर सनिक उसके पीछे दौड़कर पकड़ने आया। उसके निकट आने के पहले काक ने पूजा-पात्र ऊपर की सीढ़ी पर रख लिए और जैसे ही सनिक एक सीढ़ी चढ़ा वैसे ही वह एक सीढ़ी उतर गया। सैनिक चिल्लाना चाहता था लेकिन उसके एक शब्द भी बोलने से पहले

काक ने उसका गला पकड़ लिया। उसके शब्द अनबोले ही रह गए।

काक ने एक हाथ से कमर पटका उतारा और सनिक के मुह में ठूस दिया। निश्चेतन-से हो गए सनिक को उठाकर वह ऊपर चढ़ गया और थोड़ी दूर पर उसे एक खुली कोठरी में डालकर द्वार बन्द कर दिया। दूसरे ही क्षण पूजा-पात्र हाथ में लेकर छद्मवेषी पुजारी ने महल में प्रवेश किया।

काक ने चारों ओर देखा किन्तु कोई दिखाई नहीं पड़ा। कुछ दूर पर कोई स्त्री प्रभाती गा रही थी। वह उस ओर गया। एक दासी चक्की का 'गाला' साफ कर रही थी।

'बहन !' काक ने सम्बोधित किया।

– 'कौन ?

मुझे छोटी देवी के पास ले चल तो। देवी का पूजा का समय हो गया है और मुझे मार्ग नहीं मालूम।

'पागल ! इस समय कहीं छोटी देवी पूजा करती है ?

'आज उनका व्रत है। उठ। मैं उनके गाँव का ब्राह्मण हूँ। तुझे खबर नहीं। मुझे विशेष रूप से बुलवाया है।'

'अच्छा ! परन्तु मैं उधर कैसे जा सकती हूँ। मैं ठहरी दासी।

'तू मुझे मार्ग तो दिखा। देख, तू वहाँ से आयेगी तो देवी तेरा उपकार माने बिना नहीं रहेंगी।

स्त्री को कुछ रहस्य-सा दिखाई दिया। उसे लगा कि इस भेद के भय से संकट दूर हो सकते हैं। उसने तुरन्त उठकर हाथ साफ कर लिए।

'मुख्य मार्ग से ले जाऊँ या चोर मार्ग से ?

'चोर मार्ग से सुभीता रहेगा।

वह रनिवास की पिछली सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आए। एक दासी खड़ी-खड़ी दातुन कर रही थी। वह नौकरानी उसके निकट गई।

'देवी जाग गई ?

नहीं क्यों ?

'देवी के बुलाए हुए पण्डित जी आ गए हैं।

पागल हुई है ? इस समय देवी को पण्डित की क्या आवश्यकता पड़ी ? कहकर दासी तिरस्कार से कहने लगी।

मगी। काक ने धीरे-से कहा।

दासी भृगुकच्छ की और रानी की विश्वासपात्र थी। उसने काक की ओर देखा और उसे पुजारी के वेष में देखकर स्तब्ध हो गई।

'का ?'

चुप रह। देवी को उठा। मुझे भेंट करनी है। सुन इस नौकरानी को पहचान ले। इसे देवी से पुरस्कार दिला देना।

तेरा नाम क्या है ?'

'देवी ? वह अपने पवीता के बारहठ जो हैं न मैं उनकी नई दासी हूँ। नौकरानी ने अपना सविस्तार परिचय दिया।

ठीक है दोपहर को आना। महाराज ! आप इधर प्रतीक्षा कीजिए, देवी को उठाती हूँ।

काक तनिक खिसककर द्वार के पीछे खड़ा हो गया मगी शीघ्र ही दौड़ती हुई आई— पधारिए, देवी बुलाती हैं। काक के मुख पर विचित्र मुस्कराहट दौड़ गई वह भृगुकच्छ की जिस कुँवरी को जयसिंहदेव से ब्याहा था उसके पास गया।

एक स्वर्णजटित पलंग पर जयसिंहदेव महाराज की पटरानी मीला देवी उनींदी-सी बैठी थी।

अम्बुसर के घेरे के समय जिस मृणाल कुमारी से उसने भेंट की थी वह आज पहचानी भी नहीं जा सकती थी। तब की तुलना में आज उसका शरीर भरा हुआ था और उसके मुख का आकर्षण भी बढ़ गया था। सोने और हीरों के आभूषणों से उसका अंग-अंग चमक रहा था। चारों ओर पाटण की महारानी के अनुकूल वैभव दिखाई दे रहा था। उसके अंग के आभूषणों में अपना एक विशेष वैभव दिखाई पड़ता था।

इस समय उसके बाल बिखरे हुए थे और जल्दी में ओढ़ी गई ओढ़नी उसके मांसल शरीर की शोभा को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। आकस्मिकता से उसके होंठ खुले रह गए उसके पंक्तिबद्ध दाँतों का अपूर्व हार दिखाई पड़ रहा था। उसके मुख और शरीर पर आलस्य दिखाई दे रहा था मद का या नींद का यह कहना कठिन है ऊप के भार से आधी झुकी पलकें उसकी आँखों के तेज को छिपा रही थीं।

जैसे ही काक ने प्रवेश किया उसने आँखें तनिक खोलीं। काक ने एक दृष्टि डाली। मीला देवी की आँखों में पहले जैसी ही स्थिरता और निश्चयात्मकता थी। काक सम्मान से द्वार के सामने खड़ा हो गया। उसे देखकर रानी की स्थिर आँखों में क्षणमात्र अस्थिरता आई और चली गई। उपेक्षा से ओढ़े गए वस्त्र के नीचे से दिखाई पड़ते पाँवों की उंगलियों की ओर उसने देखा—काक! तू आ गया?

हाँ? मुस्कराकर काक ने कहा जीवित आ गया। मार्ग में कई बार मेरे प्राण लेने का प्रयत्न अवश्य हुआ किन्तु आप तो जानती ही हैं मुझ जैसे को यमराज तक नहीं ले जाना चाहते। आज्ञा? मुझे क्यों बुलाया?

मंगी ! शांत और स्थिर स्वर में लीला देवी ने कहा 'तू बाहर जा, और किसी को आने मत देना।

मंगी के बाहर जाते ही रानी घूमकर काक की ओर देखने लगी।

"इसी वेष में आने के कारण ?'

'निश्चिन्त होकर बता दूंगा। आपसे भेंट करने के लिए कई को धकमा दिया है। उसमें से एक भी यदि अपने स्वामी के पास पहुंच जायगा तो हमें बात करने का समय नहीं मिलने का। सम्भव है मेरा शिरच्छेद कर दिया जाय।

तेरा शिरच्छेद ? रानी ने भौंहों को तनिक टेढ़ी करके कहा।

हां। मुझ पर महाराज और महाराज के मन्त्री कुपित हैं।

यह होते हुए भी तू उनकी सेवा करता है ? तिरस्कार से रानी ने कहा। उसकी आंखों में अधिक स्थिरता आ गई।

'हां। काक ने दृष्टि हटाकर नीचे देखा।

क्यों ?

मुझे अपने ही ढंग से काम करना रुचता है। अब आपकी क्या आज्ञा है ?

आज्ञा ! लीला देवी तिरस्कार से बोली तू मेरी आज्ञा मानता कब है ? अब तेरी क्या आज्ञा है यही पूछने के लिए मैंने तुझे बुलाया है। तिरस्कार भरी वाणी में रानी बोली।

मेरी आज्ञा ? धीरे से काक ने कहा। झंझावात के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

हां ! लीलावती ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया मानो हिसाब लगा रही हो तूने लाट खिनवाया और पाटण मेरे सिर पर पटक दिया।

'फिर भी आप सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर विराजी हुई हैं। काक ने बात पूरी की।

रानी ने काक की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

मैं तो थक गई हूँ।

किससे ?

सबसे ? रानी पुन ऐसी शांति से बोली मानो हिसाब लगा रही हो, तूने कहा था मैं यहाँ स्वामिनी बनूँगी किन्तु यहाँ तो लगता है प्रत्येक व्यक्ति स्वामी है।

काक को लगा कि रानी वास्तविक व्यथा प्रकट नहीं कर रही है अत उसने उसे जानने का निश्चय किया पृथ्वी के स्वामी जयदेव महाराज आपके चरणों में हैं।

चुप रह रानी ने एसी निश्चयात्मक वाणी में कहा मानो तलवार से प्रहार कर रही हो, तेरा पृथ्वी का स्वामी मनुष्य नहीं है।

'तो ?

रानी ने उंगली के पोर गिनने प्रारम्भ किए, वे देवता हैं—मनुष्य हैं—और पशु हैं। उन्हें मैं कैसे वश मैं कर सकती हूँ ?

काक ने व्यथा समझी। 'देवी ! वह बनावटी नम्रता से बोला "इतनी क्यों निराश हो रही हो ? आप क्या नहीं कर सकतीं ?

'मैंने सब कुछ किया। एक भी कला नहा छोड़ी। किन्तु अब वे वश क बाहर होते जा रहे हैं। रानी फिर भी स्थिर चित्र की महत्वा कांक्षी सुन्दरी ने अपनी व्यथा का वणन किया।

आपको जो कहना हो शीघ्र कहिए क्योंकि समय निकला जा रहा है। गंभीर होकर काक बोला।

'तुझे उन्हें वश में करना होगा। रानी ने कहा।

'किन्तु वह कैसे और क्यों वश में नहीं है यह तो कुछ बताइए।

'वह राणक देवी के पीछ पागल हो गए हैं।

और इस पागलपन से इनकी रक्षा करनी है।

हाँ।

किस प्रकार ? काक ने पूछा।

चाहे जूनागढ़ जा चाहे देवड़ों को वश में कर चाहे महाराज को

सीधा कर। तूने मुझे यहाँ ब्याहा है। अब युक्ति सोच निकालना भी तेरा ही काम है।

रानी की भयंकर और पनी दृष्टि देखकर काक को कँपकँपी सी छूट गई।

'देखता हूं।

देखता हूं क्या ? मुझ पर कोई और पटरानी आई तो कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। अडिग शांति और निश्चय से लीलादवी ने कहा या तो तू नहीं रहेगा या मैं न रहूंगी या फिर पाटण नहीं रहेगा। उसने अपना हाथ अपने पांव पर मारा मानो पाटण को तोड़ रही हो।

दवी ! आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर। जिस क्षण मेरे जीते-जी आपके सिर पर दूसरी पटरानी आएगी उसी क्षण प्राण दे दूंगा। और कुछ ?

'कसे होगा यह सब ? रानी ने पूछा।

इसकी चिन्ता आप न कीजिए, मैंने आपसे भेंट की है यह बात किसी से न कहिएगा। मेरे वस्त्र और हथियार राजगढ़ की पिछली खिड़की वाली गली में पड़े हैं उन्हें मंगवा दीजिए।

रानी ने मंत्री को बुलाकर आज्ञा दे दी कुछ क्षण दोनों मौन रहे फिर।

काक ! मंजरी कैसे है ? तनिक तिरस्कार से रानी ने पूछा।

प्रसन्न है।

और बच्चे ?

आनन्द में है।

'लाट के क्या हाल चाल हैं ?

अभी यहाँ से एक मूर्ख को दुर्गपाल नियुक्त करके भेजा है और रेवापाल तो प्रतीक्षा कर ही रहा है।

अब क्या होगा ?

'अभी सोमनाथ की इच्छा। किन्तु देखा, मुजाल महेता क्या कर रहे हैं ?

'तांबूल चबाते हैं।

और उग्र ?

महाराज के लिए राणक देवी लाने के लिए व्याकुल है। वह तो तेरा शत्रु है न ?

'काक मुस्कराया—मुझे उकसाने की आवश्यकता नहीं।

रानी ने हँसकर काक की ओर अस्थिर दृष्टि से देखा।

'और यह जगदव कौन है ?

नया परमार योद्धा है। बहुत चतुर है। तुम सब पर धाक जमाने के लिए महाराज उसे लाए हैं।'

अच्छा ! और बाबरा भूत—

रानी के मुख का रंग तनिक फीका पड़ गया। वह ।

क्यों ?

'उसका नाम लेते ही तो मेरे अंग ठंडे पड़ जाते हैं। मंगी ! क्या है ! रानी ने घूमकर पूछा।

भटराज को खोजते हुए परमार यहाँ आए हैं। मगी ने कहा।

'कैसे जाना ?'

'भटराज ने जिस प्रहरी को बन्द किया था उसी ने परमार को कहा लगता है।

अच्छा शांति से रानी बोली, जाकर बाहर खड़ी रह। आए तो खड़ा रखना। मगी गई और रानी काक की ओर घूमी।

घबराना मत। तू उस कमरे में जाकर वस्त्र पहन।

न म आप मेरी चिन्ता मत कीजिए। मुझे इस परमार से भी परिचय करना है।

देवी ! मगी ने द्वार खुला रखकर रानी से कहा जगदेव परमार आपसे भेंट करना चाहते हैं।

ाने दे। कहकर रानी ने हाथ के संकेत से भाक को अन्दर भेजा
लग से उतर कर लहगा-कंचकी ठीक किए, ओढ़नी सिर पर
ा रखी और पुन गर्व से बैठ गई।
वह पलग पर बैठी ही थी कि जगदेव परमार अन्दर आया।

३८

जगदेव अन्दर आया। लीलादेवी ने उस पर उपेक्षा भरी दृष्टि
ासकर मुंह फेर लिया।

जगदेव मूर्ति क समान था। उसका विशाल कद था छाती चौड़ी
थी उसके हाथ साधारण मनुष्य की जघा के समान थे उसका मुख
बड़ा और भरा हुआ था। उसे तेजस्वी नहीं—सुन्दर कहा जा सकता
था। काली सावधानी स सवारी हुई दाढ़ी की शोभा बढ़ा रही थी।
उसकी कमर में खड्ग लटक रहा था पटके में दो कटारें शोभा दे
रही थीं।

उसे देखकर अडिग शौय का स्मरण हो आता था किन्तु उसकी
आंख में कुछ अगम्य-सा था—वह तेजस्वी न थीं फिर भी लोग उनसे
घबराते थे। उनमें सज्जनता न थी। किन्तु हरामखोरी भी न थी।
उनमें दुष्टता न होते हुए भी कोई उनको देखकर विश्वास नहीं करता
था। जयसिंहदेव महाराज के दरबार में उसे कोई समझ नहीं पाता
था। घबराते सभी थे। पट्टणी योद्धा उससे सम्बन्ध रखना नहीं चाहते
थे। महाराज और उसकी शक्ति के भय से कोई उससे शत्रुता भी नहीं
करना चाहता था। जगदेव समझता था कि पट्टणियों को दबा
रखने की शक्ति केवल उसी में है। क्योंकि पट्टणी उसको तिरस्कार से
देखते थे और मात्र उतना ही मान देते जितने से महाराज को क्रोध न

हो। गर्विष्ठ सत्ताधारी एव विदेशी के बीच जितना भाईचारा हो सकता है उससे अधिक पट्टणियों और जगदव के बीच में नहीं था।

किन्तु महाराज के महामन्त्री और अत्यन्त निकट के सबधी सो अपना तिरस्कार छिपाने का प्रयत्न तक नहीं करते थे। जगदेव भी जहाँ तक बनता उनके ससग में नहीं आता था। उदा के साथ बहुत नम्रता से और परशुराम के साथ सम्मान से व्यवहार करता था। रानियों के साथ वह कोई सम्बन्ध नहीं रखता था और जहाँ तक बनता रानियां भी उससे कोई सम्बन्ध न रखती थीं। एक लीलादेवी अवश्य उससे शांत किन्तु तिरस्कार से व्यवहार करती थी। जगदेव के मुख पर से इतना तो स्पष्ट हो रहा था कि इस समय यहां आना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। उसके स्थूल मुख पर थोड़े बहुत क्षोभ के चिन्ह थे और गले में से शब्द निकालने में भी उसे कष्ट हो रहा था। किन्तु यह दशा उसने दाढ़ी में हाथ फेरकर छिपा ली।

देवी ! सेवक का दण्डवत प्रणाम। विदेशी उच्चारण में जगदेव ने रोम रोम से नम्रता टपकाते हुए कहा।

रानी ने गर्दन हिलाई और शांत निश्चित वाणी में पूछा—क्यों जगदेव ?

देवी ! महाराजाधिराज की आज्ञा है कि किसी अपरिचित व्यक्ति को महल के अन्दर न घुसने दिया जाय। जगदेव ने खंखारकर कहा।

तो ? तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

कोई एक व्यक्ति घुसकर आपके प्रकोष्ठ की ओर आया है ऐसी मुझे सूचना मिली है।

रानी ने अपना मुह जगदेव की ओर किया। उसकी आंखों में हृदय भेनी निर्दय पूर्ण तीक्ष्णता थी। पल भर तक वह देखती रही उसने मन ही मन में घबराते हुए भी बाहर से साहस बनाए रखने वाले योद्धा को अपने तिरस्कार का पूरा-पूरा अनुभव करवा दिया।

मुझसे क्या चाहते हो ?

'यह कौन है और कैसे आया यह सब जानकारी मुझे महाराज को देनी होगी। देवी! क्षमा कीजियेगा मुझे महाराज की आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। नहीं तो आप तो जानती हैं मेरी क्या गति होगी।'

रानी ने तिरस्कार से मुंह फेर लिया।

'यह कौन है? जगदेव ने धीमे से किन्तु दृढ़ स्वर में पूछा।

परमार!' रानी ने बिना क्रोधित हुए ही कटाक्ष किया 'तुम शायद महारानियों की तलाशी लेने की ही नौकरी करते हो? रानी ने प्रश्न इस प्रकार पूछा मानो यह नितान्त स्वाभाविक और सामान्य हो। किंतु जगदेव को अपमान का गहरा घाव लगा। उसके होंठ कुछ कांपे, परन्तु तुरन्त उसने स्थिर होकर हाथ जोड़े।

'महारानी! मैं तो आज्ञा पालन करने वाला दास हूँ।

मैं जानती हूँ। कहकर लीलादेवी ने तिरस्कार से अँगड़ाई ली 'कैसा आदमी था वह? तिरस्कार से उसने पूछा।

देवी! ब्राह्मण के वेष में वह महल में घुसा था।

हूँ—और किस वेष में वापस निकला?

जगदेव को लगा कि रानी उसकी हँसी उड़ा रही है।

देवी! अभी तो वह व्यक्ति यहीं है।

क्या? लीलादेवी ने चमककर पूछा। उसने जगदेव की ओर देखा और उस योद्धा के मुख पर मुस्कराहट देखकर वह घबराई।

अभी उसके पूजा-पात्र यहीं पड़े हैं। कहकर जगदेव ने मुस्कराकर भूमि पर रखे हुए पात्रों की ओर संकेत किया।

जगदेव! शांति से लीलादेवी बोली। उसकी वाणी में भयंकर तिरस्कार था 'पाटण की महारानी के साथ किस प्रकार के विवेक से काम लेना चाहिए यह तुझे नहीं मालूम यह सच है मुझे विवेक सिखाना पड़ेगा। जा! बाहर जाकर मंगी को भेज। मुझे केश सवारने हैं।

परन्तु देवी ।'

'परमार! जो मैंने कहा वह नहीं सुना?' रानी ने गर्व से पूछा।

चगदेव को यह प्रश्न ठोकर के समान लगा।

हाँ।

रानी ने गदन हिलाकर उसे बाहर जाने की आज्ञा दी। जगदेव को और कुछ सूझा ही नहीं। वह नमस्कार करके बाहर चला गया। उसके बाहर निकलते ही रानी क मुखपर क्रोध छा गया किन्तु मगी को घाता हुआ देखकर उसका मुख जैसा था वैसा ही शांत हो गया।

'मगी! इन पात्रों को छिपा दे।

जसी दवी की इच्छा।

रानी मगी की ओर देखे बिना शीघ्रता से अन्दर गई और द्वार बन्द कर लिए। दूसरे ही क्षण उसकी चीत्कार मगी को सुनाई पडी। मंगी के प्राण सूख गये। लीलादेवी जसी शांत और भावहीन स्त्री का इस प्रकार चीत्कार कर उठना इतना अस्वाभाविक था कि वह घबरा गई। वह दौड़कर अदर गई। रानी कुछ अस्थिर थी और उसकी आखों में घबराहट थी। प्रकोष्ठ निर्जन था।

'भटजी ?

कौन जाने कहाँ गया। रानी ने कहा।

इस द्वार से तो बाहर नहीं गए? कहकर मगी एक दूसरे द्वार के सामने जाकर उसे ध्यान से देखने लगी। उसका ताला उस ओर था किंतु द्वार बन्द दिखाई पड़ा।

'पागल! यह द्वार तो कभी खुलता नहीं। इसकी कुंजी ही कहाँ है?'

तो फिर?

'दवी—देवी! ओ देवी! मगी चाली।

'क्या है? कठोर होकर लीलादवी ने पूछा।

अरे रे—भटजी—पशुपतिनाथ भगवान् भला करें। कहकर मंगी ने आंखों पर हाथ रख लिया।

रानी नहीं समझी। उसने मगी का कान पकड़कर खींचा— क्या है?

'दवी—वह तो—बावरा है।

पल भर रानी मौन रही। उस मगी की बात सच्ची लगी, उसके सुन्दर होठ फड़कते रहे उसकी आँखें स्थिर और गहन हो गईं, मोहक फीकापन उसके मुख पर छा गया। रानी के कुछ बोलने के पहले ही बाहर के प्रकोष्ठ में किसी के दौड़ने की आवाज आई। रानी द्वार की ओर मुड़ी।

द्वार खोलकर एक सोलह-सत्रह वर्ष की कन्या ने नाचते-कूदते प्रवेश किया। उसकी ओढ़नी अस्त-व्यस्त उसके मुख पर हास्य उमड़ा पड़ता था। हास्य के कारण उसके मुख पर मोहक लालिमा छा रही थी। उसकी चंचल आँखों में अधिक हंसने के कारण आंसू थे। उसके हास्य की प्रतिध्वनि सारे प्रकोष्ठ में हो रही थी। वह रानी की ओर आई और एक उंगली ऊँची करके कुछ कहा। उसके हँसने के कारण एक अक्षर भी समझ में भी नहीं आया।

'समर्थ ! रानी ने कठोरता से कहा।

'माँ ! बड़ी कठिनाई से वह कन्या बोली परन्तु हँसी आ जाने पर वह पाँव लम्बे करके भूमि पर बैठ गई और एक हाथ भूमि पर रखकर दूसरे हाथ से पेट पकड़ लिया।

'समर्थ देवी ! क्या है ? मंगी ने पूछा।

उत्तर में समर्थ ने पुनः रानी की ओर संकेत किया किन्तु फिर हंसी आ जाने के कारण वह बोल न सकी।

समर्थ ! पागल हुई है ?' लीलादेवी के प्राण अधीर हो गए थे। उसने मगी की ओर देखा और कहा मगी चल मुझे महेताजी से भेंट करने जाना है।'

लीलादेवी और मंगी वहाँ से चले गए। समर्थ अकेली हंसती रही। थोड़ी देर में बड़ी कठिनाई से उसकी हंसी रुकी और वह खड़ी हो गई।

अहा कैसी घबरा गई ? माँ अब पकड़ में आई है। वह फिर हँसने और चारों ओर कूदने लगी—माँ खूब पकड़ी गई ? और अब महेता

पाने वाले हैं।'

समय ने हँसकर धरती पर पाँव पटका फिर थोड़ी हँसी और नीचे झुककर ताली दे-देकर कुछ गाने लगी। वह थोड़ी-सी कूदी और कमर से कुंजियों का गुच्छा निकाला।

'माँ समझीं उनका ब्राह्मण लुप्त हो गया है। फिर उसने ही-ही हँसकर मयी ने जिसे न खुलने योग्य मान लिया था उस द्वार को धक्का देकर खोल दिया। उस ओर न साँकल चढ़ी हुई थी न ताला ही लगा हुआ था। समय उस ओर गई और साँकल चढ़ाकर द्वार पर ताला लगा दिया।

३६

अन्दर आकर काक अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगा। लीला अपने पद से हटा दी जा सकती थी जयसिंहदेव उस पर कुपित थे, और उसके यहाँ किसी को भी आने की कड़ी मनाही थी। इस समय और इस प्रकार महल में घुसकर वह लीलादेवी से मिला इससे अवश्य उसे हानि पहुँचेगी—ऐसा उसे लगा। इस भूल को सुधारने का विचार करके वह उस कमरे से बाहर निकलने के लिए द्वार खोजने के हेतु दूसरे द्वार की ओर गया। द्वार को धकेलकर देखा तो खुला लगा तब उसने उसे खोल दिया। अब वह एक सूनी कोठरी था। द्वार का ताला खोलकर किसी ने वहीं रख दिया था।

काक ने सावधानी से द्वार बन्द किया एकाएक एक कन्या सामने आकर खड़ी हो गई। वह सुन्दर और नटखट थी और उसे देखकर हँसने लगी।

चोर पकड़ा गया। वह हँसने लगी।

धीरे। काक ने नाक पर उंगली रखी।

'तू कौन है ?' उसकी लड़की ने आँखें नचाकर पूछा।

अरे पर धीरे तो बोल। रानी सुन लेगी।

हा, हा हा! कन्या हँसी, तू छिपकर भाग आया। अच्छा हुआ कि मैंने द्वार खुला छोड़ दिया। मालूम है, इसकी कुंजी केवल मेरे पास है ? तू कौन है ?

मैं लाट का ब्राह्मण हूँ, और देवी का आश्रित हूँ।'

हा हा हा! और छिपकर भागा जा रहा है ? कन्या हँसी और फिर एकदम गम्भीर हो गई, तू लाट का है ?

'हाँ।

काक भटराज को जानता है ?

भली भाँति। क्यों ?

'वह सोमनाथ पाटण आया है!

काक सावधान हो गया। 'आया होगा। तुम्हें क्या काम है ?'

वह पकड़ा गया कि नहीं कुछ मालूम है ?' लड़की ने पूछा।

जब बाहड़ महेता गए हैं तो बिना पकड़े कहीं रह सकते हैं ? काक ने कहा।

कन्या गद्‌गद् हो गई और उसके गाल लज्जा से लाल हो गए। अनजाने ही हर्ष से उसके दोनों हाथ मिल गए।

तुझे विश्वास है ? लड़की ने पूछा।

हाँ बहन। तेरी इच्छा सफल होगी। अब मुझे जाने दे। जयदेव महाराज कहाँ मिलेंगे ?

बाहर निकलकर दाएं हाथ जाना वहाँ जयदेव परमार मिलेंगे। उनसे कहना वह तुझे ले जायेंगे।

'बहन! तू कौन है ?

मैं दंडनायक परशुराम की पुत्री समर्थ हूँ।

सज्जन महेता की पौत्री।'

अच्छा !

'बावरे ! तू तो सभी से परिचित है।

'हाँ। कहकर जल्दी-जल्दी काक वहाँ से निकला। कन्या ने द्वार पर ताला लगाया और कुंजी कमर में छिपा ली। ठीक है अब देखो मुझे चिढ़ाएगी तो मैं भी उन्हें चिढ़ा दूंगा।' यह कहती हुई उठली। कुछ देर के लिए वह विचार में पड़ी और फिर एकदम हंस-हंसकर गाने लगी।

काक उस कमरे से निकलकर एक कोठरी में आया और वहाँ से जल्दी-जल्दी दाएं हाथ की ओर गया। दो कोठरियाँ पार करने के पश्चात् उसे दो सशस्त्र योद्धा दिखाई पड़े। वह उनके निकट गया।

'महाराज अन्दर हैं ?

दोनों योद्धा गुजराती प्रतीत नहीं होते थे। एक सामान्य ब्राह्मण को इस प्रकार आते देख वे तनिक क्रोधित हो गए।

'हाँ क्यों ?

'कुछ नहीं मुझे भेंट करनी है। कहकर काक अन्दर जाने लगा। उसकी धृष्टता देखकर वे सैनिक चकित हो गए और द्वार के सामने भाले खड़े किए, परमार को आन दे।

काक को लगा कि अन्दर कोई बैठा है अतः वह जोर से बोला—'मुझे क्यों रोकते हो ? काक की वाणी में गर्व और सत्ता दोनों थे। 'मुझे, लाट के दुरपाल भटराज काक को क्या समझते हो ? काक का नाम सुनकर वह सैनिक तनिक दूर खिसक गए।

'अन्नदाता ! यह तो मैं काक ! कहकर काक इस प्रकार अन्दर चला गया मानो महाराज ने उसे पुकारा हो और वह उसका उत्तर दे रहा हो। परन्तु अन्दर जाना इतना सहज न था। एक दूसरे सशस्त्र पुरुष ने उसका हाथ पकड़ा और घरघराती वाणी में पूछा 'कौन है ? क्यों गड़बड़ करता है ?

काक ने ऊपर देखा। सामने खड़ा पुरुष धूल से लथपथ था और

उसके एक हाथ पर पट्टी बंधी हुई थी। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। काक ने वह छोटा किन्तु सशक्त शरीर, झुकी हुई किन्तु प्रतापी नासिका और किन्तु हठी मुख तुरन्त पहचान लिया।

दण्डनायक महाराज को पणोखम्मा। विनोद से काक ने कहा। 'क्या सचमुच विजय की धुन में लोग पुराने मित्रों को भी भूल जाते हैं। खूब है यह संसार ?

कौन ? तनिक चकित होकर सज्जन मंत्री के महारथी पुत्र परशुराम ने कहा।

'काक।

भृगुकच्छ का दुर्गपाल ? भो हो हो ! कैसे हो ? बाहों में लपेट कर उसने काक से पूछा।

'अच्छा हूं। जीता जागता यहाँ तक आ ही गया हूँ। महाराज मिलेंगे।

तुझ पर तनिक क्रोधित हैं।

'उसकी चिन्ता नहीं। अन्दर है न ?

हाँ। अभी अभी मेन्दरडा के निकट सोरठियों को हमने पीछे धकेल दिया है यही सूचना देने के लिए आया था।

'परशुराम जी ! आप न होते तो पाटण का जाने क्या होता ?

परशुराम हंस दिया काक ! मैं दरबारी नहीं अत चापलूसी पचती नहीं। परन्तु तू न होता तो पाटण में लाट कभी की खो दी होती।

अरे हाँ भूला। मैं फिर मिलूं गा। मुझे आवश्यक काम है।

जा ! विजय कर। इस समय महाराज का मन भी कुछ प्रसन्न है।

काक नमस्कार करके अन्दर गया। उसका पगरव सुनकर अन्दर के प्रकोष्ठ से एक सत्ता भरा स्वर सुनाई पड़ा कौन, जगदेव ?

काक ने स्वर पहचान लिया और दौड़कर अन्दर गया 'नहीं अन्न दाता ! मैं हूं काक।

गद्दी पर एक व्यक्ति आरसी में देखकर मूँछें सवारता हुआ बैठा था। एक-दो गण कंघी लेकर खड़े थे।

काक ने साष्टांग प्रणाम किया।

४०

साधारण-सा युवक गद्दी पर लेटा हुआ था। उसका कद बड़ा और छरहरा था। उसका शरीर भरा हुआ और सशक्त था उसके चौड़े कंधे और सुदृढ़ भुजाएं उसके शारीरिक बल की साक्षी दे रही थीं।

उसने सफेद धोती पहन रखी थी और कन्धों पर सुनहरी दुपट्टा डाल रखा था। झीने दुपट्टे में से उसके गले में पड़े हुए आभूषण और हाथ के बाजूबंध चमक रहे थे उसका रंग गेहुंआ था। मात्र कलाई के आस-पास उसके हाथ तनिक सांवले थे। उसका मुख गोल और भरा हुआ था छोटी और सुन्दर दाढ़ी के मोहक केश सिर के लम्बे और घुंघराले केशों में मिलकर उसके मुख को भव्य बना रहे थे। उसकी नासिका लम्बी और पतली थी। महत्वाकांक्षा प्रकट विलासी रुचि के परिचायक होंठ सुघड़ और पतले थे अलसामा दे रहे थे। आँखें विशाल लम्बी और तेजस्वी थीं उनसे आवेग टपक रहा था। और उसके मुख पर सोए हुए सिंह के समान प्रताप सा पड़ा हुआ था—ऐसा कि उसकी स्थिरता ही सामने वाले को कंपा देती थी।

जयसिंहदेव महाराज ने आँखें तनिक अधिक खोलकर देखा। इस प्रकार किसी का आना उन्हें अच्छा नहीं लगता था ऐसा उनकी दृष्टि से स्पष्ट लग रहा था।

'कौन ? कुछ कठोर होकर उसने पूछा।

देव ! आपने जिसे बुलाया था वही काक हूँ। काक उठा घुटने

के बल झुका और हाथ जोड़कर बोला।

काक ! तू?

हां देव ! आपका आज्ञा-पत्र मिलते ही तुरन्त चला आया अन्न दाता प्रसन्न तो हैं? काक ने पूछा।

महाराज को यह मित्रता अच्छी नहीं लगी यह काक ने स्पष्ट देख लिया। परन्तु उसके चेहरे पर मुस्कान थी।

'तू सीधा चला आया?' आश्चर्यचकित जयदेव ने पूछा।

आपकी आज्ञा हो तो भला रुका जा सकता है?

तुझे कोई मिला?

नहीं देव ! शत्रु का देश था अत मैं बहुत सावधान था। किन्तु कृपानाथ ! आप प्रसन्न तो हैं? दण्डनायक ने मुझसे मेंदरड़ा के विषय में अभी-अभी कहा था।

हाँ यह अच्छा हुआ। जयदेव महाराज ने गव से कहा।

'लीलादेवी प्रसन्न हैं न? और बड़ी देवी? मुंजाल महेता आदि तो आनन्द में ही होंगे?

जयदेव की आँखों में थोड़ी-सी चमक आई। उसे यह प्रश्नावली अच्छी नहीं लगी।

काक सब प्रसन्न हैं। लाट की क्या दशा है?

मैं आया तब तक तो लाट शांत था। अब तो आम्रभट महेता क्या कहते हैं उन्हीं पर निर्भर करता है।

क्यों?

बहुत कच्चा है। इस समय लाट को शांत रखना छोटे बच्चों का खेल नहीं।

हँ हँ!' तिरस्कार से महाराज ने कहा किन्तु तू इस वेष में कैसे?'

'देव ! काक मुस्कराया, आपका आज्ञा-पत्र मिला तो मुझे लगा कि आपको सचमुच मेरी आवश्यकता है। आपके और मेरे शत्रु कुछ कम

तो नही है ? मत इस वेष के सिवा और कोई चारा नहीं था। मन्न-दाता ! लीलादेवी का विवाह कराने माया था उसके पश्चात् माज आपके दर्शन कर रहा हूं। किन्तु महाराज आपकी कीर्ति और मापका प्रताप देखकर तो मैं दग रह गया। पन्द्रह वप पूव मैंने जो कहा था वही हुमा न ?

आपका जन्म विक्रम राजा की कीर्ति को भी मन्द करने के लिए हुमा है।

जयदेव ने प्रसन्न होकर दाढ़ी पर हाथ फेरा। वह तकिए पर लेट गए और काक पर पहली ममत भरी दृष्टि डाली।

काक ! तू पाटण आकर क्यों नहीं रहता ?

देव ! आप क्या नही जानते ? आपके दरबारियों में खलबली मच जायगी। स्मरण नहीं पन्द्रह वप पहले मझ चला जाना पड़ा था ?

काक ! तुझसे मुझे काम है। जयदेव ने कहा।

आपकी आज्ञा हुई और मैं प्रस्तुत हो गया हूँ।

'मैं इन सबसे थक गया हूँ। सीधे होकर कुछ तिरस्कार से राजा ने कहा, मुरार ! बाहर जा। कघी लेकर खड़े हुए व्यक्ति से जयदेव ने कहा। मुरार बाहर चला गया। काक ! मैं इस जूनागढ़ के घेरे से थक गया हूँ। राजा ने काक पर तीक्ष्ण दृष्टि टिकाकर कहा।

भावहीन मुद्रा में काक ने कहा— देव ! तो दो माग हैं।

कौनसे ?

या तो जूनागढ़ पर विजय प्राप्त कीजिए या छोड़ दीजिए।

'मै जयसिंहदेव जूनागढ़ का घेरा हटा लू ?

तो उस पर विजय प्राप्त करिए। काक ने शांति से कहा।

जयसिंहदेव ने अधीर होकर हाथ पटका किन्तु वह जीता भी तो नहीं जा रहा है और मेरी कीर्ति को कलक लग रहा है।

आपकी आज्ञा की देर है।

'क्या ? तनिक हर्षित होकर जयदेव बोला।

आपको कितने दिनों में जूनागढ़ लेना है ?'

कितने में लिया जा सकेगा ?'

जितने में आप कहें।'

'और यदि नहीं लिया तो ?

उसके पहले या तो जूनागढ़ नहीं या फिर काक नहीं।

जयदेव महाराज प्रसन्न हो गए। काक दृष्टि नीचे किये यह परिवर्तन देखता रहा।

धन्य हो! सच है तेरे समान एक भी नहीं है।

यह तो आप बहुत समय से जानते हैं।

जयदेव का मन प्रसन्न था। वह हँसे। 'काक! तेरी बोली तो वसी की वैसी ही है।

देव! मुझमें जब परिवर्तन नहीं हुआ तो मेरी बोली में कैसे हो सकता है ?

जयदेव हँसा। चाटुकारिता से भरे दरबारी वातावरण में इस समय यह साहस उसे आकर्षक लगा। इतने में मुरार आया।

अन्नदाता! बाहर परमार और उदा महेता आये हैं।

राजा ने काक की ओर देखा। मुस्कराए तू काक को पहचानता है ?

वही आपका विदेशी दास ?

जयदेव हँसा — फिर तेरी जबान सीधी नहीं रहती! यह तो मेरा विश्वासपात्र है।

उससे क्या यह सम्मानित हो जाता है ? देव! आपको हँसी अच्छी लगती हो तो मुझे वस्त्र परिवर्तन कर लेने दीजिये।

हां! यह ठीक है। मुरार जा इसे वस्त्र दे।

'जो आज्ञा।

काक उठा और मुरार के साथ दूसरे दरवाजे से बाहर चला गया।

जयदेव मन-ही-मन हँसे। वर्षों से परशुराम सोरठियों के गढ़ को घेरे हुए पड़ा था और सोरठ का अधिकांश भाग पाटन के आधीन था परन्तु जूनागढ़ में गढ़ को तोड़ना कोई खेल नहीं था। तीन बार जयसिंह देव महाराज ने स्वयं धावा बोला था, किन्तु वह जूनागढ़ का एक कंकड़ भी नहीं हिला सके। इस समय परशुराम त्रिभुवनपाल सोलंकी और मुरारपाल मंडलेश्वर राज्य के इन अग्रगण्य महारथियों ने रा खेंगार को चारों ओर से घेर रखा था फिर भी गिरनार का रा' अपनी स्वतन्त्रता का झंडा उठाये हुए उनका उपहास कर रहा था।

अब जयसिंहदेव का धैर्य टूट गया था। साथ ही न जाने कैसे देवडी के प्रति उनका प्रेम फिर जाग पड़ा था। वर्षों पहले खेंगार द्वारा किया हुआ अपमान उन्हें चुभ रहा था। और जब तक रा न झुकेगा तब तक उनकी कीर्ति में कालिमा बनी रहेगी यही विचार उन्हें रात दिन जलाया करता था।

युद्ध में जाकर पीछे हट जाय तो बड़ी कठिनाई से अर्जित की हुई कीर्ति और महत्ता नष्ट हो जाते हैं—यह बात भी वह न भूले थे। वे बड़ी तयारी के साथ एक ऐसा धावा बोलना चाहते थे कि जूनागढ़ का एक पत्थर भी न बच सके। इसी के लिए खंभात से सेना लेकर उदा महेता को थोड़ी बहुत सेना लेकर मालवे से दादाक को और भृगुकच्छ से काक को बुलाया था। त्रिभुवनपाल परशुराम मुरारपाल उदा दादाक और काक इन छः सहस्त्र युद्धा के प्रचण्ड खिलाड़ियों के नेतृत्व में धावा बोलने का उन्होंने निश्चय किया था। यम के सैनिकों के समान यह दुर्जय योद्धा खेंगार तो क्या गिरनार को भी चूर कर सकते थे ऐसा उनका विचार था।

दादाक अभी नहीं आया था। जयदेव की चलती तो काक को न बुलाता। दूर पड़ा हुआ काक इन योद्धाओं के साथ शोभा नहीं देता ऐसा कुछ विचार उनके मन में था। किन्तु त्रिभुवनपाल और मुरारपाल दानों ने काक को बुला भेजने की बात कही थी। जब जयदेव ने मुंजाल

महेता को भी शस्त्र से सज्जित होने के लिए कहा तो महामात्य हँस पड़े।

'जयदेव ! मैं आऊँगा किन्तु यह आपको शोभा नहीं देगा आपने बहुत कीर्ति अर्जित की है किन्तु इसके बिना और सब व्यर्थ है। मूल राजदेव ने रा को झुकाया आपने लिए अभी यह करना शेष है। आवश्यकता होगी तो रण चढ़ूँगा। निश्चित रहियेगा। वृद्ध तो हो गया हूँ फिर भी अभी चलेगा। कहकर मन्त्री ने अपने वृद्ध किन्तु सशक्त बाहुओं पर दृष्टि डाली।

राजा बड़ा गर्वीला था किन्तु मु जाल महेता के सम्मुख वह बच्चा ही बना रहता था। राजा अपने को छोटा न समझ ले इससे विचक्षण मन्त्री सब ओर ध्यान रखते हुए भी एकान्तवासी थे। जयदेव यह उदारता समझता था। उसने जाने की आज्ञा चाही।

'महाराज ! मन्त्री ने निरपेक्ष भाव से कहा, एक काम करिएगा तो मेरी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

क्या ?

भगुकच्छ के दुर्गपाल को बुलाकर साथ ले लीजिएगा।

किसे काक को ?

हाँ।

दूसरे ही दिन काकभट आज्ञा-पत्र लेकर भगुकच्छ के लिए निकला।

जयदेव दूर पड़े हुए काक को अपने तेज से चकाचौंध कर देना चाहते थे अपने प्रताप से उसे डराए रखना चाहते थे। यह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ यह राजा को अच्छा नहीं लगा। परन्तु काक के साहस शौर्य और चतुराई की उन्हें आवश्यकता थी और उनका सम्मान करने जितनी शक्ति भी उनमें थी।

४१

गर्वित उपेक्षा से जयदेव फिर गद्दी पर लेट गए । सिर के केशों को हाथ से सवारते हुए वह विचार करने लगे ।

विचार करते-करते वर्षों पहले देखी कलाधरा की देवड़ी का मुख याद आया । जयदेव के मुख पर से उदासी जाती रही और रसिकता छा गई । उनकी विशाल आँखों में आतुरता दिखाई पड़ने लगी । काक के साथ वार्तालाप से उठे विचारों ने दूसरी ही दिशा पकड़ी । वह मन ही-मन बड़बड़ाए ।

जूनागढ़ लूं, रा' को समाप्त करूं यह सब तो ठीक है, किन्तु उदा ठीक कहता है—रा' के मरने पर कहीं देवड़ी मिल सकती है ? राज्य विहीन हुई देवड़ी मुझे शत्रु तो समझेगी ही किन्तु देवड़ी को प्राप्त करना ही होगा । जयदेव की भवें तन गईं । उसकी आँखों में रोष प्रकट हुआ । क्यों नहीं प्राप्त होगी ? क्या बात है ? उदा इतना कच्चा नहीं । वह जानता है कि मेरी इच्छा सफल हो जाय तो उसका बेड़ा पार हो जाय । वह चतुर भी है । यदि समझौते से ही देवड़ी प्राप्त हो जाय तो भले रा' कर देकर जूनागढ़ में ही बना रहे । किन्तु इस विषय में मुझे इन खड्गधारियों का विश्वास नहीं । देखूं उदा क्या समाचार लाया है ।

घणी-खम्मा खम्मा, अन्नदाता ! जगदेव का स्वर सुनाई पड़ा ।

जगदेव ! रोष से जयदेव महाराज बोले दूसरा कौन है उदा महेता ! आओ ! जगदेव और उदा महेता आए ।

स्वच्छ और सुन्दर वस्त्रों में सादे किन्तु बहुमूल्य अलंकारों से उदा महेता सुसज्जित थे । उनकी लाल पगड़ी का रंग वैसा ही था जैसा यौवनकाल में हुआ करता था । सब उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं । वह पहले के समान ही हँसमुख थे । उनकी मूछों में काले केश बहुत कम

रह गए थे किन्तु फिर भी उनके मुख पर बुढ़ापे की रेखाएं अधिक न थीं। उसकी दृष्टि का पनापन कुछ अधिक तीखा हो गया लगता था। कभी-कभी तो उनमें भलमनसाहत भी दिखाई पड़ती थी। वह बढ़ती हुई उम्र के सौजन्य से था या अभ्यास द्वारा प्राप्त की गई सरलता के कारण यह निश्चय करना कठिन था।

यह अनुभवी दरबारी गव से चलता था। इसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर उसके स्वभाव और जीवनचर्या की स्पष्ट छाप थी। शांत और स्थिर बुद्धि—न डिग न छूटे ऐसा धर्य—न चूके न विपत्ति में मुंह मोड़े ऐसा शौर्य कभी न समाप्त हो और न कभी कम हो ऐसी मिठास—लगन से प्राप्त किये हुए इन गुणों का प्रतिबिम्ब क्षण-क्षण पर उसकी चाल में बोली में और विचारों में पड़ता था। उसके शृंगार में उसकी बोली में और उसके व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषता थी कि एक क्षण के लिए भी कोई यह नहीं भूल सकता था कि यह जन धम का महास्तम्भ श्रावक शिरोमणि अतुल धन का धनी और अपार सत्ता का अधिकारी है।

हाँ देव आ ही गया। मन्त्री का शांत और मधुर स्वर सुनाई पड़ा। इस स्वर में मोहकता थी किन्तु कहीं कुछ कमी अवश्य है एसा सुनने वाला तुरन्त समझ जाता था।

जगदेव तू कहाँ गया था ? जयदेव ने पूछा।

'अन्नदाता! मैं महल में ?

परमार!' सिर ऊंचा करके राजा ने कहा मैं कोई बहाना नहीं सुनना चाहता। यहाँ दो व्यक्ति बिना आज्ञा के घुस आए इसमें दोष तेरा है।

जगदेव हाथ-में-हाथ कर सिर नीचा किये खड़ा रहा।

बाहर जा।

जो आज्ञा। कहकर जगदेव बाहर चला गया।

'आओ महेता जी! बठो।' राजा ने उपेक्षा से उदा को बैठने के

लिए सम्बोधित किया। उदा महेता ने पीठ पर दुपट्टे को सवारा और गद्दी के नीचे पालथी मारकर बैठ गया।

'क्या कर आए ?

मैं देशल से भेंट कर आया हूं।

तो ?

'परसों वह मुझसे भेंट करने वाला है। हो सका तो रा' और देवड़ी से मैं ही भेंट कर आऊंगा।

महेता ! मुझे इस प्रकार बातचीत चलाने में विश्वास नहीं।

'महाराज ! आप परिणाम देखेंगे तभी समझेंगे।

'तुम भी तो जानते हो रा बहुत हठी।

हम क्या कम हठी हैं ? अन्नदाता ! जो शौर्य से नहीं होता वह चतुराई से हो जाता है।

'ठीक ! किन्तु ध्यान रहे मुझ पर कलंक न लगने पाए।

देव। आपको देवड़ी पर ले और रा झुक जाय—इससे अधिक और क्या चाहिए ?

अधिक तो कुछ नहीं—किन्तु— जयदेव ने कुछ रुककर पूछा—किन्तु महेता वाहड़ क्यों नहीं आया ?

महाराज ! वह अपने नाम का काक है उसे लाना क्या कोई सहज बात है ?

किन्तु वाहड़ उसे ले तो अवश्य आएगा न ?' न समझ पड़े ऐसे उपहास भरे स्वर में राजा ने पूछा।

देव ! अगर कोई यह काम कर सकता है तो बस वाहड़—

वसे काक हमारी सहायता करेगा न ?

उदा महेता सर खुजलाने लगे हाँ करेगा। किन्तु उसके मत से चलेंगे तो !

'महेता ! गुजरात में एक ही व्यक्ति का मत चलता है।

और वह अन्नदाता का। उदा ने वाक्य पूरा किया। बाहर किसी

की पगध्वनि सुनाई दी। दोनों सुनने लगे।

'जगद्देव ? यह कौन है ? जयदेव ने पूछा।

'कृपानाथ ! वाहड़ महेता आए हैं। जगदव ने द्वार पर आकर कहा।

'आने दे।

जगदव और वाहड़ ने प्रवेश किया। वाग्भट यात्रा में सीधा चला आ रहा था उसके मुख पर थकावट और हर्ष दोनों के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

अन्नदाता, घणी खम्मा ! वाग्भट ने प्रणाम किया। पिता जी प्रणाम।

काक को लाया ? उदा ने पूछा।

जयदेव केवल उसकी ओर देखता रहा।

अन्नदाता ! आपकी आज्ञानुसार मैं काक भट को पकड लाया हूँ। वाग्भट ने मुककर हर्षातिरेक से कहा।

किसे ? जयदेव ने चौंककर पूछा।

भटराज काक को। वाग्भट ने कहा।

किसी को उसके साथ बात तो नहीं करने दी न ? उदा ने पूछा।

जयसिंहदेव की एक दृष्टि ही से पिता-पुत्र स्तब्ध हो गए, काक' बाहर है ?

जी हां महाराज !

अन्दर ला देखू तो। राजा ने कहा। उसकी आँखों में क्रोध प्रकट हुआ।

जो आज्ञा महाराज ! कहकर वाग्भट बाहर गया। महाराज की मुखमुद्रा देखकर उदा चिंतित हुआ।

देव ! उसके साथ तनिक सावधानी से काम लीजिएगा। उसने सलाह दी।

जयसिंहदेव कभी-कभी सबसे विरक्त और पहुँच के बाहर हो जाते थे। उस समय उनकी आँखों का तेज उनके निकट सम्बन्धियों तक को दूर ले जा पटकता था और उनके चारों ओर गौरव का अमंद वातावरण छा जाता था। इस समय राजा की बिलकुल वही ही दशा हो गई।

मैंने तेरी सलाह नहीं पूछी थी। उन्होंने पग पटककर उदा से कहा। उदा मौन रहा। वाग्भट खमा को साथ लेकर अंदर आया।

कहाँ है काक ? राजा ने कठोर होकर पूछा। वाग्भट ने आश्चर्य चकित होकर चारों ओर देखा। उदा फीका पड़ गया जयदेव ठहाका मार कर हँस पड़े।

यह है काक ? जयदेव ने तिरस्कार से कहा उदा महेता ! यह काम कोई यदि कर सकता है तो वाहड़— हा ! हा ! हा ! यह और काक ?

खमा हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

क्यों रे तू कौन है ?

अन्नदाता ! मैं तो भटराज का सेवक हूँ।

किसका ? काक का ? राजा ने पूछा।

हाँ देव ! खमा ने कहा।

तू यहाँ कैसे आया ?

मैं क्या करूँ देव ! यह भाई कुछ पूछने लगे थे। पोत डूबने लगा तो मैं तरता-तरता आया और फिर इन्होंने मुझे पकड़ लिया। मैं निःस हाय था कर ही क्या सकता था ?

उदा महेता तुम काक को पकड़ने वाले थे न ?

देव ! ?

तुम्हारा लड़का लाट गया है। मेरी राय है तुम भी वहाँ जाकर कुछ सीख आओ। कटाक्ष से राजा ने कहा।

अन्नदाता ! किन्तु यह काक गया कहाँ ? उदा ने बात करने का प्रयत्न किया।

यही है। यह रहा।' कहते हुए महल में से सुन्दर वस्त्र, और चम
कते हुए शस्त्रों से सुसज्जित होकर काक अंदर आया। उस समय उसका
लंबा शरीर भव्य लग रहा था। उसके तेजस्वी मुख से प्रताप की किरणें
फूटी पड़ रही थीं और उसकी तीक्ष्ण और गहरी आँखों से हंसी टपक
रही थी।

जयदेव पुनः ठहाका मारकर हंस पड़े 'वाग्भट। इस व्यक्ति का
नाम है काक। पहचान ले कहीं फिर भूल न हो जाय। इससे काम
बनाना कविता करने जितना सरल नहीं है। महेता! यह तुम्हारा
पुराना मित्र है। पहचानते हो?

उदा महेता और मुझे न पहचानें? काक ने हंसकर कहा क्यों
खेमा! अच्छा हुआ तू बच गया। और कोई डूबा?'

'नहीं महाराज! खेमा ने कहा।

खमा गुजरात में एक ही महाराज हैं। परमभट्टारक जयसिंहदेव
महाराज। तेरा सौभाग्य है कि आज तुझे उनके दर्शन हो गये। देव!
आज्ञा हो तो जाय—यह थक गया होगा।

और तू भी तो थक गया होगा।

आप जानते हैं कि आपकी सेवा से मैं कभी थकता नहीं।

भटराज! उदा महेता कहते मेरा आंबड़ तो प्रसन्न है न?

हाँ!

'महेता! जयसिंहदेव ने कहा तुम्हारा आंबड़ लगता है वहाँ
सब गड़बड़ कर देगा।

उदा ने तीक्ष्णता से काक की ओर देखा पुराने वैरी के द्वेष का
अनुमान लगाने लगा। काक मुस्करा रहा था।

वाहड़! राजा ने मुस्कराते हुए तिरस्कार से कहा अब तू भी
विश्राम कर। बहुत थक गया होगा। वाहड़ दृष्टि ऊँची न कर सका,
'फिर परशुराम के साथ मँदरड़े जा। आज्ञा मिली।

'जो आज्ञा।' कहकर वाग्भट नमस्कार करके म्लान मुख से वहाँ से चला गया। काक के संकेत करने पर खेमा भी वहाँ से चला गया।

४२

राजा ने बारी-बारी से उदा और काक दोनों की ओर देखा।

'तुम दोनों पुराने शत्रु हो। किन्तु अब मित्र बनना पड़ेगा।' उन्होंने कहा।

'देव! मैं तो काकभट का मित्र ही हूँ।'

'और मैं—जो आपका सच्चा सेवक हो उसके साथ वैर नहीं रखता अन्नदाता।'

'अच्छा तो दोनों बैठ जाओ। देखो अब इस जूनागढ़ का क्या करना है?' काक और उदा दोनों बैठ गए।

'महाराज! उदा ने मिठास से कहा, आप मेरे विचार तो जानते हैं। यदि मैं निरन्तर दबाव डालता रहूँगा तो रा' के लिए समझौता स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा न होगा।'

'काक! तू सारी बात जानता है?'

'नहीं।'

'रा' अब हाथ आया ही समझो किन्तु गढ़ इतना दृढ़ है कि उसे गिराते वर्षों लग जायेंगे। मैं यह युद्ध शीघ्र समाप्त करना चाहता हूँ।' जयदेव ने कहा।

'क्या रा' वह किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार करेगा?'

'उसके लिए अन्य मार्ग ही नहीं है।' उदा ने कहा।

'कितने ही व्यक्तियों को समझौता करने से श्मशान अधिक रुचिकर लगता है।'

तो रा समझौता स्वीकार नहीं करेगा, ऐसा तू मानता है ?

हाँ महाराज मुझे विश्वास है।

"कैसे ? राजा ने कहा।

मैं उसे वर्षों से पहचानता हूँ।

और यदि म करवा लूँ तो ? उदा ने मुस्करा कर कहा।

मैं शस्त्र उठाना छोड़ दूँगा। काक ने मुस्कराकर कहा।

भटराज ! देखना !

किन्तु यह समझौता स्वीकार न करें तो ? काक ने पूछा।

राजा की आँखों में गहन तेज चमक उठा। वह सीधा होकर बैठ गया और दोनों की ओर देखा।

और कर ले तो ? काक ! मैं स्वयं युद्ध में जाऊँगा। और रा को चुटकी से मसल दूँगा। जो मूलराजदेव ने किया क्या वह मैं नहीं कर सकता ? सोलंकियों को निद्रा दनी नहीं पड़ती।

महाराज ! यह मैं जानता हूँ काक बोला और इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि आप समझौते की बात कर रहे हैं। समझौते की बात निर्बल करते हैं शक्तिवान नहीं गढ और रा' दोनों को पराजित करना पड़ेगा।

अन्नदाता को यह मार्ग अच्छा नहीं लगता। उदा ने धीमे-से अपनी बात कही।

जयदेव ने उत्तर नहीं दिया। काक समझ गया—राजा देवड़ी का विचार कर रहे थे।

तो अन्य कोई मार्ग नहीं है। किन्तु देव ! समझौता करना हो तो शीघ्र कीजिए जिससे हम जैसे लोग कुछ समझ सकें।

अरे हाँ ! राजा ने कहा उदा महेता तीन चार दिन में उत्तर लाने के लिए कहता है।

हाँ ! तुम भी चलो तो अच्छा है। प्रयत्न निष्फल होने पर काक भी अपयश का कोई भागी हो तो अच्छा यही सोचकर उदा महेता ने

उदारता दिखाई।

'नहीं' काक गर्दन हिलाकर बोला 'जो नहीं हो सकता एसे काम में मैं भाग दौड़ नहीं किया करता।

'देव ! मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है। रा' भाया तो मान गया है। देवड़ी पर से विश्वास हट जाय इसका भी प्रयत्न किया जा रहा है और देवड़ी के माँ-बाप भी उसे समझाने के लिए तयार हैं। देशलदेव योद्धाओं को भी समझा रहा है। दो-चार दिन में सब कुछ ढीला हो जायेगा तब मैं जा मिलूंगा। जितना बन सका उतना मैंने कर रखा है आगे की भावीश्वर भगवान् के हाथ में है।

छल और प्रपञ्च की इस प्राण रूँध देने वाली परिस्थिति में किस प्रकार जूनागढ़ अपनी स्वतन्त्रता खोएगा—यह योजना बताते-बताते खम्भात के बुद्धिमान मन्त्री की आँखें चमकने लगीं जयसिंहदेव की बात में रस आ रहा था। काक स्थिर नयनों से देखता रहा।

आप स्वयं जायेंगे ? काक ने पूछा।

हाँ तो।

महेता ! वहाँ जाकर जो बात अब तक आप नहीं समझ पाए हैं वह समझ पायेंगे।

'कौन सी ?

'वीर की अडिगता और सती की श्रद्धा।

रा' और—देवड़ी ? जयदेव ने पूछा।

महाराज ! आप उन्हें नहीं पहचानते। जब से ये दो ज्वालाएँ एक-दूसरे से मिली तभी से मैं दोनों से परिचित हूँ। आप उन पर चाहे जितना पानी डालिए, उनकी ज्वाला कम नहीं होने की। और अन्न दाता ! यह याद रखिएगा कि अब यह दो ज्वालाएँ दो न रहकर एक हो गई हैं। त्रिपुरारी स्वयं आपकी सहायता को आएं तो भी आप उन्हें अलग नहीं कर सकेंगे। इन्हें बुझा दीजिएगा तो भी इनके अंगारों की राख अलग होने की नहीं।

मटराज !' उदा ने तिरस्कार से कहा, तुम्हें उनका गुणगान करना क्या बहुत अच्छा लगता है ?'

अकारण ही गुणगान करने की मेरी आदत नहीं है।'

किन्तु जयदेव का मुख लाल हो उठा। उसकी आँखों से अग्नि निकलने लगी। उनके नथुने फूल उठे। भावावेश से काँपते हुए किन्तु स्पष्ट स्वर में बोले।

'और काक ! तू जानता है ? मैं—परमभट्टारक—जयसिंह ने सोलंकियों की कीर्ति की सौगन्ध खाई है कि इन दोनों को साथ नहीं रहने दूंगा। यह देवडी उसकी नहीं—मेरी है। और देखता हूं वह उसे कहाँ तक रख सकता है ?'

काक मौन रहा।

'उदा महेता ! जब तुम सन्देश ले जाओगे तो मैं भी साथ आऊँगा।

देव ! आप ? काक बोला।

मुझे तेरे रा और मेरी देवड़ी को देखना है।

किन्तु आपको कुछ हो गया तो ?

काक ! गर्व से जयसिंहदेव ने कहा 'मुझ त्रिभुवन को कपा देने वाले को—मेरा कोई क्या कर सकता है ? जिसने बावरा पर विजय प्राप्त की वह मनुष्य से कब डरेगा ? मैं जाऊंगा।

किन्तु अन्नदाता ! तनिक मुस्कराकर उदा बोला एक शर्त पर। आप न राजवेश धारण करेंगे और न कुछ बोलगे।

मुझे स्वीकार है।

और देव ! मैं भी एक शर्त रखूंगा ? काक एकाएक कुछ निश्चय करके बोला।

कौन सी ?

अनुचर बनाकर मुझे भी ले चलिएगा।'

जयसिंहदेव हँसे। 'अच्छा ! काक तू भी देखेगा कि तेरे महाराज

जैसा तू सोचता है वैसे नहीं हैं।'

'देव ! मैंने जितना सोचा था उससे बढ़कर प्रतापी तो आप हैं ही, किन्तु मेरा मन जो नहीं मानता।

अच्छा किन्तु जो पद महाराज ने स्वीकार की है वह मुझे भी स्वीकार करनी पड़ेगी। उग्र बोले।

अवश्य ! मुझे इस सांधी का दायित्व लेना भी नहीं है।

देव ! मुरार अन्दर आया।

'क्या ?

'बड़ी देवी का गण आया है काश्मट हों तो वह बुलाती हैं।

जयसिंहदेव मुस्करा दिए, 'काक ! प्रतीत होता है सभी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

देव ! यह भी भाग्य की बात है।

'महेता ! तो तुम भी जाओ। देखना आज की बात का एक अक्षर भी किसी के कानों में न पहुँचे। मुरार, मेरी कंघी तो ला।

राजा राज्यमाता के विश्वासपात्र काक की ओर धांत किन्तु द्वेष भरी छिपी दृष्टि डाल कर उग्र उठ खड़ा हुआ। वह और काक दोनों बाहर गये।

'भटराज ! हमें बीती बातें सब भूल जानी चाहिएं, ठीक है न ! तनिक हँसकर उग्र ने कहा।

मैं आपका स्मरण करता ही नहीं, महेता ! काक ने नमस्कार करके कहा और मीनलदेवी के दूत के साथ हो लिया।

४३

लीलादेवी अपने पति के स्वभाव से पूर्णरूप से परिचित थी, क्रोध में वह क्या कर बैठें यह नहीं कहा जा सकता था । जयसिंहदेव को काक के प्रति कोई विशेष प्रीति तो थी ही नहीं । इतना ही नहीं कुछ अर्थों में उसके प्रति क्रोध और अविश्वास दोनों थे । काक को एकाएक क्या *बुलाया गया इसका भी कारण वह जान न पाई थी ।*

असाधारण शीघ्रता से वह मुंजाल महेता के निवास-स्थान की ओर चली ।

नाम के महाअमात्य थे मुंजाल उनका वास्तविक स्थान तो भीष्मपितामह के समान राज्य के अधिष्ठात देवता के समान था । वह बाहर बहुत कम निकलते थे कभी कभी मन्त्रियों के मन्त्रणा करते समय वह भी उपस्थित रहते थे । फिर भी उनकी दृष्टि चारों ओर रहती थी और उनकी दृष्टि चारों ओर है यह भी सभी जानते थे । पहले के समान वह सबको दूर नहीं रखते थे सभी निडर होकर उनके पास जाते थे । बड़े छोटे सबकी कठिनाइयों को दूर करने में वह अपना समय व्यतीत करते थे और अवकाश मिलने पर राज्य के सभी अमलदारों को बुलाकर उन्हें सलाह और शिक्षा देते थे । कभी-कभी किसी ब्राह्मण या साधु के साथ बैठकर धर्म की चर्चा करते या सुनते । दिन से तीन-चार बार जयदेव उनसे भेंट करने के लिए आते और उनके साथ गुप्त मंत्रणा करते थे । राज्यकाज भार से परे रहते हुए भी राज्यतंत्र का सहज ही संरक्षण करते थे और उस निष्कंटक मार्ग पर चलाते थे । इस महापुरुष के व्यक्तित्व और प्रताप की उपेक्षा करने का कोई स्वप्न *में भी विचार नहीं कर सकता था और सबको इनकी सहायता लेने* की ऐसी आदत पड़ गयी थी कि उनके बिना कोई काम हो भी सकता है यह कोई विचार भी नहीं कर सकता था ।

जिस समय मंगी मंत्री को सूचना देने के लिए गई उस समय पांवों

पर दुपट्टा डालकर मुंजाल शोम महेता को आज्ञा-पत्र लिखने के लिए कह रहे थे। आयु बहुत अधिक होने पर भी मन्त्री का शरीर सशक्त और तेजस्वी था। उनके सिर पर चँदलाई थी, निमूंछ मुख के कारण सन्यासी जैसे लगते थे। बुढ़ापे के कारण मुंह कुछ क्षीण था नाक की ठुड्डी तनिक टेढ़ी हो गई थी और कपाल पर रेखाओं के संयोग ने त्रिपुंड रच दिया था। किन्तु सागर के समान गहन आँखों में प्रभाव वैसा-का वैसा ही था।

महेता जी ! देवी आई हैं।

कौन लीलादेवी ? मुंजाल ने तनिक मुस्कराकर पूछा। उस मुस्कराहट में गौरवशाली वृद्धावस्था की मृदुलता थी।

हाँ।

शोम ! तुम जाओ फिर बुला लूंगा।

सोलंकियों का पीढ़ियों का नागर मन्त्री शोम सुन्दर दृढ़ और चतुर था। उसकी छोटी सी पगड़ी और चमकता हुआ तुर्रा उसके रसिक स्वभाव की साक्षी दे रहे थे। उसकी छाती में मढ़ी लेखनी और कमर में बँधी हुई रत्न-जटित दावात उसके आज्ञा-पत्र लिखने का अधिकार और ठाट-बाट की लालसा दोनों के साक्षी थे।

और शोम ! कल प्रेम कुँवर को बड़ी देवी ने डाँटा था ?'

शोम ने संकोच से नीचे देखा।

घबरा मत, महाआमात्य ने हँसकर कहा 'मैं मीनलदेवी को समझा दूंगा। परन्तु तुम दोनों मेरे पास आना। मुझे कुछ बातें करनी हैं।

जो आज्ञा। कहकर शोम महेता विदा हुआ।

रानी ने कुछ अधीर होकर प्रवेश किया महेताजी ! मुझे तनिक काम है।

आओ न बहन ! मुंजाल ने मुस्कराकर कहा मैंने तो आपको तीन दिन पश्चात् देखा है। कौन करे वृद्ध मनुष्य की चिन्ता ? रानी मुस्कराई। उसे पाटन के आडम्बर भरे दरबारी वातावरण में यह वृद्ध,

विचारशील और सर्वग्राही दृष्टिवाला महामात्य भला लगता था।

महेताजी ! आपको मालूम तो होगा ही कि महाराज ने भृगुकच्छ से काक को बुला भेजा है।

हाँ क्यों ?' मुंजाल के मुख पर रहस्य भरी मुस्कराहट दौड़ गई।

'वह यहाँ आ गया है।

अच्छा !'

हाँ परन्तु यह अच्छा नहीं हुआ।

क्यों ?

महाराज उस पर कुपित हैं उदा उसका कट्टर शत्रु है महाराज का सलाहकार है और इस दरबार में उस जसे सत्यवादी का मूल्य न होगा यह तो स्पष्ट ही है। तिरस्कार भरी शांति से लीलादेवी ने कहा।

मुंजाल के मुखपर गहन मुस्कराहट थी।

एक दो बातों से मुझे लगा कि यहां उसके प्राण संकट में हैं।

मुंजाल गंभीर हो गया— बहन ! आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।

'नहीं। निश्चयात्मक वाणी में लीलादेवी ने कहा। उनकी सुन्दर भवें स्थिर हो गईं उनकी तीक्ष्ण दृष्टि निश्चल हो गई। उनके भावहीन स्वर में आज कुछ अधिक दृढ़ता थी। ऐसे क्षणों में यह कोमल लगती रमणी भयंकर दृढ़ता की मूर्ति बन जाती थी और चारों ओर भय का प्रसार कर देती थी।

महेता जी ! वह बोली आप इस राज्य के स्तंभ हैं इसलिए मैं यहां आई हूं। मैं आपके राज्य के प्रपंच में नहीं पड़ती किन्तु यदि काक को कहीं कुछ हो गया तो आपके राज्य का क्या होगा यह भोलानाथ भी नहीं कह सकते।

अगाध शांति और निश्चल दृढ़ता से भरे हुए स्वर में बोले गए ये लोग भरे शब्द मुंजाल स्नेही पिता की सद्भावना से सुनता रहा।

बहन ! मीठे स्वर में मुंजाल बोला मैंने जो पहले कहा वही फिर कहता हूं—आप व्यर्थ में घबरा रही हैं।

'क्यों ?

'आप काक को नहीं पहचानतीं।

'महेता जी ! आप अपने शिष्य और उनके जगदेव और बाबरा को नहीं पहचानते।

मैं पहचानता हूं सभी को भली भांति पहचानता हूँ ! बहन ! आप अधीर न होइए। बठिए। कहकर मु जाल मुस्कराया और रानी गद्दी पर बठी। काक संपूर्ण नगर को छका द एसा है। और एक बात कहूँ ?' एक रहस्यमरी दृष्टि लीलादेवी पर डालकर मु जाल बोला।

'क्या ?

'आपका काक मेरे लिए पुत्र के समान है।

आप लगता है पुत्र की पूरी-पूरी समाल नहीं करते। तनिक हस कर लीलादेवी ने कहा।

'यह तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा था। बहन ! मेरी चले तो उसे मैं अपना स्थान द परन्तु आप निश्चिन्त रहिए। यदि उसके प्राण सकट में होंगे तो मु जाल फिर शस्त्र हाथ में लेगा। बस ?

'महेताजी ! वह इस समय कहाँ है इसका पता तो लगवाइए।

'अच्छा मैं अभी मीनलदेवी क पास जाकर पता लगाता हूँ।

महेताजी ! अब मैं निश्चिन्त हुई। वह हमारे लाट का रत्न है।

आप जैसी महारानी और काक जसा योद्धा—फिर लाट को बहन रक आप ही कह सकती हैं। जाने से पहले एक बात और कह दूं।

क्या ?'

आप राज्य के प्रपचों में हाथ क्या नहीं डालतीं ?

मुझे रुचता नहीं।

'झूठ बात। स्नेह स हसकर मु जाल ने कहा, 'विधि ने राज्यतत्र चलाने के लिए आपका सृजन किया है और सभी सयोग अनुकूल

दूसरे ही क्षण उसने श्वास प्रारम्भ की प्रटल बन्धनों से बंधी हुई लता ने कठोर सत्य की पवित्रता स्वीकार की। उनकी त्यागवृत्ति ने उन्हें जीते-जी मृत्यु का आस्वादन करवाया।' मुंजाल रुका।

'किन्तु महेताजी! प्रथम बार रानी का स्वर भाव भरा हुआ, इस त्याग से उद्भूत सुवास ने सम्पूर्ण सृष्टि को सजीव भी तो किया?'

कौन कह सकता है? मुंजाल आगे चला किन्तु इस सुवास में लिपटी हुई उनकी पवित्रता पर वह जीवित रहीं— मन्त्री ने सीधा होकर चारों ओर देखा। और जैसी वह जीवित रही वैसी ही मरीं भी— बिल्कुल अकेली। कुछ देर तक मन्त्री मौन रहा उसकी आँखें सजल हो उठीं। बहुत! गला ठीक करके मन्त्री ने कहा बात का सारांश इतना ही है कि बहुत-सी वस्तुयें देखने में स्वाभाविक लगती हैं—किन्तु सचमुच में यदि वे अस्वाभाविक निकल आएं तो दुःख की सीमा नहीं रहती। मैं यह नहीं जानता कैसे—किन्तु इन दो के पाप के कारण राज्य जड़मूल से उखड़ जाता। अतः बेटी! ध्यान रखना। मुंजाल ने स्नेह-से मीलादेवी के कंधे पर हाथ रखा। समझीं न?

कुछ देर तक कोई नहीं बोला। मुंजाल की वाणी पुनः जैसी थी वैसी ही स्वस्थ हो गई रानी! सोलंकी की कीर्ति का आधार आप पर है। रानी उठी नीचे देखती रही फिर एकाएक कुछ निश्चय किया हो ऐसे अपना सिर ऊँचा किया। उसकी आँखों में तेज चमका उसकी छाती तनिक फूली उसके अधर जोर से बन्द हो गए।

महेताजी! उसकी वाणी तलवार की धार जैसी-पैनी थी 'आज आपने अनायास ही पिता का स्थान लिया तो आपको मैं पुत्री के स्नेह-से अपनी बात कहूँ?

बेटी निडर होकर कहो। मैं इस अवस्था में अब भी विवेक से विचार भी कर सकता हूँ। मेरी सलाह से अब तक किसी की हानि नहीं हुई।

'महेताजी ! सलाह के लिए तो स्थान ही नहीं है।' रानी तिरस्कार से कहने लगी। 'एक नर था—एक नारी थी। नारी ने साधना करके मुकुट धारण किया। महेताजी ! संसार में कइयों के भाग फूटे होते हैं। वह नर उसका मूल्य नहीं परख सका—या फिर आपने कही वही बात से वह डरता होगा। उन्होंने अपने मार्ग जाना पसन्द किया। दोनों को एक-दूसरे में विश्वास है—इसके सिवा और कुछ नहीं है—और न कुछ होगा।' रानी की वाणी भावहीन थी। वह हँस पड़ी—हास्य शुष्क और तिरस्कार भरा था। 'महेता जी ! सोलंकियों की कीर्ति के कलंकित होने का तनिक भी भय नहीं।'

मुंजाल उठा, रानी के निकट गया उसके कंधे पर हाथ रखा और स्नेह भीनी वाणी में कहा 'बेटी ! तू तो सचमुच महारानी होने के लिए बना है।'

रानी पुनः हँस पड़ी—पहले के समान नीरस रीति से।

'नहीं बनी होती तो कोई कष्ट न होता।' कहकर उसने मुंजाल की ओर एक कठोर दृष्टि डाली। 'किन्तु बन चुकी हूँ—अब आप और क्या चाहते हैं ?'

गर्व से सिर ऊँचा किए लीलादेवी कमरे से बाहर चली गई। मुंजाल देखता रहा और फिर थोड़ी देर बाद बड़बड़ाया 'अब मैं निश्चिन्त हुआ।'

४४

इतनी उम्र के व्यक्ति में आश्चर्यजनक लगनेवाली आतुरता से मुंजाल घूमा और मंदर के द्वार में से होकर एक कोठरी में गया। कोठरी के निकट एक कमरे में एक दासी बैठी ऊँघ सी रही थी। मुंजाल ने उससे पूछा 'बड़ी देवी कहाँ है ?' दासी एकदम खड़ी हो गई।

फिर गम्भीर मुख से उसने कहा, देवी ! सभी में हमारी शक्ति और हमारी पवित्रता नहीं है। अब तो हमें सोलकी कुल की कीर्ति की रक्षा करनी है—अतएव किसी प्रकार की जोखिम नहीं उठा सकते।

हाँ गम्भीर होकर मीनलदेवी ने कहा अब यह काम यदि तुम्हारा सोचा हुआ करे ?'

करेगा ही। लीलादेवी को विश्वासपात्र पटरानी बनाए रखने के लिए तो वह जान लड़ा देगा देवड़ी वाली बात नहीं बनेगी।

किन्तु जयदेव तो उसके पीछे पागल हो गया है।

पागलपन तो अपने आप दूर हो जायगा। काक है इसलिए हमें बोलना नहीं पड़ेगा। अब लीलादेवी यदि जयन्त को रिझा सकें तो फिर कोई कठिनाई नहीं होगी। आपने प्रेमकुंवर से कहा था ! मैंने भी शोभा से कहा है कि दोनों आकर भेंट कर जायें।

यह लड़की ऐसी आई है कि लीलादेवी को प्रसन्न रखने के लिए आकाश पाताल एक कर देगी।

लीलादेवी के मन को प्रसन्न करना सरल काम नहीं है। मुंजाल ने कहा, और किसी का पगरव सुनकर पूछा—कौन है ?

बापू मैं हूँ वस्ता मटराज आ गए हैं।

मुंजाल और मीनलदेवी की दृष्टि मिली। आने दे, मुंजाल ने कहा। काक ने प्रवेश किया, राजमाता और महामन्त्री को नम्रतापूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

कहो काक ! कैसे हो ? बैठो न ! मीनलदेवी ने कहा मंजरी कैसी है ?

आपकी कृपा से आनन्द में है।

'और कोई बाल-बच्चे हैं ?

हाँ देवी एक पुत्र और एक पुत्री है।

'वह भी आनन्द में हैं न ?

'हाँ, आपके आशीर्वाद से।'

'बहुत दिनों पश्चात् तुमसे मिला।' मीनलदेवी ने कहा।

'आपके प्रताप से मैं लाट में निश्चिन्त हूँ।' काक ने उत्तर दिया।

'तू भी ऐसे ही बोलना सीख गया है क्या?' मुंजाल ने हँसकर काक से पूछा, 'तुझे अधिक निश्चिन्तता प्राप्त भी होती है?'

'महाराज की सेवा में मैं निश्चिन्त ही हूँ माननीय।'

'लाट की स्थिति कैसी है?' मुंजाल ने पूछा।

'सब कुछ ठीक छोड़कर आया हूँ। आँबड़ आया है यही डर है।'

'क्यों?'

'भूल करने का उसका स्वभाव-सा मालूम होता है।' काक की बात सुनकर मुंजाल और मीनलदेवी हँस पड़े।

'उग्र महेता मंजरी को साध्वी बनाना चाहता था यह तू भूलता नहीं मालूम होता।'

'महेता जी! मैं उसे नहीं भूला और वह भी भूलने वाला नहीं है।'

'क्यों उनसे भेंट हुई?'

'हाँ। हम दोनों महाराज के पास थे। वाहड़ मुझे पकड़ने के लिए सोमनाथ आया था। मेरे स्थान पर उसने मेरे सनिक को पकड़कर यहाँ ला खड़ा किया। काक को पकड़ लाने का मान लेते बाप-बेटे के सामने अन्दर के कमरे में से मैं निकला। दोनों के मुख देखने जैसे हो गए थे।'

'और महाराज?' मीनलदेवी ने हँसते-हँसते पूछा।

'महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं।'

'तेरी प्रकृति तो मैं जानता हूँ' मुंजाल ने कहा, 'अब यह तो बता महाराज ने तुझे क्या बुलाया?'

काक मुस्कराया, 'महेता जी! देवी न होतीं तो कुछ पूछता। अभी नहीं पूछूँगा।'

'पूछ ही ले न!' मीनलदेवी ने हँसकर कहा, 'मैं तो राज्य के काम में हाथ ही नहीं डालती।'

'और मैंने भी वानप्रस्थ ले लिया है। जो कुछ कहेगा सुन लूँगा।

मुझे सहनशीलता सीखनी चाहिए न, क्यों ? मुंजाल ने भी हंस कर कहा।

'मंत्रीवर, तो सुनिए ! कितने ही दिनों से मेरे मन में एक संशय था।

'कैसा ?

यह कि इस पाटण का क्या होने वाला है ! रा' को कोई पराजित नहीं कर सकता। उदा महेता राजा के दाहिने हाथ बन बैठे हैं। छोटी देवी का सम्मान मिटता जा रहा है। विदेशियों और पिशाचों के बल पर पाटण का राजा उछलता और कूदता है। पट्टणी योद्धाओं का अपमान होता जा रहा है। इतना ही नहीं प्रशांत लाट में मेरे स्थान पर आंबड़ महेता को भेजा और मेरे जैसे निर्दोष व्यक्ति को पकड़ने या मारने के लिए पग-पग पर आदमी बिठा दिए। मुझे यह सोचने के लिए विवश होना पड़ा कि मुंजाल महेता गए कहाँ ?

मुंजाल महेता ठहाका मारकर हँस पड़े सोचा होगा मुंजाल महेता स्वर्ग सिधार गया ?

मुझे ऐसा ही लगने लगा था काक ने हंस कर उत्तर दिया। किन्तु आज्ञा-पत्र देखकर कुछ-कुछ विचार पलटा।

क्यों ? मीनलदेवी ने पूछा।

'पंद्रह वर्ष पश्चात् एकाएक मेरा भाव बढ़ गया।

कितना अभिमान ! लाट में स्वच्छंद होकर राज्य करने वाले त्रिभुवनपाल को राजा बुलाए नहीं तो क्या करे ?

या फिर होली में नारियल फोड़ने के लिए महामात्य को आवश्यकता पड़ गई हो तो यह और क्या करें ?

मुंजाल की आँखों में प्रशंसा चमक उठी, महामात्य वृद्ध हो गया है।

'फिर आपके साथ मल्ल-युद्ध करने का मुझमें साहस नहीं है। काक ने मुंजाल की ओर दृष्टि करके कहा, देवी ! आपको क्या लगता है ?'

'तू बच्चा नहीं है तेरा बल और बुद्धि वैसी-की-वैसी बनी हुई है यह स्पष्ट दिखाई देता है तेरे जैसा यहाँ दूसरा नहीं है।

'तो अब कब मेरी आहुति देनी है, कहिए ?' काक बोला।

'काक बस ! मुंजाल ने कहा 'देवी सच ही कहती हैं। तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं।

'अब मुझे करना क्या है ? काक ने पूछा।

'जो मुझ समझ पड़े। काक ! राज्य के जीवन में कई बार विचित्र प्रसंग आते हैं। यदि उन प्रसंगों पर विजय पाई तो राज्य की कीर्ति बढ़ती है—नहीं तो विनाश प्रारम्भ हो जाता है। तुमने पूछा कि 'पाटण का क्या होने वाला है ? कुछ नहीं होने वाला है हाँ एक विचित्र प्रसंग आ गया।

'तो आप कुछ करते क्यों नहीं ? काक ने सीधा प्रश्न किया।

मैंने हल निकाला है। रहस्य भरे ढंग से हँसकर महाअमात्य बोले।

क्या ?'

'जो व्यक्ति कर सकता है उसे खोज निकाला है। मुंजाल मुस्कराया।

काक हाथ जोड़कर झुका महेता जी ! जितना आपका विश्वास है उतनी शक्ति भोलानाथ दें बस यही कामना है ! उसने नम्रतापूर्वक कहा।

'काक ! मीनलदेवी ने कहा 'तू थक गया होगा अब तनिक आराम कर। परन्तु जो बातें हुई हैं किसी को उनकी भनक न मिले।

'देवी ! मुंजाल बोला आप इसे भली प्रकार नहीं जानतीं। काक ! जा विजय कर !

काक ने प्रणाम कर विदा ली।

४५

सरोवर के किनारे पारिजात के वृक्ष के नीचे समर्थ खड़ी हुई थी। इस समय उसकी प्रसन्नता का ठौर न था उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे, उसकी आँखों की पुतलियाँ स्थिर नहीं थीं उसके होंठ क्षण मात्र भी शांत न रह रहे थे, उसके सिर के केश भी पवन से नहीं बढ़े रहे थे।

रह रहकर उसके पाँव थिरक उठते थे और वह झुक-झुककर ताली बजा रही थी। वह कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। अभी उसके मन में से वाहड़ के बारे में अपनी बनाई हुई वह पंक्ति गई न थी।

उसने होंठ पर उँगली रखी आने दे। वह बड़बड़ाई मुझे प्रतीक्षा करवा-करवाकर थका डाला है। अच्छी बात है—मैं भी परशु राम की पुत्री नहीं यदि उन्हें थका थकाकर न छका दूं तो! अपने मन में समझते क्या हैं? हम जैसे यों ही हैं। उसने होंठ-पर होंठ चढ़ाया और पुतलियाँ ऊंची कीं। ऐसा करोगे तो हम नहीं बोलने के—बस नहीं—नहीं—बस नहीं।

समर्थ! वाग्भट ने पीछे से आकर कहा। उसके मुख पर असाधारण ग्लानि छाई हुई थी। आँखें उदास थीं। उसके सुन्दर मुख के तेज पर निराशा की कालिमा छा रही थी।

समर्थ ने घूमकर वाग्भट को देखा तो क्रोध भूल गई और एक-दो पग हवा में करी और ताली देकर वही पंक्ति गाने लगी। उसका रोम रोम हँस रहा था। वाग्भट ने एक गहरा निःश्वास लिया।

समर्थ! रुआंसे से स्वर में वाग्भट बोला।

काका आ गया न?' समर्थ ने ऊँचा देखकर, कपाल से केशों को उठाते हुए पूछा।

हाँ।' वाग्भट ने कहा 'किन्तु!

समर्थ सुनने के लिए नहीं रुकी। वह उछलते-कूदते वाहड़ की

परिक्रमा करने लगी और एक-एक स्थान पर दो तालियाँ बजाने लगी।

समय!' खेद से समय का हाथ पकड़कर वाहड़ बोला 'सुन!'

'तुम तो रोया ही करते हो,' कहकर समय फिर परिक्रमा करने लगी।

समय!' अधीरता से वाहड़ बोला 'तू सुनेगी भी?'

'बोलो!' कहकर समय खड़ी हो गई। वह अचानक अधीरता का का कारण न समझ पाई।

समय! वाहड़ ने दुखी हृदय से कहा 'मुझ से वचन का पालन नहीं हुआ।'

'क्या?' एकदम आँखें फाड़कर समय ने पूछा।

मैं काक को नहीं पकड़ पाया।

'कुछ देर तक समय देखती रही—फिर एकदम ताली बजाकर हँसी 'झूठ, झूठे झूठे!'

नहीं सच्ची बात है। वाहड़ ने हास्यास्पद गम्भीरता से कहा।

'झूठ! मेरी दासी कहती थी।

'समय! फटते हृदय से वाग्भट ने कहा, जिसे मैंने पकड़ा वह काक नहीं कोई और था।

समय की आँखें धीरे-धीरे बड़ी हुईं। वह अब समझी, उसका मुख गम्भीर हो गया और श्यामल हो गया।

'तुम काक को पकड़कर नहीं लाए?' कहते हुए वह रो पड़ी ऊँ ऊँ ऊँ—तुमने क्यों नहीं पकड़ा?

वह पुरस्कार वहाँ पहले से ही आ गया था। वाहड़ ने धीरे-से कहा।

अब क्या होगा? हू—हू—तुमने वचन नहीं रखा—हू—हू मैंने अपनी माँ के साथ शर्त की थी हूँ हू मैं हार गई। तुमने यह क्या किया? हूँ हू हू!' कहकर हाथों में मुँह रखकर समय रोने लगी। उसका सुन्दर मुख सिसकियों से ऊँचा-नीचा हो रहा था।

अब कोई तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करेगा।

४५

सरोवर के किनारे पारिजात के वक्ष के नीचे समय खड़ी हुई थी। इस समय उसकी प्रसन्नता का ठोर न था उसके पाव धरती पर नहीं पड़ रहे थे , उसकी आँखों की पुतलियाँ स्थिर नहीं थी, उसके होंठ क्षण-मात्र भी शांत न रह रहे थे उसके सिर के केश भी धन से नहीं बंठ रहे थे।

रह रहकर उसके पाँव थिरक उठते थे और वह झुक झुककर ताली बजा रही थी। वह कुछ-कुछ गुनगुना रही थी। अभी उसके मन में से वाहड़ के बारे में अपनी बनाई हुई वह पंक्ति गई न थी।

उसने होंठ पर उँगली रखी आने दे। वह बड़बड़ाई मुझे प्रतीक्षा करवा-करवाकर थका डाला है। अच्छी बात है—मैं भी परशु राम की पुत्री नहीं यदि उन्हें थका-थकाकर न छका दू तो! अपने मन में समझते क्या हैं? हम जसे थो ही हैं। उसने होंट-पर-होठ चढ़ाया और पुतलियाँ ऊँची की। ऐसा करोग तो हम नहीं बोलने के—बस नहीं—नहीं—बस नहीं ।

समय! वाग्भट ने पीछ से आकर कहा। उसके मुख पर असा धारण ग्लानि छाई हुई थी। आँखें उदास थी। उसके सुन्दर मुख के तेज पर निराशा की कालिमा छा रही थी।

समर्थ ने घूमकर वाग्भट को देखा तो क्रोध भूल गई और एक-दो पग हवा में कदी और ताली देकर वही पंक्ति गाने लगी। उसका रोम रोम हँस रहा था। वाग्भट ने एक गहरा नि श्वास लिया।

समर्थ! रुआंसे से स्वर में वाग्भट बोला।

'काक आ गया न? समर्थ ने ऊँचा देखकर, कपाल से केशों को उठाते हुए पूछा।

हाँ। वाग्भट ने कहा, 'किन्तु !

समय सुनने के लिए नहीं रुकी। वह उछलते-कूदते वाहड़ की

परिक्रमा करने लगी और एक के स्थान पर दो तालियां बजाने लगी।

समर्थ ! स्नेह से समर्थ का हाथ पकड़कर वाहड़ बोला सुन !

'तुम तो रोया ही करते हो' कहकर समय फिर परिक्रमा करने लगी।

समय ! अधीरता से वाहड़ बोला, तू सुनेगी भी ?

बोलो ! कहकर समर्थ खड़ी हो गई। वह बेचारा अधीरता का का कारण न समझ पाई।

समय ! वाहड़ ने दुःखी हृदय से कहा 'मुझ से वचन का पालन नहीं हुआ।'

'क्या ? एकदम आँखें फाड़कर समर्थ ने पूछा।

मैं काक को नहीं पकड़ पाया।

'कुछ देर तक समर्थ भेंसती रही—फिर एकदम ताली बजाकर हँसी 'झूठे झूठ झूठ !

नहीं सच्ची बात है। वाहड़ ने हास्यास्पद गम्भीरता से कहा।

झूठ ! मेरी दासी कहती थी।

समय ! फटते हृदय से वाग्भट ने कहा जिसे मैंने पकड़ा वह काक नहीं कोई और था।

समय की आँखें धीरे-धीरे बड़ी हुईं। वह भय समझी उसका मुख गम्भीर हो गया और रुआंसा हो गया।

तुम काक को पकड़कर नहीं लाए ?' कहते हुए वह रो पड़ी ऊँ ऊ ऊँ—तुमने क्यों नहीं पकड़ा ?

वह चुपचाप यहाँ पहले से ही आ गया था।' वाहड़ ने धीरे-से कहा।

अब क्या होगा ? ह—हं—तुमने वचन नहीं रखा—ह—ह मैंने अपनी माँ के साथ शर्त की थी हं हं मैं हार गई। तुमने यह क्या किया ? हं ह हं ! कहकर हाथों में मुँह रखकर समय रोने लगी। उसका सुन्दर मुख सिसकियों से ऊंचा-नीचा हो रहा था।

अब कोई तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करेगा।'

भाग्य में न थी इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था।

समर्थ को एक सरस विचार आया था और जब तक उसे करके न देखा जाता तब तक उसे चैन पड़ने की न थी।

उसे इस न पकड़े गए काक के प्रति द्वेष हो आया। उसने अपने पिता को इस काक की प्रशंसा करते हुए सुना था और यह भी सुना था कि इसको जो भी पकड़ेगा उस पर राजा बहुत प्रसन्न होंगे। इसी से उसने और वाहड़ ने यह युक्ति रची थी और वाहड़ ने उदा महेता से काक को लेने जाने की आज्ञा माँग ली थी। यदि वाहड़ काक को पकड़े तो राजा प्रसन्न हों परशुराम की वाग्भट पण्डित के शौर्य के विषय में अच्छी भावना हो जाए तो समर्थ को वाहड़ चाहने की कुछ बात की जा सके। पहले शम्भु महेता के पौत्र के साथ उसका ब्याह होने वाला था किन्तु गतवर्ष वह युद्ध में मारा गया था। तब परशुराम जैसा गर्विष्ठ योद्धा अपने कुल की महत्ता के योग्य वर की खोज में था किन्तु पाटण में बहुत ही कम कुलों में वह योग्यता होने और कुटुम्बों में उचित आयु के अविवाहित युवकों का अभाव होने के कारण यह खोज अब तक सफल नहीं हो पाई थी। समर्थ यह सब जानती थी किन्तु वाहड़ जैसे अच्छे आदमी को उसके पिता ने अपनी पुत्री को क्यों नहीं दे रहे थे यह उसकी समझ में नहीं आया।

६

जगदेव परमार दुर्जन या नीच मनुष्य नहीं था। वह वीर योद्धा था और स्वामि भक्ति निभाने के लिए हर क्षण तत्पर रहता था। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर जयसिंहदेव उसे मालवे से साथ ले आये थे और पाटन में उसे धन, मान, उपाधि, और चावड़ा जैसे ऊँचे कुल की पत्नि

आदि सभी दिये थे। उसे पसंद करने और अपना दाहिना हाथ बनाने में जयसिंहदेव का गहरा स्वार्थ था इस बात को जगदेव नहीं जानता था।

गर्विष्ठ पट्टणी योद्धाओं और मंत्रियों पर सत्ता जमाने के लिए उनसे नितान्त स्वतंत्र होने का सिद्धान्त जयसिंहदेव के मस्तिष्क में घर कर गया था। बाबरा को जीत लेने से और भूत समझ जाने वाले बाबरा की सहायता से साधारण लोग उन्हें अपार्थिव और अजित सत्ता का धनी समझते थे। किन्तु योद्धाओं सामंतों और मंत्रियों के प्रभाव को दबाना उतना सहज नहीं था। कई महामंत्री और महारथी एक दूसरे के संबंधी थे और एक-दूसरे से जी भरकर ईर्ष्या करते थे किन्तु राजा के कहने पर वह एक-दूसरे से लड़ने के लिए तत्पर न होते थे। राजा को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने जगदेव परमार को अपना अंग रक्षक नियुक्त किया और तीन-सौ सशक्त मालवियों को उसके आधीन कर दिया। महल में प्रवेश करना हो राजा से भेंट करनी हो कुछ प्रार्थना करनी हो तो उसके लिए जगदेव से भेंट किए बिना कोई और चारा नहीं था। किसी को सीख देनी होती या किसी को डराना होता तो राजा की आज्ञा यह स्वामि भक्त सिर आंखों चढ़ाता था। उसे राजा की कृपा छोड़कर और किसी की चिन्ता नहीं थी। पाटण या उसके राज तंत्र में या उसके ठाट-बाट में राजा की सेवा के अतिरिक्त उसे और किसी में आनन्द नहीं आता था। राजा और परमार के बीच किसी व्यक्ति और उसके विश्वासपात्र निर्जीव शस्त्र के बीच जैसे प्रीति हो जाती है वैसे ही प्रीति थी।

राजा के और अपने मध्य में यह धारवाली बाढ़ खड़ी देखकर पाटण के महापुरुष पहले तो कुढ़े किन्तु राजा के हठी और महत्वाकांक्षी स्वभाव से सभी परिचित थे। इसलिए सोये सिंह को न छेड़ने के उद्देश्य से सभी ने परमार से भाईचारे का व्यवहार स्थापित कर लिया। यदि कभी कभी राजा की इच्छानुसार जगदेव अपनी सत्ता चलाता था तो वह उधर से आंखें ही मीच लेते थे। इतना ही नहीं कभी-कभी तो वह इस

प्रकार व्यवहार करते थे मानों डरते हों कि कहीं जगदेव बिगड़ न खड़ा हो। फलस्वरूप उसका गर्व और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

राजा ने परमार को जब भटराज बनाया तब तो कोई नहीं बोला किन्तु जब सेनापति का पद देने की बात उठी तो सभी में खलबली मच गई। फलस्वरूप मीनलदेवी बीच में पड़ी और यह आशय पूरा न होने दिया। किन्तु राजा जब मन्त्रियों के साथ सलाह करता था तब परमार अधिकतर वहीं उपस्थित रहता था। जगदेव के कारण मालवी योद्धाओं ने पाटण में घर करना आरम्भ किया और छोटे-बड़े पदों का उपभोग करने लगे थे और इस प्रकार राजा की पट्टरानियों का गर्व कम करने की लालसा बढ़ती गई।

बलवान् महत्वाकांक्षी हठी और प्रतापी राजा के इस मान्य और विश्वासपात्र योद्धा को सभी विदेशी किराए का प्रत्येक प्रकार का काम करने वाला दास समझकर मन ही-मन तिरस्कार के वाक्य कहते थे, किन्तु किसी की ऐसी मजाल नहीं थी जो उसके सामने एक शब्द भी बोल सके एक पग भी बढ़ सके।

राजा ने समझा मेरी सत्ता पूर्ण हो गई, जगदेव ने समझा कि उसका स्थान निर्विघ्न हो गया दरबारियों को लगा कि उनके और राजा के बीच का निर्दोष व्यवहार समाप्त हो गया। यह नूतन क्रम सदा का है और सदा रहेगा ऐसा सभी ने मान लिया—और बर्बरक पर विजय पाने वाले परमभट्टारक महाराजाधिराज देवी और दुर्धर्ष सत्ता के अधिकारी हैं यह भी सब मानने लगे।

जयदेव परमार की भी यही मान्यता थी इसलिए आज उसे चैन न पड़ा। वह राजा के कमरे के बाहर अपनी चौकी पर बैठकर भवें तान रहा था। आज उसे बहुत सी बातें अच्छी न लगीं। महल में कोई ब्राह्मण के वेष में उसके बिना जाने घुस गया उसने उसके सैनिक को बांधा वह उसके जाने बिना रानी से भेंट कर आया, रानी ने उसे अपमान करके निकाल दिया। उसके बिना जाने दो व्यक्ति महाराज से

भेंटकर धाए। उसके बिना जाने ही काक राजा के कमरे में जा घुसा और राजा का मान्य हो गया और उसे बिना बुलाए ही राजा ने उदा और काक के साथ मन्त्रणा कर ली। उसे यह सब असाधारण और अस्वाभाविक बातें अच्छी न लगीं।

इस नवागन्तुक काक के प्रति उसे अरुचि हो गई। उसने इस व्यक्ति के विषय में बहुत परिचय प्राप्त कर लिया था और लोगों में फली लोक कथाएं भी बहुत सुनी थीं। किन्तु उन्हीं कथाओं में उसे श्रद्धा न थी। पाटण क बहुत-से दण्डनायकों मन्त्रियों और सेनापतियों के विषय में ऐसा ही सुना था किन्तु कोई उसके सामने खरा न उतरा और इस समय इस नए व्यक्ति को उसका स्थान बताने के लिए उसके हाथ अकुला रहे थे।

सामने खड़े हुए एक सनिक को उसने बुलाया— नेमा!'

'आज्ञा बापु!'

'शम्भू को बुला दो!

जी' कहकर नेमा शम्भू को बुला लाया। शम्भू परमार का काम करता था और उसकी ओर से देख रेख करता था।

हो काकभट को उसका निवास-स्थान दिखा आया ?

हां किन्तु उन्होंने वह स्थान पसन्द नहीं किया।

क्यों ? जगदेव ने चकित होकर पूछा।

'उनके लिए वस्ता ने कमरा खोल दिया है।

कौन सा ?'

सोम महेता जिसमें लिखते हैं उसक निकट वाला कमरा।

किन्तु मैंने जो कमरे खुलवा दिये थे उनका क्या ?'

'वह कहते हैं कि मुझे अकेले को अधिक की क्या आवश्यकता! कहना चाहिए था न कि महल का प्रबन्ध मेरे हाथ में है।

: मैंने कहा तो हंसकर बोले कि मैं तो ऐसे कमरे में पड़ा हूं कि किसी को आपत्ति नहीं होगी।

शम्भू ! वस्ता को बुला ला । शम्भू गया ।

उसे कि आज का सूर्य उदय होने के साथ-साथ झमट भी लेता आया है । राजमहल का संपूर्ण प्रबन्ध वही करता था और उसमें परिवतन करने का किसी में साहस नहीं था । उस पर मुंजाल महेता का नौकर वस्ता इस प्रकार काक के लिए प्रबन्ध करे यह उसे अपने गौरव और सत्ता पर चोट करने जैसा लगा । उसने काक के लिए अपने निवास स्थान के नीचे क भाग में दो कमरे खोल दिये थे ताकि उसकी दृष्टि उसपर रहे । किन्तु वह कमरा तो ऊपर था जहाँ से महाराज रानियाँ मीनलदवी मुंजाल आदि के निवास-स्थानों में तुरन्त आया जा सकता था । वह अपनी मूछें दाँतों के बीच में रखकर चबाने लगा

शम्भू वस्ता को ले आया । जगदेव राजमहल के कई लोगों को दूर-ही-दूर रखता था । वह अधिकतर वद्ध थे और ऐसा कहा जाता था कि वह मुंजाल महेता के विश्वासपात्र आदमी हैं । हो सके जहाँ तक मुंजाल या उसके आदमियों पर खुले रूप से अधिकार जमाने में सार नहीं था एसी प्रेरणा जगदेव को बड़ी विचित्र रीति से हुई थी । और उसी प्ररणा के अनुसार वह आजकल चलता भी था किन्तु इस समय उसे लगा कि वस्ता उसकी सत्ता के क्षेत्र में अनधिकार चेष्टा की है ।

वस्ता वृद्ध था किन्तु चतुर था । मौन रहकर और हाथ जोड़कर उसने प्रणाम किया ।

वस्ता ! महाराज की आज्ञाओं का कुछ मान है ?

मैं समझा नहीं ?

महाराज की आज्ञा है कि महल की व्यवस्था मेरे सिवा कोई न करे ।

मुझे मालूम है ।

तो आज यह आज्ञा तूने कसे भंग की ?'

मैंने कहाँ भग की ? कुछ चकित होकर वस्ता ने कहा ।

मैंने सुना है तूने काकभट के लिए महल में कमरा खोल दिया है ।

ओहो ! वस्ता हँसा भटराज ! यह तो ऐसा हुआ कि काकभट

जी महाराज के साथ भोजन करके लौटे तो उसके लिए बैठने का भी स्थान नहीं था। मेरे पास उस कमरे की कुंजी थी तो मैंने खोल दिया। भटराज ! उन थके-मांदे अतिथि के लिए इतना-सा करना अपराध हो गया ? वस्ता ने निर्लेप बात कही।

बिस्तर आदि किसने दिया ?

मैंने।

किसकी आज्ञा से ?

अतिथि-सत्कार करने के लिए आज्ञा की आवश्यकता होती है। सादगी से वस्ता ने कहा।

तुझे यह सब अधिकार किसने दिया ? आँखें निकालकर जगद्देव ने पूछा। उसे लगा मानो वह वृद्ध उसकी हँसी उड़ा रहा हो।

ऐसा करने के लिए क्या अधिकार की आवश्यकता होती है ? वस्ता फिर मुस्कराया।

'अच्छी बात है। जाकर काक भटराज को कह आ कि उनके लिए मैंने नीचे चौक में दो कमरे खोल दिए हैं वहीं आकर रहें। तेरा बताया हुआ कमरा उनके जैसे बड़े आदमियों को शोभा नहीं देता।

बापू ! यह आपके गणों का काम है—मेरा नहीं। महल का प्रबन्ध आपके हाथ में है। वस्ता ने उपेक्षा से कहा।

तू और मेरे गण सभी महाराज का नमक खाते हैं।

खाते हैं।

तो यह काम तुझे करना ही पड़ेगा।

'नहीं। वस्ता ने दृढ़ता से कहा।

'क्यों नहीं ? जगद्देव गरजा।

मैंने कारण कभी का बता दिया है।

'तू मेरी आज्ञा का अनादर करता है ?'

हाँ।

किसी की आज्ञा से या अपनी इच्छा से ?' जगद्देव ने पूछा।

स्पष्ट दिखाई दे रहा था। जहाँ तक सम्भव हो वह मुंजाल से भेंट नहीं करता था और वह मुंजाल ही कभी उसे बुलाता था। जगदेव का मुंजाल से परिचय नहीं था किन्तु राजा को उसे अत्यन्त मान देते देख कर वह भी उससे सम्मान के साथ दूर ही रहता था। आज जब उसके गर्व पर चोटें पड़ रही थीं तो इस प्रकार का बुलावा उसे अच्छा नहीं लगा।

कहना तनिक काम में लगा हूँ फिर आकर भेंट कर लूंगा। कुछ अभिमान से जगदेव ने कहा।

उसकी साधारण स्थिरता उसमें होती तो परमार इस प्रकार कहने का स्वप्न में भी विचार नहीं करता। किन्तु उसका मस्तिष्क ठिकाने न था। यह उत्तर सुनकर काक और अनुचर दोनों चकित हो गए।

आपने क्या कहा ? अनुचर ने स्पष्ट पूछा।

मैं फिर भेंट करूंगा। हरएक शब्द पर जोर देकर जगदेव ने कहा।

काक सीधा होकर कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा तुम क्या कर रहे हो यह भी मालूम है ? उसने धीरे से पूछा।

हाँ क्यों ?

'मुंजाल महेता बुलाएँ और कोई न जाय इसका अर्थ क्या होता है मालूम है ?'

मैं जानता हूँ कि वह महामात्य हैं। परन्तु मुझे महाराज के जाना है।

काक स्थिर नयनों से देखने लगा।

जगदेव ! चले आओ ! उसने कठोरता से कहा इतने वर्ष यहाँ रहकर भी तुम मुंजाल को नहीं पहचानते यह आश्चर्य की बात है। जाओ नहीं तो यह अनुचर फिर आयेगा।

काक के बोलने का ढंग इतना गंभीर और सत्तापूर्ण था कि जगदेव मौन होकर अनुचर के पीछे हो लिया। उसका गर्विष्ठ हृदय फटा जा रहा था।

मृणाल ने मधुर मुस्कराहट से उसके प्रणाम को स्वीकार किया और जगदेव की ओर बिना देखे ही कहा—तनिक ठहरो। मैं यह आज्ञा पत्र पढ़ लूँ। कहकर उसने क्षोभ से आज्ञा पत्र लेकर धीरे धीरे पढ़ना आरम्भ किया। जगन्देव को पट्टणियों की रीति-नीति के प्रति बहुत तिरस्कार था और विशेषकर मंत्रियों के प्रति तो उसकी अरुचि इतनी थी कि बड़ी कठिनता से ही वह उसे दबा पाता था। किन्तु इस शान्त साम्राज्य के सामने वह कुछ घबराया। गर्व से उसने अपना क्षोभ दबा दिया।

परमार! मिठास से ऊपर देखकर मृणाल ने कहा तुम्हारा आदमी वस्ता को बुला ले गया था। वस्ता को पहचानते हो न? मन्त्री की मस्कराहट हृदय को हरने वाली थी।

हाँ! तनिक गर्व से होंठ वक्र करते हुए जगदेव ने कहा।

मन्त्री की मुस्कराहट जाती रही। उसने शांत स्वस्थता स जगन्देव के मुख की ओर देखा। जगन्देव ने घमण्ड में चेतना खोकर तिरस्कार से मुस्करा उठा।

एक घड़ी में वस्ता जहाँ भी हो वहाँ से खोजकर लाओ। शांति से मृणाल ने कहा।

'महेता जी!— जगदेव बोलने लगा तो क्षोभ से या अभिमान के आवेग में स्वर मोटा और विनयहीन हो गया। वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों को ऐसा लगा मानो यमराज के पदार्पण से जैसा कम्पन होता है वैसा ही कम्पन हुआ। मन्त्री का विशाल सिर गर्व से ऊंचा उठा। सज्जनता से शोभायमान उसके मुख पर निश्चल गौरव विराजमान था। उसके कपाल पर शांति थी किन्तु आँखों में मानो ज्वालामुखी फटे हुए थे। उनकी ज्वाला देखकर जगदेव की जिह्वा तालू से चिपक गई।

परमार! जिस स्वर से पाटण का चतुरंग दल काँपता था उसमें वह गरजा। उसमें प्रभाव था गर्व था, और दुःसह घात सत्ता थी, एक घड़ी में—एक घड़ी में या तो वस्ता खोजकर लाओ अथवा अपने शस्त्र

मालवी सैनिक को एक ब्राह्मण ने बांधा—और ब्राह्मण रानी के आवास में चला गया। राजा को बहुत ही हंसी आ रही थी मानो कुछ समझ ही में न आ रहा हो।

किन्तु ब्राह्मण हा—हा—मुरार यह तो नितांत गप्प है। जगदेव का मुख हंसी से लाल हो गया। और रानी बोला बुद्धिमान रानी हा—हा ब्राह्मण! गप्प नितान्त गप्प।

अन्नदाता! मानभग और रोष के कारण फूले हुए मुख से जग देव बोला। उसकी वाणी रोते हुए बच्च की सी थी गप्प नहीं सच्ची बात है।

क्या सच्ची बात है? राजा ने बड़ी कठिनता से हँसी रोककर कहा एक ब्राह्मण तेरे सनिक को बांधकर अन्दर चला गया। हा-हा परमार! कृत्रिम गम्भीरता से राजा बोला महल की देख भाल करता है तू? यह ब्राह्मण गया कहाँ?

'महाराज! मैं उसी को खोज रहा हूं किन्तु मिलता ही नहीं।

अररर! महाराज हँसी न रोक सके।

परमार! यह क्या हा हा होने लगा है?

अन्नदाता! आप हंसते हैं और मेरे प्राण सूखते हैं।

और यदि मैं न हसू तो तू जीवित रहेगा? ले जगदेव यह चुप हुआ तेरे प्राण क्यों सूख रहे हैं—कह डाल। कहकर राजा पुन हँसा।

देव! देव! आप हंसते हैं—उधर आपकी सत्ता का आज सत्या नाश हो गया।

हाय हाय सच! सहानुभूति दिखाते हुए राजा ने कहा।

सुनिए अन्नदाता! एक ब्राह्मण ने हमारे एक मालवी सैनिक को बांधा—

'यह तो जानता हूँ।

फिर वह रानी के कमरे में अन्तर्धान हो गया।'

'यह भी जानता हूँ।

'और रानी से अब मैं पूछने गया तो महाराज ! मुझे दुत्कारकर निकाल दिया।

अरे ! मेरे वीर परमार को ? मैं रानी से समझ लूंगा।

किन्तु देव ! और सुनिए। वस्ता ने मेरी आज्ञा बिना काक भट राज के लिए कमरा खोल दिया ।

'वस्ता है ही ऐसा।

मैंने वस्ता को बन्दी बना लिया ।

अच्छा किया।

और मैंने भटराज के लिए नीचे कमरे खलवा दिए तो उन्होंने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया।

यह काक भी बहुत हेकड़ीबाज है। राजा ने फिर हंस कर कहा।

'और देव ! मुझे मुंजाल महता ने बुलवाया।

क्यों ? राजा ने गम्भीर होकर पूछा।

मेरा सबके सामने अपमान किया है।

क्यों ?

'मुझसे कहा है कि घड़ी भर में वस्ता को ले आ नहीं तो अपने शस्त्र और आज्ञा-पत्र सोम महेता को सौंप दे।

क्या कहता है ?

देव ! इसमें मेरी प्रतिष्ठा नहीं जाती आपकी जाती है। आपकी सत्ता भंग करने की यह युक्ति है।

'परमार ! मैं रानी और काक दोनों को समझ लूंगा किन्तु वस्ता को छोड़ दे।

'किन्तु महाराज ।

राजा ने धीरे-से कहा 'परमार ! शस्त्र और आज्ञा-पत्र अच्छे नहीं लगते क्या ?'

जगदेव ने घबराकर राजा के सामने देखा। राजा ने जो कुछ कहा वह स्पष्ट न सुन सका जैसा कुछ लगा।

देव ! एक शब्द में ही मानो मार्मिक धिक्कार निहित थी।

जगदेव ! मेरी मान और सत्ता को छोड़ दे।

परमार निराश हो गया। उसने रूठे बच्चे-सा मुंह बनाकर कहा देव ! आपकी बात आप जानें। मैं तो यही करूंगा।

जगदेव ! देख इसके स्थान पर मैं तुझे कल अधिक सत्ता दूंगा। और अब काक भी आ गया है अत तुझे अधिक सत्ता की आवश्यकता पड़ेगी ही नहीं तो उसे वश में रखना दूभर होगा।

'लगता तो ऐसा ही है।

जगदेव ! अपनी अश्वशाला में से अच्छे-से अच्छे दो घोड़े काक के लिए तयार रखना और अपने आदमियों से कह देना कि उसके आने जाने में बाधा न दें।

जो आज्ञा।

और कल प्रात काल हम चलकर चुपचाप शिविर की दशा देखने चलेंगे।

जो आज्ञा।

परमार ! बिल्कुल घबराना मत। मेरी सत्ता को कोई छू भी नहीं सकता।

जगदेव ने झुककर प्रणाम किया और विदा हुआ।

'मुरार !' राजा पुन हुए पड़ा रानी को सूचना दे आ कि आज मैं उनके आवास ही में भोजन करूंगा और सोऊंगा।

जो आज्ञा !

प्रेमकुंअर नागर मंत्री सोम की पत्नी थी। वह लम्बी गोरी और तनिक स्थूल थी। उसकी आँखें विशाल और भावपूर्ण थीं उसके होंठ कुछ मोटे और विलास की ओर झुकाव प्रदर्शित करते थे। उसके गालों पर यौवन की लाली थी उसके नन्हें कपाल पर बड़ी-सी चन्द्ररेखा शोभा दे रही थी, और उसके होंठों से पान की लालिमा कभी अस्पष्ट न होती थी। उसके शरीर की रेखायें भरी हुई थीं—ऐसा लगता था मानो रति का वह मूर्तरूप हो।

पाटण के प्रथम नागरकुल के रत्न की पटरानी की शोभा दें वसे उसके हाव भाव थे। वह विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करती और शृंगार करती थी। वह धनाढ्य आनन्दमय और गर्विष्ट कुल की शोभा देने वाले ठाट-बाट से रहती थी। रानियों से भी उसकी वेश भूषा अधिक आकर्षक लगती थी और उसके आभूषणों की चमक के सामने महाराज का शृंगार भी फीका पड़ जाता था।

यौवन का उल्लास उसे सदा आकर्षित करता था। वह चलती तो उसका शरीर झूमता उसकी कमर लचकती और उसके पांव थिरक उठते—तब ऐसा लगता मानो धरती कांप रही हो। उसकी आँखें दो क्षण के लिए भी एक-सी न रहतीं वरन नए-नए भावों से दीप्त होती रहती थीं। कोई भी उस पर दृष्टि डालता कि 'नखरानी स्त्रियों का प्रथम लक्षण तुरन्त दिखाई पड़ जाता उसका घूंघट कहाँ-से-कहाँ खिसक जाता था और दर्शक को ऐसा लगे मानों लज्जा से उसे ठीक करने के लिए एक गयी हो वह ऐसा प्रयत्न करती थी।

बाहर के संसार को वह कुछ गिनती ही नहीं थी। उसके अन्तर में पहले वह स्वयं थी फिर उसके राग रंग थे फिर वस्त्राभूषण थे और फिर उसका महेश्वर अर्थात् सोम मंत्री था। अपने को मध्यबिन्दु मान कर अपने से अपने महेश्वर तक त्रिज्या खींचकर जो वृत्ताकार बनाती

उसमें स्वर्ग मर्त्य और पाताल—यह भव और वह भव—सभी समा जाते।

आज प्रेमकुंअर क्रोध में थी। मीनलदेवी ने उस पर लीलादेवी आदि रानियों को क्रीडाप्रिय बनाकर बिगाड़ देने का आरोप लगाया था। अब इसमें उसका क्या अपराध? रानियाँ उसके जैसी रसिक न हों या उसके महेता जैसा स्नेही पति उन्हें न मिला हो तो उसमें इन बचारी का क्या दोष? और फिर बिना सोच के उस पर आक्षेप! मीनलदेवी में इस उम्र में तो अधिक बुद्धिमानी होनी चाहिए। उन्होंने तरुणावस्था में क्या क्या किया होगा! अब इतने वर्षों पश्चात उन्हें भी कहने की सूझी। लोग यौवनावस्था में आनन्द न करें तो क्या पति और ससार को छोड़ने के काम करें।

वह लीलादेवी का कमरा सजा रही थी। समर्थ उसकी सहायता कर रही थी। समर्थ उसे अच्छी नहीं लगती थी। वह उस बहुत बातूनी समझती थी। क्योंकि वह उसे दिन भर उससे ससार की बातें पूछती थी। इतनी बड़ी होकर जो बिना वर के इधर उधर भटकती फिरे उसे और क्या कहा जाय!

मीनलदेवी से बदला लेने का एक मार्ग ही उसे सूझ पड़ा। यदि सभी रानियों को वह क्रीडाप्रिय बना दे तो मीनलदेवी की खीझ का पार न रहेगा और अपने बुढ़ापे में सभी को वृद्ध बनाने की इच्छा रखने वाली से बदला भी पूरा-पूरा ले लिया जायगा। इस युक्ति का प्रयोग उसने लीलादेवी पर ही करने की सोची क्योंकि वह बहुत गर्वीली उदासीन और गम्भीर थीं।

उनको ऐसा बनाऊं कि कोई क्या कहे प्रेमकुंअर बड़बड़ाई और अधिक उत्साह से उसने कमरा सजाना आरम्भ किया।

यह समर्थ न जाने किस घड़ी में जन्मी है। हर क्षण कटकट कटकट ही किया ही करती है यह बड़बड़ाई।

किन्तु जब समय को बोलने की इच्छा होती थी तो सुनने वाले की

ह चिन्ता न करती थी ।

प्रमा मामी ! आज ऐसा मजा आया ! रानी देवी चकरा गईं ।
धीमे स उसने कहा ऐसी चकराई —एसी— कहकर समय हसने
लगी ।

किस प्रकार ? बिना ध्यान दिए प्रमकु मर ने पूछा ।

आज उसक कमरे में एक व्यक्ति निकला ।

'है ! प्रेमकु मर न एकदम ध्यान देकर आश्चय स पूछा ।

'अन्दर क कमरे में घुस गया था ।

फिर ?

'मैंन उसे दूसरे रास्त से जान दिया समय हसने लगी 'एसा
मजा' ।

हिक्रात पर फूल टाँगते हुए प्रमकु मर ने पूछा— कसा ?

अरे एसा ।'

प्रमकु मर फूल टाँगना छोड़कर समर्थ क निकट गई ।

'कसा ?'

देखी थाई किन्तु वह कम मिलता ? ऐसी घबराईं कि स थामी
हो गई ।

तुने कैसे जाना ?

'मैं लौटकर फिर आई न ?

हाँ ! प्र मकु मर ने कहा और मन-ही मन बोली अब समझी
कि देवी ऐसी उदास-उदास क्यों रहती है । फिर जोर स बोली कौन
था वह ?

'था कोई पुजारी ब्राह्मण ।

मथुरे की । मर यहाँ से । धारणा सच न निकलने से प्रेमकु मर
ने कहा ।

देखो प्रेमा मामी ! मैं आपको मरने के लिए कहूँगी तो कैसा
लगेगा ? मुझ तो वह देती हा । होंठ-पर होंठ रखकर समय बोली—

ग्रौर मैं आपको आपके सभी को ।

इतने में एक अपरिचित व्यक्ति आया । 'महारानीदेवी के पास समय है ?

क्यों ? प्रेमकुंअर ने पूछा ।

काक भटराज भेंट करना चाहते हैं ।

का—क ! समर्थ चीत्कार कर उठी ।

क्या बात है समथ ? प्रमकुंअर कठोरता स बोली बोलना आता है या नहीं ? ग्रौर फिर क्षमा की ओर घूमकर कहा ठहरो भाई मैं पूछ देखती हूँ । यह कहकर प्रमकुंअर अन्दर गई ।

कक्ष में जाकर प्रमकुंअर ने कहा देवी ! भटराज काक कहते हैं कि आपके पास समय हो तो वह भेंट करने आवें ।

सुनकर रानी तनिक मुस्कराई । उस मुस्कराहट को प्रमकुंअर ने हृदय में जमा लिया । हाँ, कह दे कि मुझे अवकाश है । प्रमू ! तू अभी फूल ही टाँग रहा है ? तू न होती तो मेरा क्या होता ? रानी ने कहा ।

देवी ! यह क्या कहती हैं ? उमड़ती हुई लज्जा को न रोक पा रही हो इस प्रकार मुंह नीचा करके मुस्कराते हुए अंग लचकाते हुए प्रमकुंअर ने सोचा । आज इनका मन कुछ आनन्दित है इस प्रकार मन ही मन बड़बड़ाती हुई प्रमकुंअर लौट गई और जाकर क्षमा को सदेशा दिया ।

अच्छा हुआ यह पापी यहीं आया ।

कैसा पापी ? प्रमकुंअर ने ध्यान किए बिना ही पूछा ।

यही काक !

उसने तेरा क्या बिगाड़ा है पगली ?

उसने नहीं बिगाड़ा तो फिर किसने बिगाड़ा ? मुंह बनाकर समर्थ ने पूछा ।

प्रमकुंअर ने सिर हिलाया ग्रौर मन ही मन प्रमाण-पत्र दिया 'बिल्कुल बुद्धू है ।

पहचानते हो ?

ओहो ! आप भी यहीं हैं ? काक ने हंसकर कहा।

मुझे आपसे लड़ना है।

अरर नहीं भाई मुझ नहीं लड़ना है। मैं हार मानने के लिए तयार हूं।

हंसी की बात नहीं है। समर्थ ने क ।

समर्थ ! पीछे से रानी का कठोर स्वर आया तू और प्रभू बाहर जाओ।

पीछ आती प्रभू मन में बोली अरी मां ! आज कैसी खिल रही है ! वह नीचे देखती हुई आगे आई, काक के सामने गई मुह तनिक नीचा किए ऊपर देखकर काक पर एक दृष्टि डाली और चली गई। समर्थ क्रोध में मुह चढ़ाकर चली गई। काक उस समय रानी को प्रणाम कर रहा था।

समर्थ ! मगी को भेजना। रानी ने कहा।

अच्छा देवी।

५०

जब वह दोनों चली गई तो रानी हिंडोले पर बठ गई और काक सामने भूमि पर बैठ गया।

काक ! तुम्हे कुछ हुआ तो नहीं ?

'कुछ भी नहीं। महाराज की मझ पर अत्यन्त कृपा है।

अब समझ में आया।

क्या ?'

'मुजाल महेता कहते हैं कि म तुम्ह अच्छी तरह नहीं पहचानती।

मुझे कुछ नहीं हो सकता।

मेहता जी की मुझ पर विचित्र कृपा है। आप क्या मेरे लिए गई थीं ?

हां तुम्हें उस कमरे में न देखकर घबरा गई थी।

देवी ! आप मेरे लिए बहुत चिन्ता मत किया कीजिए।

रानी शांति से देखने लगी। विषय पलटा काक ! रत्नपाल कैसा है ?

'जैसा था वैसा ही है। अब भी माट को स्वतंत्र करने की आकांक्षा उसने त्यागी नहीं है और हम दोनों पर से उसका क्रोध भी विद्यमान है। अब जा हो सो ठीक।

'क्यों ?

'मुझे उस बड़ा के लड़के पर तनिक भी विश्वास नहीं है।

'मुझे तो किसी पर विश्वास नहीं होता।

'जैसे मजरी

'जैसे आप।

रानी मुस्कराई—'आन फिर यहाँ का क्या ?

'यहाँ ? धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। प्रथम बार सफल हो गया है। महाराज माग पर आगए हैं।

'देख भूल मत करना। उनको समझने में जन्म-पर-जन्म व्यतीत हो जायेंगे। धांत तिरस्कार स रानी ने कहा।

'देवी ! यदि आप सहायता करेंगी तो वह बहुत शीघ्र रास्त आ जायेंगे।

मैं किस लिए सहायता करूँ ? झुककर रानी ने पूछा।

किसलिए ? काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से रानी की ओर देखा देखिए स्पष्टवक्ता सुखी भवेत' यह सूत्र भूलने जैसा नहीं है। मैंने आपको यहां ब्याहा और पट्टरानी-पद की आशा दिखाई। इस समय आपका वह पद सकट में है। आपको भी ऐसा ही लगा तभी तो मुझे बुलाया। अब

हमें स्पष्ट बातें कर ही लेनी चाहिए।

तो करो न ! मैंने कब ना कहा ? ऊबकर रानी ने हिंडोले को धक्का दिया।

बुरा तो नहीं मानिएगा ?'

तेरा कहा बुरा लगने पर भी सुन लूंगी

'देवी ! आप भाई या माँ जो समझो इस समय मैं ही हूँ इसलिए जो कहता हूं वह कहने देना।

इस सब चर्चा की मैं आवश्यकता नहीं समझती।

मैं समझता हूँ। इस समय मेरी स्थिति बड़ी कठिन है। मेरे जैसे पर-पुरुष को इस प्रकार बात नहीं करनी चाहिए, किन्तु अगर मैं न करू तो कौन करे ?

जो कहना है कह।

आपको पटरानी-पद न छूटना नहीं चाहिए। काक ने तीक्ष्ण दृष्टि रानी पर डालकर कहा।

यह मेरे हाथ में नहीं है। रानी तनिक तिरस्कार से हंस दी।

मुझसे जो बनेगा करूंगा हो परन्तु अन्त में सब कुछ आप ही के हाथ में है।

किस प्रकार ?

जयसिंहदेव को रिझाना ही होगा। काक ने धीमे-से कहा और रानी के मुख के भाव देखने लगा।

'कराना क्या चाहता है तू ? तनिक तिरस्कार से लीलादेवी ने कहा।

जिससे काम बन जाय वह सब।

अर्थात् ?

देवी ! पुरुष को रिझाने की अद्भुत शक्ति प्रत्येक स्त्री में होती है। उसका उपयोग आपको भी करना होगा नहीं तो यह काम नहीं होने का।

क्रूर शांति से रानी काक की ओर देखने लगी। काक मौन रहा।

कुछ देर पश्चात् रानी ने एक निश्वास लिया 'मुझे युद्ध का रिझाना नहीं आता। वह कुछ देर तक मौन रही फिर तिरस्कारपूर्वक मुस्कराई एसा जानती तो थोड़ा-बहुत मजरी से सीख लेती।

काक ने उत्तर नहीं दिया किन्तु कहा—देवी! इस समय हम दो सेनापतियों के समान मन्त्रणा कर रहे हैं। हमें गढ़ जीतना है। अपने शस्त्रों का प्रयोग कीजिए मैं अपने शस्त्रों का प्रयोग करता हूँ। कहिए, इस प्रकार बात करू तो अच्छा लगेगा?

'चलेगा!

'तो आप एसा कुछ करिए कि जयसिंहदेव महाराज आप पर आसक्त हो जायें तभी गढ़ गिरेगा।

'राणकदेवी के समान खून कर रख कर सिन्दूर लगाकर ठिक?

अवसर पड़ने पर यह भी करना पड़ सकता है।

और क्या-क्या करना पड़ सकता है? तिरस्कार से रानी ने कहा।

'पहली बात तो यह है कि वह महत्त्वाकांक्षी हैं।

इससे क्या?

उनको एसी पटरानी चाहिए जिसे सभी पूजें। एसा मार्ग पकड़िए कि सभी आपको पूजने लगें।

रानी एकाग्र होकर देखने लगी। एसा लग रहा था मानो काक उत्साह से विनय से स्नेह करता हो। पल भर के लिए उसने काक के तेजस्वी मुख की ओर देखा।

किस प्रकार?

गुरुदेव ने आपको शस्त्र विद्या सिखाई थी प्रभु ने आपको चतुराई दी है कुछ ऐसा करिए कि आपकी कीर्ति महाराज को मुग्ध कर दे।

'तो क्या युद्ध में जाऊँ?

ऐसा भी समय आ सकता। दूसरी बात—महाराज भावुक हैं। काक ने कहा।

अच्छा ? तिरस्कारपूर्वक रानी बोली।

आप क्या नहीं जानतीं ? और फिर भी आप उनके प्रति स्नेह नहीं प्रकट करतीं। आप बहुत ही तटस्थ शांत और भावहीन हो गई हैं।

'तू स्त्री होता तो ननद अच्छी बनता।

अपनी रानी के लिए यह बनना भी मुझे स्वीकार है। काक ने मुस्कराकर कहा। देवी ! चाहे जैसा आदमी हो स्त्री के प्यार से संतोष प्राप्त नहीं कर सकता। थका-माँदा व्यक्ति जिस प्रकार रेवा की तरंगों में कूदकर नवजीवन प्राप्त करता है उसी प्रकार पुरुष को स्त्री प्यार स्नेह और छोटे-बड़े विनातों में स्नान करके सजीव होने की आवश्यकता पड़ती है। और महाराज का हृदय इतना उत्साही है कि महाराज को प्यार स्नेह और विलास की विशाल तरंगों की आवश्यकता होती है।'

'मालूम होता है तू पुरुषों का हृदय बहुत पहचानता है।

हाँ ! बचपन से उसे परखने का धन्धा ही जो ले बैठा हूँ। देवी ! प्रत्येक बात के प्रति तिरस्कार रखने से क्या लाभ ? यदि पाटण की पटरानी बनना है तो पाटण के स्वामी का अन्तर परखकर उसे बन्दी बनाना ही होगा। आप भी तो मनुष्य हृदय को परखती हैं। आप चाहें तो उन्हें नचा सकती हैं। नहीं तो आज देवड़ी गई तो कल कोई दूसरी आ जायेगी।

तू चाहता है भाट की कुँअरी दासी बनकर रहे ?

'देवी ! सर्वांगपूर्ण स्त्री को प्यार प्रकट करने में तो कोई लज्जा नहीं होनी चाहिए। पार्वती जी स्वयं क्या प्यार करतीं थीं ?

'अच्छा माना। एक—अपनी प्रीति से उन्हें मुग्ध करूँ—अपने अन्तर के भावों से उन्हें भिगोए रखूँ—और कहा है या बस इतना ही ?

नहीं अभी और है।

क्या ?

'महाराज का स्वभाव बहुत चपल है। उन्हें दृढ़ता की आवश्यकता है। अपनी निश्चलता पर उनकी रचना होने दीजिए।

'यह किस प्रकार ?' रानी को भी रस आने लगा।

वह जो चाहे करें किन्तु उनकी कीर्ति और उनकी सत्ता आप ही के कारण है ऐसी श्रद्धा उनमें होनी चाहिए।

उनकी कीर्ति और सत्ता की रक्षक बनकर।

'यह किस प्रकार ?

'चलो यह तीसरी बात भी सही। और कोई पाठ है ?

अभी इतने ही पर्याप्त है मुस्करा कर काक ने कहा।

अब कब क्या ? रानी न बात पलटी।

प्रथम आपकी कीर्ति। आप घस्त्र तयार रखिए। कुछ दिनों में ऐसा धड़ाका करूंगा कि सम्पूर्ण गुजरात गूंज उठेगा। कभी-कभी घुड़सवार घोड़े पर चढ़कर सेना में क्या हो रहा है यह भी देख आया करिए। साट में थीं तब तो न जाने कितने कोस की दौड़ धूप करती थी।

काक ! वह दिन गए। रानी ने निश्वास लिया।

दूसरा प्रयोग तो अब आप ही के हाथ में है। काक ने मुस्कराकर कहा स्त्री चरित्र का मुझे अधिक अनुभव नहीं है।

ऐसा ? रानी ने हंसकर पूछा तेरी बात से तो ऐसा बिलकुल नहीं लगता।

और तीसरी बात के लिए तो यह कि महाराज अपने आपको देवता समझना चाहते हैं। इसी कारण जगदेव जैसे विदेशी को यहाँ रख छोड़ा है। आप उनको शिक्षा दीजिए कि वह जब आपके पास आते हैं तो बिना प्रयत्न के ही देवता बन जाते हैं।

मेरे पास देवता बनाने का मन्त्र नहीं है।

है। आप ठाठ-बाठ इतना बड़ा कीजिए अनुचरों की संख्या इतनी बढ़ा दीजिए और व्यवहार करने लगिए कि आपके निकट आने वाले लोगों को देवमन्दिर का भान हो आए। इस मन्दिर के देवता बनने के

लिए राजाधिराज स्वयं दौड़ते आवेंगे कुछ दिन ध्यान न भी दें तो घबराना मत एक दिन अपने आप खिंचे चले आयेंगे। अब तक मुझे ऐसा मनुष्य न मिला जो देवता माने जाने पर प्रसन्न न हो।

मुझे एक मिला है।

आपको कुछ भ्रम हो गया है। उसका भी एक छोटा-सा मन्दिर है जहाँ वह देवता समझा जाता है। काक मुस्कराया। पल भर के लिए उसका मन भृगुकच्छ के साम्बा बृहस्पति के बाड़े में जा लगा।

'पुरुष स्त्री का घर और बाहर सुखी करता है उसको यौवन और प्यार देता है पूजन अर्चन करता है क्यों? मात्र देवता बनने के लिए। इस दुःखी संसार में उसे केवल इतने ही में मुक्ति की राह दिखाई पड़ती है।

काक! बहुत हो चुकी तेरी विद्वता। रानी ने कहा और दांत से सूखे हुए होठों को गीला किया। मुझे पूजूं या धिक्कारूं यह मुझे नहीं सूझता।

मुझे तो आपकी सेवा ही करनी है। काक ने उत्तर दिया।

ऐसे बोलेगा तो जीभ खींच लूंगी। बोल अब महाराज को देवता बनाकर उनकी स्थापना कैसे करूँ?

जब वह यहाँ आयें तो अपनी सेवा में प्रस्तुत रहने के लिए कुछ सनिक माँग लेना।

फिर?'

'और ऐसा कुछ करिए कि बड़े बड़े योद्धा यहाँ आयें।

क्या रस्सी बाँध कर खींच लाऊं?

आप प्रयत्न तो कीजिए। बिना रस्सी सभी खिंच चले आयेंगे। परशुराम को बुलाइए। आप वीरांगना हैं। आपकी वीरता से वह प्रसन्न होगा। वह आया कि सब आये।

मुझ पर इतना विश्वास करते हो?

'देवी! देवी! महाराज पधार रहे हैं। मंगी हाँफती-हाँफती आई।

उसके पीछे प्रेमकुमार और समय के घबराए हुए मुख दिखाई दे रहे थे। तुरन्त ही इनके पीछे जयसिंहदेव महाराज आए।

रानी चमककर हिंडोले पर से उतर पड़ी। काक उठा और झुक कर खड़ा हो गया।

५१

राजा अपनी आयु से छोटे लगते थे। उनका सुन्दर मुख इस समय आकर्षक दिखाई पड़ रहा था और उस पर सदा छाई रहने वाली मत्ता की छाप ने इस समय मोहक गौरव का स्वरूप ले लिया था। उनका मुख ऐसा लग रहा था मानो अभी हँसी फूट पड़ेगी। रानी को काक से इस प्रकार बैठकर बातें करते देखकर उन्हें हँसी आई किन्तु उन्होंने उसे रोककर अपने कपाल को आकुंचित किया।

'रानी! कहो क्या कर रही हो?' कुछ हँसते हुए स्वर को कठोर बनाकर उन्होंने पूछा 'क्यों काक, तू यहाँ कैसे?

देवी से भेंट करने आया था।' काक ने तीक्ष्ण दृष्टि से राजा की मुखमुद्रा की परीक्षा करते हुए कहा।

रानी! आज एक विचित्र बात मेरे कानों में आई है कहकर राजा हिंडोले पर बैठा और हाथ खींचकर रानी को भी बिठा लिया। उसने चारों ओर देखा और रानी के कमरे की सजावट देखकर कहा, तुम बहुत रसिक लगती हो।

अच्छा! शांति और अस्पष्ट से तिरस्कार से रानी ने कहा। किन्तु कहते समय उसकी दृष्टि काक पर जा पड़ी। काक की आँख में धुड़क थी। इतना कहने पर भी रानी कुछ नहीं करती? लीलादेवी के हृदय में काक की प्रेरणा का प्रभाव हुआ, मैं तो प्रतिदिन शृंगार

करती हूँ किन्तु महाराज को देखने का अवकाश कहां ?

राजा हंस पड़े। काक ने आंखों-ही-आंखों उपकार माना।

आज तो मैं एक बात की खोज करने आया हूँ। राजा ने फिर गाम्भीर्य का स्वांग रचा।

कौन सी ?

प्रातःकाल एक ब्राह्मण महल में घुसकर तुम्हारे कमरे में आया और अब तक नहीं मिला।

रानी तनिक चमकी। काक बिना कुछ कहे हँस पड़ा।

उस जगदेव ने कहा होगा ? उसने पूछा।

कैसे जाना ?' राजा ने कुछ भवें तानकर पूछा।

क्योंकि वह ब्राह्मण तो मैं ही था। रानी यह धृष्टता देखकर फीकी पड़ गई। काक आगे बढ़ा मुझे आपसे भेंट करनी थी इसीलिए ब्राह्मण का वेश बनाकर प्रहरी को धोखा कर मैं घुसा था। *मेरे मन में* यही था कि ऐसे वेश में आप से न मिलूं इसलिए मैंने भंगी से वस्त्र मंगाए। इतने में देवी को मालूम हो गया और उन्होंने मुझे बुला लिया इतने में परमार भी दौड़ते दौड़ते आ ही गए। भंगी ने मुझे उस कमरे में छिपाया वहां सौभाग्य से दंडनायक की पुत्री भी आ गयी। उसने मुझे दूसरे मार्ग से निकाल दिया और मैंने आपसे आकर भेंट की।

ऐसा हुआ ? राजा ने कहा परन्तु असली बात क्या है ? तूने और रानी ने दोनों ने मिलकर मेरे विरुद्ध षडयंत्र रचना प्रारंभ किया है क्या ?

हां ! देवी अभी अभी मेरे साथ षडयन्त्र रच रही थीं काक ने कहा। देवी आज्ञा दें तो कहूँ ?

क्या ?

है आज्ञा ? काक ने हँसकर पूछा।

रानी समझी नहीं किन्तु उसने तनिक मुस्कराकर स्वीकृति दे दी।

देवी रा' खेंगार के विरुद्ध षडयन्त्र रच रही थीं और सब सेना के

विषय में पूछ रही थीं।

रानी ने काक के सामने एक क्रोध भरी दृष्टि डाली। वह उसे अपनी युक्ति का प्रयोग करने का साधन बना रहा था। किन्तु वह विरोध भी नहीं कर सकी।

'महाराज! मैं सच जानिए इस धरे से थक गई हूँ। जैसे भी हो मैं इसका अंत करना चाहती हूं।

तो हम सब क्या मर गए हैं?

'नहीं। किन्तु कितने ही वर्षों तक मैंने युद्ध में भाग लिया है और कितने ही रण-क्षेत्रों को पार किया है। कितनी ही बार तो इस काक को भी छकाया है। मेरे प्राण अब इस आलस्य के जीवन से उकता गए हैं।

क्या करोगी?

जो आपकी पटरानी को शोभा दे वही। तनिक अस्पष्ट तिरस्कार से काक उससे क्या कहलवाना चाहता था उसकी कल्पना करके वह कहने लगी। राजा सगन का यह अप्रत्याशित प्रदर्शन देखने लगा।

'यह कोई लाट का छोटा मोटा युद्ध नहीं है।

देव! लाट के युद्ध में जो हुआ उसकी गाथा गाने वाला कोई नहीं अत वह सब विस्मृत हो गया है। काक ने कहा।

काक जहाँ जाता है वहाँ महाभारत हो जाता है। राजा ने मुस्कराकर कहा।

'नहीं महाराज! जहाँ वीर से वीर भिड़ते हैं वहीं महाभारत होता है। रानी ने कहा।

रानी! आज मैं भोजन नहीं करूँगा।

जो आज्ञा। मगी!' रानी ने कहा महाराज आज भोजन नहीं करेंगे।

देव! मुझे आज्ञा हो। अभी दण्डनायक से भेंट करनी है।

देखती हो एक स्थान पर टिककर यह कभी बैठता ही नहीं।

काक मुस्कराया जूनागढ पराजित हो और आप भृगुकच्छ के सोमनाथ का कलश चढ़ाने पधारें तब।

'धोता देने की रीति देखी? अच्छा भाई आ प्रात काल मिलना। राजा ने कहा। काक विदा हुआ।

काक बाहर गया और थोड़ा ही आगे गया होगा कि एक द्वार में से किसी ने सम्बोधित किया— भटराज!

काक ने घूमकर देखा अरे 'कौन, प्रात:काल वाली बहन?

हाँ। समर्थ ने आँखें निकाल कर कहा तू सम्पूर्ण संसार में बुरा से-बुरा आदमी है।

काक मुस्कराया क्यों क्या इतनी जल्दी परख लिया?

'तूने मेरा बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। उंगली से काक को धमकाते हुए समर्थ ने कहा।

मैंने क्या बिगाड़ा।

तुम पकड़े क्यों नहीं गए?

मैं क्यों नहीं पकड़ा गया? काक को लगा कि यह लड़की पागल है।

हाँ तुम पकड़े जाते तो वाहड़ महेता को मुंह मांगा प्राप्त होता और वह मुझसे ब्याह कर लेते।

और मैं नहीं पकड़ा गया तो। कुछ-कुछ समझते हुए काक बोला।

अब मेरे पिताजी उसके साथ मेरा ब्याह नहीं करेंगे।

क्यों?

उसका दादा मारवाड़ी था इसलिए।' होंठ-पर-होंठ रखकर समर्थ ने कहा।

मैं क्या कर सकता हूँ?

तुम अब भी पकड़े जाओ।

अरे वाह रे चतुर! तुम भी भारी हो गई।

तू बहुत बुरा है समय ने रूठकर कहा तेरा कभी भला नहीं होगा।

काल हँसकर चला गया।

५२

दिन निकलने से पहले राजा और जगदेव गढ़ के नीचे उतरे। गढ़ में सभी कुछ शांत था। जगदेव ने जहाँ घोड़े तैयार खड़े करवाए थे वहां गए। परन्तु घोड़े पर बैठे उससे पहले ही साईस ने जगदेव के कान में कुछ कहा रकाब में पर रख देने पर भी जगन्देव चमक-कर खड़ा हो गया।

हैं ! सच ?

हाँ।

क्या है जगन्देव ? राजा ने पूछा।

'कुछ नहीं देव ! आप तनिक रुकें तो मैं उधर हो आऊं।

बात क्या है ? तनिक कठोर होकर महाराज ने पूछा।

अन्नदाता ! अभी आया।

परमार ! मैं सुनना चाहता हूँ क्या है ?

देव ! गढ़ के दो प्रहरी घायल होकर मरणासन्न पड़े हैं। मैं उन्हें देख आऊं।

क्या कहता है ? कैसे घायल हुए ? मैं भी चलता हूँ। साईस ! यह घोड़ा तो पकड़।

जो आज्ञा। साईस ने कहा और महाराज घोड़े से उतरकर जगदेव के साथ गये।

थोड़ी ही दूर पर गढ़ के एक द्वार के सामने जगदेव ने चकमक से

'यह क्या है ?

दण्डनायक ने कोई नई आज्ञा दी लगती है। जगदेव ने कहा।

चलो देखें तो क्या है। कहकर राजा ने घोड़ा बढ़ाया। थोड़ी दूर जाने पर दो घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। प्रकाश फैलने लगा था अतएव शीघ्र ही दो अश्वारोही दृष्टिगोचर हुए।

कौन परशुराम निकले हैं क्या ?

नहीं देव! दण्डनायक इतने दुबले और लम्बे नहीं हैं।

बस उसे पकड़ें।

परन्तु उन्हें यह करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। आगे जाते हुए अश्वारोहियों के आगे जाने वाले ने इन दोनों को देख लिया। वह तुरन्त घोड़ा फेरकर राजा और जगदेव की ओर आने लगे। सूर्योदय होने ही वाला था। चारों अश्वारोही एक-दूसरे के निकट आ गए।

अवंतिहृदय महाराज की जय! नवागन्तुक ने कहा।

का क कटकटाते दाँतों में से महाराज का यह शब्द निकला। 'जगदेव! उसे बुला ला। कहकर उन्होंने घोड़ा रोका। जगदेव आगे गया किन्तु उसके पहले तो काक ही वहाँ आ पहुँचा।

देव! अभी अभी सम्मा काक ने मुस्कराकर कहा और फिर परमार की ओर मुड़ा। परमार! महाराज इस प्रकार घूमें उस समय क्या वह घोड़ा लाना चाहिए ? पूरा संसार जानता है कि पाटण के स्वामी के सिवा सुनहरी नाल वाले घोड़े पर दूसरा कोई नहीं बैठता। शत्रु देख लें तो ? कहकर काक ने उदय होते हुए सूर्य की किरणों में चमक रही राजा के घोड़े की नालों की ओर संकेत किया।

तेरी सलाह लेने के लिए नहीं खड़ा हूँ। क्रोध से काँपते हुए राजा बोला, 'तू कब का निकला है ?

— मध्यरात्रि के पश्चात अंतिम मुहूर्त में।

क्या कर रहा है ?

'चौकियों का प्रबन्ध कर रहा हूँ।

किसके कहने से ?

'मैंने दण्डनायक से बात चीत कर ली थी।

प्रत्येक बात में हाथ बढ़ाने का तुझे अधिकार नहीं है। काक! आज तूने मेरे सामने सिर उठाने का साहस किया है। दांत पीसकर राजा ने कहा।

सेवक ऐसा स्वप्न में भी नहीं कर सकता महाराज किस आधार पर कह रहे हैं ? शांति से काक बोला।

'मेरे प्रहरियों को तूने मारा ?

हाँ वह मुझे वर्गी समझने की धृष्टता कर रहे थे। आप तो जानते हैं कि भटराज का अपमान करने पर सैनिक की क्या दशा होती है ?

उन्होंने क्या किया था ?

'मुझे महल से बाहर जाने से रोका था।

'तूने अपना नाम नहीं बताया होगा।

बताया था किन्तु उन्होंने कहा कि मैं होऊँ तो भी रोकने की आज्ञा है।

राजा ने जगन्न की ओर देखा। वह चिंताग्रस्त मुख से यह वार्तालाप सुन रहा था।

परन्तु मेरे गढ़ में मेरे सैनिकों पर हथियार क्यों चलाया ? मुझसे कहना था।

'देव! मध्यरात्रि को रनवास में माता आपसे पूछने ?

परमार को कहना था।

क्षमा करें ऐसे कुछ ही व्यक्ति हैं जिनसे मैं आज्ञा लेता हूँ। परमार उन व्यक्तियों में नहीं है।

राजा फट पड़े। अर्थात् ? वे मोटे स्वर में बोले।

काक ने साहस से ऊपर देखा किसी ने मुझे रोकने का साहस अब तक नहीं किया और न अब कर सकेगा।'

अच्छा ? परमार! इसके हाथ बाँध। राजा ने आज्ञा दी।

बोले। उनके होंठ फड़के, उनकी आंखों से जैसे चिनगारियां निकलने लगीं। उनका हाथ अनायास ही तलवार की मूठ पर गया।

देव! काक ने नम्रता से कहा यह समय लम्बी बातें करने का नहीं है। आप एक दूसरी भूल भी करते आए हैं—देखिए! काक ने सोरठी सनिकों की ओर संकेत किया।

वह सब हथियार ऊंचे किये हर्षनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

'देखिए महाराज! आपको उन लोगों ने पहचान लिया है। अपने घोड़े को नाल तो देखिए—अंधेरी रात में भी पहचानी जा सकें ऐसी हैं। पाटण का सत्यानाश होने आया है। कहकर काक ने राजा के घोड़े की सुनहरी नालों की ओर संकेत किया।

परन्तु हरामखोर! मुझे जाने से क्यों रोकता है?

यह लोग आपको अभी पकड़ लेंगे। यह पथ एमल नायक की चौकी पर जाता है।

'एमल नायक!' जयदेव ने घबराकर कहा।

हाँ महाराज! अब समझे? आप मृत्यु के मुख में जा रहे थे।

'तो क्या करें? जगदेव ने कहा।

सुनिए जसा मैं कहूं वसा करिए। काक ने कहा।

उसकी आँखों में स्थिर तेज था उसकी भवों पर भयंकर शांति थी उसके मुख पर अटल सत्ता थी। जगदेव मौन रहा। महाराज भी मौन रहकर उसकी शक्ति देखने लगे।

'वह चौकी देखिए? आप उसमें घुस जाइए और चौकीदारों को ठिकाने लगाइए। आपकी कलगी पहनकर मैं आपके घोड़े पर बठता हूं। भ्रम में डालकर इन्हें मैं दूर ले जाता हूँ। सौ सनिक भी आ जायेंगे तो भी उस चौकी में रहकर आप लड़ सकेंगे और अवसर देख कर भाग भी सकेंगे।

'परन्तु तुम्हें वह मार डालेंगे।

'महाराज ! बातें करने का समय अब नहीं है। घृणा-भरी वाणी में काक ने कहा 'पाटण से अधिक काक का मूल्य नहीं। चलिए। वह महाराज का घोड़ा पकड़कर चौकी की ओर जाने लगा।

काक! राजा ठीक प्रकार न समझने के कारण चिढ़कर बोले इस तरह जबरदस्ती क्यों करता है? जयदेव अपना घोड़ा तनिक आगे लाए।

'देखिए! काक बोला, 'उन आते वालों को देखिए? एक घड़ी भी अधिक काल हो एक ही प्रहार में अचेत करके उठा ले जाऊँगा। चलिए! कहकर काक ने महाराज के घोड़े को जोर से चाबुक मारा। वह काक के घोड़े के साथ एकदम टेकरी के नीचे उतर गया। राजा की दृष्टि काक की मुख मुद्रा पर पड़ी। उसकी गंभीर उसकी तेजस्विता उसकी भयंकर स्थिरता उसकी दूरदर्शिता इन सबने राजा के हृदय में विचित्र श्रद्धा को अंकुरित किया।

थोड़ी देर में वह पत्थर की चौकी के सामने पहुँचा। घोड़े पर बैठे-ही-बैठे काक ने द्वार खटखटाया। एक चौकीदार ने जैसे ही द्वार खोला वैसे ही काक झट से द्वार पकड़कर अन्दर घुस गया। राजा जयदेव और खेमा तीनों उसके पीछे-पीछे गए। किन्तु इसके पहले ही काक ने उस चौकीदार के मुँह पर हाथ रखकर उसको भूमि पर पटक दिया था। उसकी पगड़ी से वह उसके हाथ-पाँव बाँध रहा था। यह गड़बड़ सुनकर अन्दर से दो आदमी दौड़े आए। महाराजा खेमा और जयदेव दोनों उन पर टूट पड़े। थोड़ी ही देर में तीनों चौकीदार बाँध दिए गए।

'महाराज! आपकी पगड़ी और कलगी।

जयदेव ने बिना एक अक्षर बोले ही पगड़ी और कलगी उतारकर काक को दे दी।

'खेमा! जितने बन सकें उतने घोड़े अन्दर से ले। देर! मैं जाता हूँ। खेमा! ध्यान रहे महाराज को कुछ भी हो उसके पहले मेरा सिर

धड़ से अलग हो जाना चाहिए।

'जो आज्ञा !

और परमार ! यह महल की व्यवस्था करने जितना सरल नहीं है। महाराज को कुछ भी हो गया और मैं बचा रहा तो धपली से बच कर निकलना कठिन हो जायगा याद रखना।

काक ! प्रशंसा से स्तब्ध बने राजा ने कहा तू रह जा जगदेव को जाने दे।

महाराज ! यहाँ रहकर बच जाना सरल है। कठिन काम दूसरों को सौंपने की मेरी आदत नहीं। जगदेव ! द्वार बन्द करो। कहकर काक ने बाहर आकर द्वार बन्द किया और राजा के घोड़े पर चढ़कर वहाँ से निकला।

५४

काक चौकी से तनिक आगे आया और पीछे आते हुए सैनिकों पर दृष्टि डालकर उन्हें ध्यान से देखने लगा। वह निकट की टेकरी पर आ पहुँचे थे और चारों ओर देख रहे थे। वह इन चारों की गतिविधि समझ पाए हो ऐसा न लगा। काक ने घोड़ा रोका राजा के जीन से बंधा हुआ छोटा किंतु दृढ़ धनुष हाथ में लिया और एक अचूक तीर फेंका। तीर का निशाना सालक्ष्य था। तीर जाकर उस टोली के नायक को जो इधर-उधर देख रहा था लगा और वह घायल होकर घोड़े पर से गिर पड़ा।

सम्पूर्ण टोली का ध्यान काक की ओर आकर्षित हो गया। उसके सिर की कलंगी और उसके लाल घोड़े की नालें प्रातः के प्रकाश में चमक रही थीं। विकराल पशु की गर्जना के समान वह एक ही स्वर में बोल उठे 'जलग सोलंकी ! और उसके पीछे भागे। काक को यही

चाहिए था। उसने ज़ोर से एड़ मारकर जयसिंहदेव के घोड़े को सरपट भगाया। चौकी के ऊपर के भाग की जाली में से राजा ने काक को भागते हुए और उस टोली के अधिकतर घुड़सवारों को उसके पीछे भागते हुए देखा। इस राजसेवक की भक्ति देखकर उनका हृदय उमड़ आया। कैसे-कैसे वीर एवं योद्धा उसकी कीर्ति की वृद्धि के लिए अपने प्राण न्योछावर कर रहे हैं।

'अन्नदाता! जयन्त ने पीछे से आकर राजा का ध्यान खींचा। वह कुछ व्यक्ति हमारी ओर आ रहे हैं।

'हाँ! काक ने जिसे घायल किया था उसे लेकर।

और वह देखिए! एक व्यक्ति का सबसे अलग होकर दूसरी दिशा में जाते देखकर परमार ने कहा। मुझे लगता है वह वन के नीचे बैठे हुए व्यक्तियों को बुलाने जा रहा है। राजा ने कहा।

'सब आ जायेंगे।

हाँ हँसकर राजा ने गिनते हुए कहा 'यह-एक तो वह है और एक-दो-तीन चार-पाँच और वे चार—नौ-दसेक आ रहे हैं।

तो कुल पच्चीस हुए।

राजा को विनोद सूझा 'हाँ! हममें से प्रत्येक के भाग में आठ आठ पड़ेंगे।

परमार ने गर्दन हिलाई।

'परमार! नब्बे आवें तब तक तो चिन्ता नहीं। कहकर राजा हँस दिए।

मैं समझा नहीं।

काक के पीछे तीस आदमी गए हैं न। राजा ने शान्ति से कहा समा कहाँ है?

'यह रहा देव! कहता हुआ समा कुछ रोटियाँ और मिर्चें लेकर ऊपर आया। 'महाराज! इतना-सा भोजन हाथ लगा है। खा लीजिए। कौन जाने फिर कब भोजन मिल सके।

कणदेव सोलंकी के रसिक पुत्र को बड़ी और मोटी रोटियाँ देखकर कपकँपी सी हो आई। किन्तु उन्हें खमा की सलाह ठीक लगी अत रोटियाँ एक-एक टुकड़ा करके बड़ी कठिनाई से गले उतारीं।

खमा! तूने उन चौकीदारो का क्या किया?

महाराज! उन्हें नीचे कोठरी में बन्द कर आया हूँ।

परमार! महाराज बोले वह लोग यहाँ आएं उसे पहले भाग निकलें तो कैसा?

चलिए कहकर परमार ने कमरबन्द कसा। परमार की परिस्थिति ऐसी गम्भीर होती दिखाई देने लगी कि उसकी बोलती ही बन्द हो गई थी। ऐसे समय में बोलने से अधिक युद्ध करना उसे स्वाभाविक लगता। तीनों-के-तीनो नीचे उतरकर घोड़ों के निकट गये। इतने में उन्हें दूर से आते हुए लोगों का स्वर सुनाई पड़ा। जगदेव ने चौंककर चारों ओर देखा राजा के होंठ कड़े हो गए।

लगता है अधिक सैनिक आ मिले हैं। जगदेव ने कहा।

खमा भी सावधान हो गया था। वेग से ऊपर जाकर देख आया।

वह इसी ओर आ रहे हैं।

कितने हैं?

बीस-पच्चीस।

राजा की आँखों में आवेश की चमक थी।

हम अभी बाहर नहीं निकल सकेंगे।

बाहर से आगन्तुकों ने द्वार खटखटाया।

वह शांत खड़े रहे। थोड़ी देर पश्चात् बाहर वालों ने अधीरता से द्वार खटखटाया और चिल्लाकर कहा चौकीदार! द्वार खोल! खोल!

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ ही देर पश्चात् द्वार पर पदाघात होने लगे और गालियों की बौछार होना आरम्भ हो गया।

अन्नदाता! जगदेव ने कहा, मुझे एक ही मार्ग दिखाई

देता है।'

'क्या ?

'मैं बाहर जाकर जब सकूँ उतनों को ठिकाने लगाता हूँ। दस-पन्द्रह को तो लगा ही दूंगा। तब तक आप यहाँ से भाग निकलें।

राजा मुस्कराए, खूब कहना तुम ही सबको आता है क्यों ? बाप ने संकट से रक्षा की तू औरों की रक्षा कर और जयसिंहदेव सोलंकी कायर के समान भाग निकल ! वस्तुतः जा सभी ठिकाने लग जायेंगे।

किस प्रकार ? हम अन्दर रहकर लड़ न सकेंगे। ऊपर की जाली से तीर भी तो नहीं जा सकते।

बाहर से लोग अधीर होकर द्वार पर निरंतर आघात कर रहे थे। दूसरी टोली जो वस्त्र नीचे बठी थी अब वह भी आ मिली थी। वह सब आपस में पूछताछ कर रहे थे। एका-एक एक आदमी ने ढेला लेकर जाली की ओर फेंका। कुछ धूल उड़कर राजा की आँखों में जा बठी।

यह सालका के आदमी हैं। एक तो भाग गया। इन्हें पकड़कर बाहर निकालो।

राजा मुस्कराया परमार ! जयसिंहदेव सोलंकी कसा फंस गया ? मीनलदेवी जानेंगी तो कितनी क्रुद्ध होंगी मैं ?

आज वह मरने वाला है और कल खँगार यह सुनकर बड़ा प्रसन्न होगा। उस चिपट नाक वाले को देखा ? मेरी चल तो उसकी नाक खींच लूं।

अन्नदाता ! वह लोग थककर बठने लगे हैं।

'यह जाली तनिक बड़ी होती तो एक एक को एक-एक तीर में बींधता।

'जाली लकड़ी की है। कहो तो बड़ी कर दूं ? खेमा ने पूछा।

हाँ ' राजा ने उत्साहित होकर कहा।

परन्तु वह लोग सुन लेंगे। परमार ने कहा।

कुछ देर में अधिक व्यक्ति आ पहुँचेंगे तो मर ही जायेंगे न? खेमा कोई हथियार है?

नीचे एक कुल्हाड़ी मिली है। खेमा ने कहा।

'जगदेव! उस पीछे वाली जाली पर पहले जा।

जगदेव शीघ्र ही उस जाली की ओर गया और थोड़ी ही देर में बीच का टुकड़ा तोड़कर दो छिद्रों को एक कर डाला। खमा ने महाराज को धनुष बाण दिये। जगदेव उन्हें लेकर जाली के सामने गए और निशाना लिया और नई टोली में से एक को घायल कर दिया।

घायल सैनिक चीखता भूमि पर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर भाग जाते हुए अधिकतर सैनिक दौड़कर पीछे लौटे। उन्होंने तीर से घायल सैनिक को देखा तीर किधर से आया यह भी देखा। वह आपे से बाहर हो गए। ललकारों गालियों और पत्थरों की बौछार होने लगी। जयसिंहदेव दाँत पीसकर देखने लगे। उनके मुख पर से विलास के चिह्न अदृष्ट हो गए और रसिक स्वभाव की कोमल रेखाएँ कठोर हो गईं। फिर भी शांत थे। भय से वे डर जायें—ऐसे नहीं थे क्योंकि उनके हृदय में यह विश्वास जम गया था कि वे सबसे निराले और देवी हैं। ऐसा भी नहीं था कि कोई उन्हें हटा सके या मार सके। उन्होंने नीचे भुककर दूसरा तीर लिया और चला दिया। एक और सैनिक गिर पड़ा। बाहर लोगों में हाहाकार मच गई। वह पीछे हट कर दूर हो गए। उनमें फैली खलबली देखकर राजा अपनी मूछों में हँसे।

थोड़ी देर तक दोनों पक्ष शांत रहे।

परमार! वह सब निश्चिन्त होकर बैठ किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा ने कहा।

अन्नदाता! मुझे तो पल-पल संकट बढ़ता लगता है।'

कोई मार्ग दिखाई नहीं देता तुझे?'

'मुझे तो महाराज ! एक ही मार्ग दिखाई पड़ता है।

'कौन-सा ?

मैं घोड़ा लेकर बाहर जाऊ और इन सब से लड़ूँ इस लड़ाई का लाभ उठा कर आप और खेमा निकल जाइए। परमार ने कहा।

'इन सबके पास तीर-कमान हैं कोई घायल कर दे तो ? राजा ने शंका से कहा।

'किन्तु यहीं बैठे रहें और अधिक व्यक्ति आ जायें तो ?

'तब तक क्या कोई हमारी सहायता को नहीं आयेगा ?

'कोई नहीं आया तो ? परमार ने शंका प्रकट की।

कैसी बात करता है ? राजा ने साहस से हँसकर कहा दो-तीन दिन तक तो बड़ी सरलता से यहाँ बैठे रहेंगे।

'महाराज ! खेमा खिड़की के सामने खड़ा हुआ था वहीं से बोला दो दिन कौन रहेगा ? वह तो चौकी जमा देने की युक्ति कर रहे हैं। सब इस प्रकार स्तब्ध हो गए मानो बिजली कड़की हो। फिर सबकी समझ में वास्तविक स्थिति आ गई और हाथों के तोते उड़ गए।

५५

महाराज छलाँग मारकर खिड़की तक गए और बाहर देखने लगे। दो-तीन लोग हाथ लम्बे करके बातें कर रहे थे एक व्यक्ति चकमक से आग जला रहा था दूसरे दो एक लोग सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे थे। थोड़ी देर तक राजा एकाग्रता से देखते रहे एक व्यक्ति लकड़ी बताकर द्वार में आग लगाने के लिए कह रहा था यह स्पष्ट दिखाई पड़ा। स्थिति बड़ी भयंकर लगी। राजा ने एक गहरी साँस ली और भवें तानकर कुछ देर तक विचार किया। थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने

गर्दन ऊंची की।

परमार! तेरी बात सच है। अब हमें मरना और मारना ही पड़ेगा।

उत्तर में परमार ने दाढ़ी में बल दिया।

सुन! एक द्वार खोल दे। यदि बाहर निकलेंगे तो निश्चय ही यह सैनिक बींध देंगे। तू द्वार के बीच खड़ा हो जा। तेरे पीछे मैं खड़ा होता हूँ और सबसे पीछे खेमा बैठा-बैठा तीर चलायेगा। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरे को ठिकाने लगा देंगे और समय देखकर घोड़ों पर बैठकर भाग निकलेंगे। राजा ने अपनी योजना बताई।

जो आज्ञा!' कहकर परमार सीढ़ियों उतरा और अपना प्रचंड खड्ग नंगा करके हाथ में ले लिया। राजा ने एक हाथ में भाला और दूसरे में तलवार ली और द्वार से कुछ दूर पर वह खड़े हो गये। घोड़ों को तैयार कर पीछे घुटनों के बल बैठकर खेमा ने निशाना साधा। परमार और खेमा ने महाराज की ओर इस प्रकार देखा मानो यह उनका अंतिम समय हो। फिर भी तीनों जानते थे कि इसके सिवा रक्षा करने का और कोई मार्ग नहीं है। जब तक चालीस योद्धा घेरा डालकर पड़े हों तब तक बचने का कोई अन्य मार्ग नहीं था।

अन्नदाता! सावधान मैं द्वार खोलता हूँ।

खोल! शांति से सोलंकी ने आज्ञा दी।

परमार ने महाकालेश्वर का स्मरण करके अगला हटाई और एकदम एक द्वार खोल दिया।

द्वार खुलने की आवाज सुनकर बाहर के बैठे हुए लोग चमके और और निश्चिंत होकर द्वार की ओर बढ़े। दूसरे ही क्षण उन्होंने जयघोषणा की, कितने ही तो खिलखिला कर हँसने लगे। आगे खड़े हुए सैनिक शस्त्र निकालकर चौकी में से बाहर निकलने वाले को भूमिसात् करने के लिए तत्पर हो गये किन्तु दूसरे ही क्षण वे तनिक चकित होकर खड़े हो गये चौकी के अधखुले द्वार में से कोई नहीं निकला। सोरठी

सैनिक थोड़ी देर तक देखते रहे फिर आग बढ़े। एक पल के लिए उन्होंने परमार के उग्र मुख को भयानक अट्टहास करते देखा और अधीर होकर अधखुले द्वार की ओर बिना सोचे-समझे दौड़ पड़े। उत्साहोन्मत्त सोरठी जैसे ही द्वार में घुसे कि एक प्रचण्ड यमराज द्वार के पीछे से आग आया— एक झटके में दो सैनिकों के सिर धड़ से अलग होकर धूल धूसरित हो गए पीछे के एक को तीर लगा और वह धरती पर लुढ़क गया। किसी को भान न रहा कि क्या हो गया। पीछे आने वाले पीछे हटे और अधखुला द्वार जैसा था वैसा ही निर्जन हो गया। एक ही पल में यह खेल समाप्त हुआ। आक्रमण करने वाले चौंक पड़े और दूर हटकर एक-दूसरे से मंत्रणा करने लगे। थोड़ी देर में एक व्यक्ति ने दो तीक्ष्ण बाण छोड़े। व अधखुले द्वार में होकर आरपार होगए। उत्तर में मात्र परमार का अट्टहास सुनाई पड़ा। सेना के तीर से घायल हुए व्यक्ति की वेदना भरी चीत्कार के सिवाय सब कुछ शांत था। चौकी में तीन व्यक्ति प्रतीक्षा करते हुये खड़े थे। धरती अपनी निश्चित गति से दौड़ रही थी।

मध्याह्न हो गया। सोरठ का प्रखर सूर्य भी मानो रण में आगया था।

थोड़ी देर में महाराज और उनके साथियों ने नया और अपरिचित स्वर सुना। वह किसी वृद्ध का विनोद भरा स्वर था।

छोकरो! क्या कर रहे हो?

अरे! परमार बड़बड़ाया और बन्द द्वार के छिद्र में से देखकर बोला महाराज! भरे पीछे छिपकर रहियेगा। एक बूढ़ा साठ-न्स अश्वा रोही लेकर आया है। एमल नायक के विषय में सुना था कहीं वही तो नहीं है?

'बड़ी श्वेत मूछें हैं? मोटा और नाटे कद का है? राजा ने पूछा और फिर जिज्ञासा न रोक सकने के कारण आगे आकर कहा, 'परमार! हट तनिक देखने दे।

यम के घर, कुछ भाग गए। महाराज आप दोनों ने मिलकर ही सभी को समाप्त किया है।

और एमल को मून मारा?

हाँ महाराज! आप बाहर निकले और मैं लेटा-लेटा धनुष तीर लेकर निकला और पेट के बल सरकते-सरकते मैंने उसका काम तमाम किया है।

'जीता रह!

महाराज! समय गवाने में लाभ नहीं है। वह काली घोड़ी वहाँ चर रही है। वह परशुराम ही की लगती है। थकी हुई भी नहीं लगती। मैं सब कर लूँगा आप तुरन्त चपली जाइए। अब और कोई आ जायगा तो लड़ने की भी शक्ति नहीं है।

यह क्या कहता है? जयदेव में कोई जीता भी है?

'जब तक सोमा भगवान् की कृपा है तब तक क्या हो सकता है? कह कर खेमा घोड़ा ले आया और सहारा देकर जयदेव को उस पर चढ़ाया।

थोड़ा पानी पी लीजिए और खड़े रहिए यह तलवार साफ करके देता हूँ और यह धनुष-बाण भी लेते जाइए। हाँ ठहरिए, इन एक दो बड़े घावों को भी बाँध देता हूँ। कह कर खेमा राजा की सेवा में लग गया।

तू भी तो चल!

देखूँ तो सही कि परमार जीवित है या नहीं।

खेमा! आज तो हमने हद ही कर दी। राजा गर्व दिखाए बिना न रह सके।

महाराज! काकभट जी का पता तुरन्त लगवाइएगा। खेमा ने सूचित किया।

अवश्य' राजा ने कहा और घोड़ी को एड़ मारी। परशुराम की सुविख्यात घोड़ी हिरन के समान उछलकर दौड़ पड़ी।

साप दुसह था किन्तु राजा के मस्तिष्क में विजय का प्रमाद भी हो था। प्रकस ही दुजय पमल मोर सोरठी सनिका को ठिकान लगाया था मोर परशुराम की घोडी लौटा लाए थे। उनकी रगों में रक्त उद्दन रहा था उनकी प्राखों के सामन रग बिरगे चित्र दिखाई दे रहे थे। मब कुछ सुहाना दिखाई पड़ रहा था। घोडी पवनवग से जा रही थी। चारा मोर की वस्तुएँ भागती-सी लग रही थीं।

नथुने फूल रहे थे घावों में स खून निकल रहा था। परन्तु कानों में विजय घोषणा हो रही थी। एकाएक एक के अनेक ही घुडसवार। चारों ओर से निकल आए। ये सब कहाँ स आ गए यह समझ में न आया। आगे आने वाला परशुराम-सा लग रहा था।

साथ में कोई अपरिचित पुरुष भी था। नहीं अपरिचित नहा— उसका मुख उसकी रानी के समान था। उन्होंने घोष किया— जय सिंहदेव महाराज की। जय।

जय सोमनाथ! राजा ने कहा।

सभी उन्हें घेरकर खडे हो गए। उनका गला सूखने लगा।

कौन देवी? तुम कहाँ स? परशुराम तुम्हारी घोडी। राजा ने बोलने का प्रयत्न किया किन्तु कठ रुध गया। परमार। काक खेमा एमल किन्तु कुछ भी स्पष्ट न कह सके। लोगों ने उन्हें सहारा दिया। अधेरा हो गया था।

५

जयसिंहदेव महाराज को लगा कि उनके अग-अग में पीडा हो है और उसके हाथ-पाँव पर पट्टियाँ बधी हुई हैं। क्या वह बन्दी ... नायक मोर सोरठियों पर विजय

पकड़ा हुआ माग भी खोज डाला था। पदचिन्हों से लगा कि राजा से विदा होकर वह एकाध योजन आगे गया पीछे सोरठियों की टोली भी वहीं चली आ रही थी और सामने से कुछ दूसरे व्यक्तियों के आगमन के चिन्ह भी थे। वहाँ भिड़न्त के चिन्ह भी थे। कुछ व्यक्ति मरे ऐसा भी लगा। वहां से उसने अनुमान लगाया सभी एमल नायक की चौकी की ओर गए।

आगे बढ़ना खेमा को बुद्धिमत्ता पूण नहीं दिखाई दिया। किन्तु दो बातें स्पष्ट हो गई—एक तो यह कि काक बन्दी बना लिया गया और दूसरी यह कि उसे एमल की चौकी पर भी ले जाया गया। किन्तु काक जीता पकड़ा गया या मरा एमल ने उसे बन्दी किया या मार डाला वह चौकी में था या नही इन प्रश्नों का निणय नही हो सका। मुजाल और परशुराम ने मत्रणा करके निश्चय किया कि इस समय एमल की चौकी पर हमला करने से कुछ हाथ नहीं लगगा क्योंकि यदि क्रुद्ध सोरठी आवेग में आ जाते ह तो काक को मार भी सकते। एमल इस समय अचेत था मृत उससे भी कुछ मालूम न हो सकता था।

स्थिति सचमुच गम्भीर हो गई। अच्छ होकर महाराज में काक को खोजने की अधीरता इतनी बढ़ गई थी कि उन्हें फिर ज्वर चढ़ आया। जगदेव परमार जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा था। एमल नायक मत्यु के द्वार पर खड़ा हुआ था। मुजाल ने सम्पूण अधिकार अपने हाथ में ले लिये। राजगढ़ के द्वार बन्द करके राजा के अच्छ हो जाने का समाचार चारों ओर फला दिया गया। सम्भव है एमल का बल्ला लेने के लिए सोरठी काक को मार डालें इस भय से एमल भी अच्छा है यह समाचार जूनागढ़ तक पहुँचाने की युक्ति की गई। सम्भव है इस समाचार का लाभ उठाकर खेंगार आक्रमण कर बैठ इसलिए ऐसा प्रबन्ध किया गया कि वह विजयी न हो सके। चारों ओर की चौकियां दृढ़ कर दी गई। परशुराम के स्थान पर मुजाल बढ़े और चारों दिशाओं का अधिकार महाअमात्य ने अपने हाथ में ले लिया।

मीनलदेवी और वैद्यराज ने राजा की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। लीलादेवी मर्यादा के कारण राजा के निकट नहीं बैठ सकीं।

तीन दिन हो गए, काक का पता नहीं लगा। यदि वह जीवित होता अथवा बन्दी न बना होता तो अवश्य लौट आता। यदि उसे एमल नायक ने पकड़ा होता तो वह एमल नायक के साथ क्यों नहीं था? सभी के मस्तिष्क में यह भारी शंका उत्पन्न हो गई कि काक एमल के साथ लड़ते हुए मारा गया। यह शंका जैसे-जैसे दृढ़ होती गई वैसे-वैसे प्रत्येक व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होने लगा। मुंजाल का मुख गम्भीर हो गया और उसकी वाणी में मधुरता का स्थान कटुता ने ले लिया। मीनलदेवी को लगा कि काक की मृत्यु बहुत बड़ा अशुभ चिह्न है और उसका अमंगल प्रभाव उनके पुत्र और पुत्रवधू पर अवश्य होगा। परशुराम उग्र हो गया और उसकी आँखें ऐसे रहने लगीं मानो धधक रही हों और उनमें क्रोध का आवेश होते हुए भी वह अपनी बेचैनी न छिपा सकीं। लीलादेवी तो सिंहनी के समान व्याकुल हो इधर से उधर चक्कर काटती रहीं।

राजगढ़ पर चिंता के काले मेघ छा गए थे प्रत्येक के हृदय में किसी नई किसी अपशकुन-भरी बात की आशंका हो रही थी।